लेखक की कुछ अन्य प्रकाशित रचनाएँ

उपन्यास : शोले, मशाल, गंगा मैया, सत्ती मैया का चौरा, आग, कालिन्दी, रम्भा, धरती, अन्तिम अध्याय, नौजवान, एक जीनियस की प्रेमकथा
बाप-बेटा : दो भागों में मुद्रणस्थ :

कहानी-संग्रह : मंजिल, बिगड़े हुए दिमाग़, सितार के तार, फरिश्ता, मोहब्बत की राहें, महफ़िल, सपने का अन्त, बलिदान की कहानियाँ, आँखों का सवाल, मंगली की टिकुली
हड़ताल : मुद्रणस्थ :

एकांकी-संग्रह : कसौटी

नाटक : चन्द बरदायी

सम्पादित : भारत की आधुनिक श्रेष्ठ कहानियाँ, मित्रो और अन्य कहानियाँ, हिन्दी की आधुनिक श्रेष्ठ कहानियाँ

अनूदित : हिज एक्सलेंसी (दोस्तोयेव्स्की) माँ, मालवा (गोर्की) कांदीद (वाल्तेयर), अजेय वियतनाम (उत्पल दत्त)

रूपान्तरित : मालती-माधव (भवभूति: नाटक से उपन्यास में)

वितरक :

लोकभारती प्रकाशन

१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–१

आग और आँसू

धारा प्रकाशन
इलाहाबाद

प्रकाशक
धारा प्रकाशन
१एफ/१, बेनीगंज, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण १९८३

मुद्रक : राजन प्रिंटिंग प्रेस, ३३४,
सालिकगंज, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद

मूल्य : ४०.००

जेठ की शाम थी। आसमान पर गर्म धूल छायी हुई थी। धरती आवें की तरह तप रही थी। और थम-थमकर लू के झोंके ऐसे आ जाते थे कि लगता, जैसे आकाश और धरती के बीच थककर लेटा पड़ा आग का देव रह-रहकर मुँह खोलकर साँस छोड़ देता हो।

दो बड़ी-बड़ी, लाल-लाल, परेशान आँखों ने जंगले से सामने फैले सहन को घूरा। और फिर एक भारी, कड़कती आवाज़ गूँज उठी—क्यों बे, अभी छिड़काव ही चल रहा है?

बेंगा के हाथ से भरा गगरा छूट पड़ा। फच की एक आवाज हुई और गगरे का पानी भ-भ कर जमीन पर फैलने लगा।

बेंगा काँपती टाँगों पर खड़ा, दाँत चियारकर बोला—बस, हुआ ही जाता है, बड़े सरकार!

वह आँखें हट गयी।

ओसारे में कुहनी के बल लेटे-लेटे पंखा खींचनेवाला चौंककर बैठ गया था। जोर-जोर से हाथ मारता हुआ वह बोला—सैकड़ों गगरे तो बहा चुके। अब बस न करो, बेंगा भाई।

—बस कैसे करें, भाई? जाने सारा पानी साला कहाँ उड़ जाता है!—माथे और पखों का पसीना पोंछकर गगरे उठाता हुआ बेंगा बोला—तरी में जरा भी कमी रह गयी, तो जानते हो बड़े सरकार का गुस्सा!—और वह तेज कदमों से इनारे की ओर चल पड़ा।

दो बीघे दूर इनारे पर ढेकुल का बरहा पकड़े हुए चतुरी ने बेंगा के पास आते ही पूछा—का हुआ, काका? बड़े सरकार की बोली कान में पड़ी थी।

—हुआ तेरा सर !—दाँत दबाकर बेंगा बोला—तू साले, पानी खींचकर खड़ा-खड़ा ताकता रहता है। यह नहीं होता कि दस डग आगे बढ़ जायें। बड़े सरकार को बाहर निकलने को देर हो रही है। तेवर चढ़ा हुआ है। जाने किसके सर उतरे। चल, जल्दी कर।

—देर हो रही है ! हुँ !—गगरे के गले में फाँस लगाता, मुँह बिगाड़कर चतुरी बोला—जिस पानी से रात-भर उसे तरी मिलेगी, उसमें कितना हमारा पसीना...

—चुप !—इधर-उधर देखकर बेंगा बोला—तेरी तो मति मारी गयी है। अबे, हम पैदा ही इसी लिए हुए हैं। तू जरा देख-सुनकर मुँह खोला कर। नहीं तो एक दिन...—और उसने दोनों हाथों में भारी-भारी गगरे उठा लिये। देह झुककर कमान हो गयी। पलकों से कुछ बूँदें टप-टप चू पड़ीं। चतुरी को मालूम था कि ये बूँदें पसीने की थीं या... उसकी आँखें भी भर आयी।

सहन में जब तरी बरसने लगी, तब जाकर बेंगा ने आराम की एक साँस ली। इनारे की जगत पर गोड़-हाथ धोकर, माथे को अँगोछी उतार, खूब रगड़-रगड़कर देह का पानी और पसीना पोंछकर उसने चतुरी से कहा—चल, जरा तखत टेका दे।

—नहीं, काका, अब तो मुझे जाने दो। बड़ी देर हो गयी है। सब बैठे मेरी राह ताक रहे होंगे। आज बिटोर है।

—अबे, यह चलन छोड़ दे। कितना कहा तुझसे....

—देरी हो रही है, काका। किसी और को बुला लो।—कहते हुए चतुरी ने डग बढाया।

—जा, साले। इन बूढी हड्डियों में जब तक खटने की कूवत है, जो मन आये, कर ले, फिर तो...—एक भारी बददुआ बेंगा के दाँतों के बीच कुचलकर रह गयी।

थोडे फ़ासले पर भैंस के थान पर खड़ा गोपाल मक्खियाँ हाँक रहा था। हाथी के बच्चे की तरह झूमती जमुनापारी नाँद में कान तक मुँह

डुबाकर आराम से भरड़-भरड़ कर रही थी। ऐसी नखरैल थी यह जमुनापारी कि एक भी मक्खी उसकी देह पर बैठ जाती, तो छान-पगहा तुड़ाकर कूदने-फांदने लगती। और उस वक्त एक बूंद भी दूध न देती। बड़े सरकार का हुक्म था कि सुबह-शाम दूहने के वक्त एक भी मक्खी उसके पास फटकने न पाये। फिर भी बेंगा ने दो छन के लिए गोपाल से चिरौरी की, तो वह उसकी मदद को आ ही गया। शीशम का बड़ा तखत सीसे की तरह भारी था। ओसारे से सहन तक टेकाने में ही दोनों हांफने लगे। तभी बें-बें कर जमुनापारी के हुकड़ने की आवाज आयी। गोपाल की देह में कुछ सन्न-से कर गया। वह डरे हुए हिरन की तरह छलांग मारकर भागा कि पीछे से आवाज आयी—क्या हुआ, बे? जमुनापारी क्यों हुकड़ रही है?

बड़े सरकार ओसारे में निकल आये थे। वह जान छोड़कर भागते हुए गोपाल की ओर लाल-लाल आंखों से घूर रहे थे।

अपराधी की तरह कांपते हुए बेंगा ने ही सिर झुकाकर कहा—सरकार, वह जमुनापारी को नहलाने के लिए गगरा लेने आया था।

—ओ,—बड़े सरकार ने पंखा खींचनेवाले की ओर, जो कि बड़े सरकार के बाहर आ जाने पर भी खड़े होकर जोर-जोर से पंखा खींचे जा रहा था, मुड़कर कहा—जा, बे, गगरा ले जा।—और वह ओसारे में ही दोनों हाथ कमर के पीछे बांध सिर झुकाये टहलने लगे।

बेंगा ने तखत पर कालीन डाला। कालीन पर शीतलपाटी और शीतल पाटी पर केवड़े का पानी छिड़ककर सिरहाने गाव तकिया लगा दिया। तब बड़े सरकार ओसारे से नीचे उतरे और पांव लटकाकर तखत पर बैठ गये। बेंगा ने बैठकर दोनों हाथों से उनके पांव के जूते उतार दिये। तब उन्होंने पैर ऊपर किये और पीठ गाव तकिये पर टेक, दोनों ठेहुनों को बीच से मोड़ आराम से बैठकर बोले—किसी को पंखा झलने को कह।

बेंगा मुड़ा, तो वह बोले—अबे, तेरा चतुरिया दिखायी

—वही तो, सरकार, अभी पानी खींच रहा था,—हाथों को उलझाता हुआ बेंगा बोला—तीन दिन से उसे बुखार आ रहा है। का बताऊँ, सरकार, एक ही तो...

—अच्छा, जा, जल्दी कर,—बड़े सरकार ने दूसरी ओर देखते हुए कहा।

तनखाह पर बड़े सरकार के यहां एक भी नौकर न था, फिर भी उनका हुक्म बजानेवालों की तादाद अनगिनत थी। सरकार की जबान हिली नहीं कि हाज़िर।

ताड़ का बड़ा पंखा हाथों में ले झुमना तख़्त से ज़रा दूर खड़ा होकर हांकने लगा। बेंगा सरकार से मिलनेवालों के बैठने के लिए क़ायदे से आसन लगाने लगा। सरकार से मिलने हर तरह के लोग आते। बड़े भी, मंझोले भी और छोटे भी। दोस्त भी, अपने खास भी और रियाया भी। ब्राह्मण भी, क्षत्री भी, वैश्य भी और शूद्र भी। जो जैसा, उसका आसन वैसा ही और सरकार के तख़्त से उतना ही नज़दीक या दूर। देखते-देखते तख़्त के चारों ओर आसनों की नुमायश लग गयी। आराम-कुर्सियां, बेंत की कुर्सियां, लकड़ी की कुर्सियां, तिपाइयां, बेंचें, मचियां, टाट और उसके आगे धरती। सरकार के दरबार में आनेवालों को अपने-अपने आसन का पूरा-पूरा ज्ञान वैसे ही था, जैसे सिनेमा जानेवालों को होता है।

सब ठीक-ठाक करके बेंगा ने लालटेन खोली। शीशे को खूब चमकाया। खज़ाने को साफ़ किया और अच्छी तरह पोंछ-पांछकर, जलाकर ओरियानी के नीचे लटके हुए अँकुसे में टाँग दी।

बड़े सरकार का हुक्म हुआ—बेंगवा, चल!

बेंगा मिट्टी से खूब मल-मलकर, हाथ साफ़ कर, अंगौछी से पोंछ हाज़िर हुआ।

सरकार ने पांव फैला दिये। बेंगा सरकार का हर इशारा समझता

है । वह झुककर सरकार की चमचम शान्तिपुरी धोती ठेहुनों तक सरक
कर, पांव दबाने लगा ।

—ज़रा किसी को आवाज़ तो दे, —बड़े सरकार ने कहा ।

बेंगा ने वैसे ही आवाज़ दी, जैसे कचहरी में पुकार होती है ।

गोपाल दौड़कर आ खड़ा हुआ, तो सरकार बोले—देख तो, वे,
ठंडाई अभी तक क्यों न आयी ?

गोपाल हवेली की ओर भागा । लेकिन अभी बीस-पचीस डग ही
नापा होगा कि हवेली की सीढ़ियों से मुंदरी को उतरते देखकर थमक-
कर खड़ा हो गया । जब वह पास आ गयी, तो वह बोला—बड़े सर-
कार ठंडाई....

—वही पूछने जा रही हूँ,—चलती हुई ही मुंदरी बोली—तू जा,
अपना काम देख । भैंस अभी दुही गयी कि नहीं ?

—दुहने ही जा रहे थे कि बड़े सरकार....

—अच्छा चल, जल्दी कर । सुबह का दूध फट गया है ।

बड़े सरकार के सामने खड़ी हो मुस्कराती हुई मुंदरी बोली—अभी
बरफ़ नहीं आयी, बड़े सरकार ।

—अभी बरफ़ नहीं आयी ? कौन लेने गया है ?—बड़े सरका
भौंहें उठाकर पूछा ।

—जंगी गया है, बड़े सरकार—बेंगा ने सिर झुकाये ही कहा—
मोटर शायद अभी न आयी हो ।

बरफ़ रोज़ शाम को मोटर से कस्बे में आती थी और कस्बे से
सरकार के यहाँ ।

—अच्छा, थोड़ी देर और इन्तज़ार करो । तब तक पान-वान तो
भिजवाओ ।....अरे, हाँ, रानीजी से बोलो कि लल्लनजी की चिट्ठी
आयी है ।

खुश होकर मुंदरी बोली—छोटे सरकार अच्छी तरह तो हैं ?

—हाँ-हाँ, सब ठीक है । बस, एक खब्त सवार हुआ है । आने को

लिखा है। रुपया माँगा है।—मुस्कराकर बड़े सरकार बोले—लेकिन देख, तू रानीजी से ये बातें न कहना।

—काहे?—मुँहबोली मुँदरी हँसकर बोली—रानीजी पूछेंगी, तो बताना ही पड़ेगा।

—अच्छा, भाग,—कहकर बड़े सरकार हँस पड़े।

मुँदरी तेज़ क़दमों से चली गयी। इतनी देर बाद मँगा का झुका हुआ सिर एक बार उठा और एक लम्बी साँस गले तक आकर घुट गयी। मुँदरी की मौजूदगी में उसकी हमेशा यही हालत होती है। सिर झुक जाता है, साँस रुक जाती है।

दूसरे ही छन फिर मुँदरी जैसे सवा पर चढ़ी आ हाज़िर हुई और हाँफती हुई बोली—रानीजी चिट्ठी माँग रही हैं। नाराज़ हो रही हैं कि आते ही उन्हें ख़बर काहे न दी गयी। जल्दी दीजिए।

झलझल करते तनज़ेब के कुरते की जेब से चिट्ठी निकालते हुए बड़े सरकार ने मुस्कराकर कहा—आख़िर तू नहीं ही मानी।

—मैंने कहाँ कुछ कहा?—झमककर मुँदरी बोली और बड़े सरकार के हाथ से चिट्ठी झपटकर भाग खड़ी हुई।

*

छोटे सरकार के यहाँ से चिट्ठी आयी है, यह ख़बर पहुँचते ही हवेली के बड़े आँगन में पड़े रानीजी के पलंग के चारों ओर औरतों की भीड़ लग गयी। जिसने जहाँ सुना, काम छोड़कर भागी आयी। ऐसे अवसर पर रानीजी की ओर से नौकरानियों को आज़ादी थी, कहीं कुछ ख़राब हो जाय, तो भी कोई बात नहीं। छोटे सरकार की चिन्ता उन्हीं की तरह सबको रहती है, उसकी ख़बर सुनने को उन्हीं की तरह सभी लालयित रहती हैं, यह जानकर वह बहुत ख़ुश होतीं।

मुँदरी चिट्ठी उनके हाथ में थमा कर बत्तीसी चमकाती हुई सिर-हाने खड़ी हो गयी। सुगिया दोनों हाथों से लालटेन थामे हुए झुककर

रोशनी दिखाने लगी। बदमिया के हाथ पंखे पर और जोर-जोर से चलने लगे। और सबकी उत्सुक आँखें कागज़ पर गड़ गयीं।

रानीजी चुपचाप चिट्ठी पढने लगी। तभी जाने किधर से आकर सुनरी ने मुँदरी के पीछे खड़ी हो अपनी ठुड्डी उसके कंधे पर रख दी और रानीजी के होंठों की खामोश हरकतों पर अपनी चमकती हुई आँखों की लम्बी-लम्बी पलकें झपकाने लगी। रानीजी के सूखे चेहरे का रंग जैसे-जैसे बदलता, वैसे-वैसे ही सुनरी के गोरे चेहरे का भी रंग बदलता था। और सब तो चुप कभी कागज़ को तक रही थी और कभी रानीजी का मुँह निहार रही थी।

आखिर चिट्ठी खतम कर परेशान-सी हो रानीजी बोल पड़ी—मुँदरी, बड़े सरकार से कह कि जैसे हो बाहर से छुट्टी मिले, हवेली में आयें।

मुँदरी तुरन्त भागी। सुनरी ने लपककर खंभे को हाथ से पकड़ लिया। उसके पाँवों में जैसे एक कँपकँपी छूट रही थी। उसका जी वहीं बैठ जाने को कर रहा था। रानीजी का डर न रहता, तो वह वहीं बैठ जाती। रानीजी के हुक्म के बिना बैठने का मतलब वह जानती थी।

अधबूढी महराजिन ने आखिर बड़ी हिम्मत करके सन्नाटा तोड़ा—छोटे सरकार कुसल से तो हैं?

—हाँ, वैसी कोई बात नहीं है,—फूली हुई रानीजी ने जैसे एक फुफकार छोड़ा।

—तब, रानी जी....

—उसका माथा खराब हो गया है,—और रानीजी ने माथा ठोंक लिया।

—माथा?—सबके मुँह से एक साथ ही निकला। सुनरी की देह में जैसे कुछ झन्न-से कर गया। वह रानीजी के पास लपक आयी।

—हाँ, उसे फ़ौज में जाने की सूझी है,—रानीजी चीख-सी पड़ी। फिर दोनों मुट्ठियाँ कसकर बोली—लेकिन मेरे रहते वह नहीं जा सकता!

तभी मुँदरी झप-से आकर बोली—बड़े सरकार ने जल्दी ही आने को कहा है,—फिर औरतों की ओर मुड़कर बोली—तुम लोग अब काहे खड़ी हो ? बड़े सरकार की ठंडाई अभी तक नहीं गयी। बिगड़ रहे हैं।

सब अपने-अपने काम पर जा लगीं। सुनरी अपने कमरे की ओर जाने लगी, तो जैसे उसके पाँव ही न उठ रहे थे। मुँदरी ने एक छन उसकी ओर देखा। फिर लपककर उसके माथे पर हथेली रखकर पूछा—ऐसे काहे चल रही है, रे ? जी तो ठीक है ?

—जरा सिर भारी है,—डग आगे बढ़ाती हुई भारी आवाज में सुनरी बोली।

—अच्छा, जा, जरा लेट रह,—कहकर मुँदरी ने उसका ढलका हुआ आँचल सिर पर अच्छी तरह कर दिया।

रानीजी चित लेटी हुई ओंठ चबा रही थी। बदमिया ऐसे जोर से पखा झले जा रही थी, जैसे किसी का गुस्सा पंखे पर ही उतार रही हो।

*

मुँदरी जब ठंडाई लेकर पहुँची, तो दरबार लग गया था। सिर झुकाये ही बैंगा ने ठंडाई का बड़ा चाँदी का लोटा और गिलास उसके हाथों से ले लिया।

बड़े सरकार उठकर पाँव लटकाकर बैठ गये। बैंगा ठंडा जल उनके हाथ पर गिराने लगा। उन्होंने कुहनी तक हाथ धोकर दस-बारह छींटे मुँह पर दिये। फिर बैंगा के कंधे से तौलिया खींचकर मुँह-हाथ पोंछने लगे और बैंगा जमीन पर उकड़ूँ बैठकर ठेहुनों तक उनके पाँव धोने लगा। बड़े सरकार ने अच्छी तरह रगड़-रगड़कर मुँह-हाथ पोंछा। फिर तौलिया बैंगा के कंधे पर डाल, अँगुलियों से अपनी घनी, खूबसूरत मूँछों को सँवार, अँगुलियों की इधर-उधर हो गयी हीरों की अँगूठियों को ठीक कर, उन्होंने कहा—ठंडाई ला।

तब तक बेंगा उनके पाँव पोंछ चुका था। उसने हाथ धोकर, गिलास में ठंडाई उँडेली। फिर दोनों हाथों से सरकार की ओर बढ़ा दिया। सरकार ने दो अँगुलियों से गिलास पकड़कर, बेंत की कुर्सी पर बैठे हुए पुजारीजी की ओर देखकर, होंठों पर एक मुस्कराहट लाकर कहा—पुजारीजी—

—आप पाइए, बड़े सरकार,— दाँत चियार कर पुजारीजी ने कहा।

बड़े सरकार ने उसी तरह गिलास दिखा-दिखाकर काठ की कुर्सी पर बैठे वैद्यजी, तिपाई पर बैठे सौदागर पहलवान और बेंच पर बैठे महाजन के लड़के शम्भू की ओर भी उसी तरह संकेत किया। बाकी लोगों के मुँह छूने की जरूरत उन्होंने न समझी। और जब सब यथा-योग्य जवाब दे चुके, तो एक-एक कर बड़े सरकार तीन गिलास तीन साँसों में उतार गये। फिर कई लम्बी साँसें लेकर पानी के कुल्ले किये। और फिर हाथ-मुँह पोंछकर मूँछों को सँवारा। और कई बीड़े पान चाँदी की तश्तरी से उठा मुँहमुँहा भरकर, मुँह उठाकर, होंठ फैलाकर कहा—बेंगा, इन लोगों को भी पान दे। और फर्शी का जल्द इन्तजाम कर।

चारों विशेष दरबारी दो-दो पान उठाकर सरकार का मुँह ताकने लगे। सरकार ने मुस्कराकर कुरते की जेब से सोने की छोटी, खूबसूरत नक्काशीदार डिबिया निकाली। एक अंगुली से उसे ठोंककर खोला। खुशबू की एक तेज लपट डिबिया से उठी और चारों ओर फैल गयी। कइयों ने नाक सुड़की। सरकार ने दो अँगुलियों से तम्बाकू निकालकर, मुँह उठाकर डाला। फिर कहा—पुजारीजी...

पुजारीजी उठकर सरकार के पास जा हथेली पर हथेली रख खड़े हो गये। सरकार ने उसी तरह दो अंगुलियों से तम्बाकू निकाल प्रसाद की तरह उनकी हथेली पर रख दिया। वैसे ही दूसरे तीनों ने भी तम्बाकू मुँह में डाला।

पुजारीजी बोले—आ-हा-हा ! क्या तम्बाकू है, मुँह में जाते ही जैसे रोम-रोम सुगन्ध से भर जाता है !

वैद्यजी ने कहा—यह वह चूर्ण है, जिसे बूढ़ा भी खाय तो दो घड़ी को जवान हो जाय !

पहलवान ने रद्दा जमाया—सरकार, मुझे तो ऐसा मालूम देता है, जैसे हमारा बल दूना हो गया हो। इस वक्त पचास को भी पावें, तो ऐसा पछाड़ें कि दुनिया तमाशा देखे !

और इसी साल इतिहास से एम० ए० करनेवाले शम्भू ने बघार —यही वह तम्बाकू है, जिसे नवाब वाजिदअली शाह खाते थे। आप लोगों को मालूम है, उनके महल में कितनी बेगमें थीं ?

शम्भू के सवाल का किसी ने जवाब न दिया, जैसे सब समझ गये हों कि शम्भू क्या बताना चाहता है। सब हँस पड़े। पुजारीजी के मुँह से पीक बहकर उनकी लम्बी, खिचड़ी दाढ़ी पर एक काली लकीर खींचने लगी, मगर जैसे उन्हें इसका ज्ञान ही न हो।

बड़े सरकार सिर हिला-हिला मुस्कराते रहे। बाकी लोग मुँह बाये टुकुर-टुकुर ताक रहे थे, जैसे उनकी समझ ही में न आ रहा हो कि बड़े लोग क्या बातें कर रहे हैं !

बेंगा ने फर्शी लाकर रखी और उसका नैचा घुमाकर सरकार के मुँह की ओर कर दिया। चिलम से कोयले की लाल-लाल लपटें निकल रही थीं। और सरकार ने अधलेटे ही निगाली मुँह में डाली और चारों ओर खुशबू-ही खुशबू फैल गयी।

इतनी देर से एक पाँव पर खड़े सरकार को हवा करनेवाले जुमना ने बेंगा को संकेत से बुलाया। सरकार को ठंडक पहुँचानेवाले जुमना की नंगी देह पसीने से नहा उठी थी। उसे देखकर बेंगा को चतुरी की कही बात याद आ गयी, जिस पानी से रात-भर उसे तरी मिलेगी, उसमें कितना हमारा पसीना...वह फुसफुसाकर बोला—का है, बेटा ?

—जरा किसी और को बुला लेते । दोनों पिंडलियां चढ़ गयी हैं। पंखे जवाब दे रहे हैं।

—अच्छा, अच्छा,—कहकर बेंग मुड़ा ही था कि बड़े सरकार की आवाज़ आयी—क्या हुआ ?

बेंगा और जुमना ने एक ही साथ कहा—कुछ नहीं, सरकार, जरा पियास लगी थी।—और जुमना के अकडे हाथ और भी तेज चलने लगे।

शम्भू ने कहा—छोटे सरकार की एक चिट्ठी मेरे पास आज आयी है।

तीनों उत्सुकता दिखाते हुए उसकी ओर देखने लगे। बड़े सरकार ने पूछा—क्या लिखा है ? चिट्ठी लाये हो ?

—चिट्ठी आपको दिखाना मुनासिब नहीं। उसमें कुछ हमारी प्राइवेट बातें है।—मुस्कराकर शम्भू बोला—लेकिन जो बताने की बात है, वह बताये देता हूँ। छोटे सरकार ने कमीशन में जाने की बात तय कर ली है। वह जल्दी ही यहाँ आपसे सलाह-मशविरा लेने आ रहे है।

—यह कमीशन क्या होता है, बेटा ?—पुजारीजी ने पूछा।

—जिसे किंग्स कमीशन मिल जाता है, वह फ़ौज में लेफ़्टिनेंट हो जाता है। लेफ्टिनेंट से तरक्की कर कैप्टेन, मेजर, लेफ्टिनेंट कर्नल, कर्नल आदि के पद पर पहुँचने का रास्ता खुल जाता है।

—यह तो कोई बहुत बड़ा ओहदा होगा न, बाबू ?—पहलवान सौदागर ने पूछा।

—और क्या ? यह सबको थोड़े ही मिलता है। बड़े-बड़े राजा-महराजा, नवाब-ताल्लुकेदार, जमींदार-रईस के खान्दानवालों को मिलता है। बड़ी शान होती है। तनखाह भी खूब मिलती है।

—वह रवसड़ के बाबू सहजा सिंह के कोई भाई क्या किसी ऐसे ही ओहदे पर हैं ?—वैद्यजी ने जानना चाहा।

—हाँ, वह लेफ़्टिनेंट हैं।

—सुना था कि जब वह टीसन पर उतरे, तो कलक्टर साहब, पुलिस सुपरिटेन्डेन्ट साहब वगैरा उनसे मिलने टीसन पहुँचे थे,—बड़े सरकार ने भौंहें उठाकर कहा।

—क्यों नहीं, वह उनसे कहीं ऊँचा ओहदा है।

—हमारे छोटे सरकार का उनसे कम हैं! भगवान् ने चाहा, तो वह उनसे भी बड़े अफसर बनेंगे!—पुजारीजी ने आँखें मूँदकर कहा। आशीर्वाद देते समय हमेशा उनका सिर ऊपर उठ जाता था और पलकें झुक जाती थीं।

—सो तो है,—बड़े सरकार ने जरा गम्भीर होकर कहा—लेकिन उसे कहीं भेजने का मन नहीं होता। एक ही तो घराने का चिराग़ है। वह भी फ़ौज की अफसरी! कहीं उसे कुछ हो जाय, तो यहाँ तो अँधेरा ही छा जायगा। हम किसी तरह तैयार हो भी जायँ, तो क्या रानीजी मानेंगी।

—का जरूरत है, बड़े सरकार, कि छोटे सरकार, कहीं जायँ?—पहलवान ने कहा—यहाँ का राज का किसी अफसरी से कम है!

—सो तो है ही,—वैद्यजी ने कहा।

—अरे, कुछ शादी-ब्याह के बारे में भी लिखा है उसने?—बड़े सरकार ने आँखें मलकाकर पूछा।

शम्भू मुस्कराया।

—सहजा सिंह के भाई ने तो, सुना, किसी मेम से सादी की है?—पहलवान ने कहा।

—राम! राम!-पुजारीजी ने दोनों कानों पर हाथ धरकर कहा।

—बड़े-बड़े फ़ौजी अफसरों के लिए यह कोई अनहोनी बात नहीं,—शम्भू ने हँसकर कहा—कौन जाने, हमारे छोटे सरकार भी कहीं अफ़सर बनकर मेम बैठाने का ख़ाब न देख रहे हों!

—क्या कहा?—बड़े सरकार चौंककर उठ बैठे।

—योंही, मुँह से बात निकल गयी,—शम्भू ने जरा सहमकर कहा—

ऐसी कोई बात छोटे सरकार ने नहीं लिखी है.। मैं तो बात की बात कर रहा था।

—हां !—बड़े सरकार ने तेवर बदलकर कहा—कहीं ऐसा हुआ, तो काटकर फेंकवा दूंगा। यहां रोज जाने कितनी बड़ी-बड़ी जगहों से रिश्ता आ रहा है ! अबकी आने तो दो उसे !

तभी हल्के के पटवारी ने आकर सबको यथा-योग्य कहा और एक स्टूल पर बैठ गया। बस्ता जांघों पर रख लिया।

—कहिए, मुन्शीजी,—बड़े सरकार उसकी ओर मुखातिब हुए।

—कहूंगा, जरा सुस्ता तो लेने दीजिए,—कहकर उसने टाट पर बैठे चौधुरियों के गिरोह की ओर कनखी से देखा। बड़े सरकार कुछ समझकर चुप हो गये।

मुंदरी ने आकर दोनों हाथ एक-दूसरे से उलझाते हुए कहा—बड़े सरकार, रानीजी पूछ रही हैं, अभी कितनी देर है ?

—बस-बस, अब आ ही रहे हैं। जरा थोड़े पान और तो भेजवा दे।....अरे हां,—पटवारी की ओर मुड़कर बोले—मुन्शीजी, कुछ पानी-वानी पीयेंगे ?

—हां, जरा ठंडा हो लूं। क्या गर्मी पड़ रही है, बड़े सरकार !—और अंगोछे से वह हवा करने लगा।

उसी समय घोड़े की टापों की आवाज आयी। सब आवाज की ओर देखने लगे। उत्तर के फाटक से निकलकर घोड़ा दुलकी चाल से चला आ रहा था। पास आ गया, तो बड़े सरकार को छोड़ सभी उठ खड़े हुए और सबके मुंह से एक साथ ही फुसफुसाहट की आवाज आयी—दारोग़ा साहब !

बेंगा ने लपककर लगाम पकड़ ली। दारोगा नीचे कूदकर बोला—आदाब, हुजूर !

—तस्लीम,—बड़े सरकार ने खुशी जाहिर करते हुए कहा—आइए, आइए, दारोगा साहब !

सब ओर से सलाम-सलाम की आवाज आयी। लेकिन दारोग़ा ने उधर ध्यान देने की कोई ज़रूरत न समझी। वह बड़े सरकार से हाथ मिलाकर, पास ही आरामकुर्सी पर बैठ गया। सब लोग भी बैठ गये।

—कहिए, दारोगा साहब, सब कुसल तो है ?—पुजारीजी ने दाँत निपोरकर कहा।

—सब आप बुजुर्गों और परमात्मा की दुआ है। आप अपनी कहिए।—दारोग़ा ने पुजारीजी की ओर देखकर योंही कहा।

—चल रहा है।

बड़े सरकार ने तब अब तक मुँह बाँधे हुए बैठे चौधरियों की ओर देखकर इशारा किया। एक ने खड़े होकर कहा—बड़े सरकार, हम यह अरज लेकर आये थे कि सब परती-परास का बन्दोबस्त सरकार कर रहे हैं, तो आखिर हमारे जानवरों को खड़े होने की जगह कहाँ मिलेगी ?

पटवारी उन्हें घूरे जा रहा था। दारोग़ा ने भी तिरछी नज़र से एक बार उनकी ओर देखा।

बड़े सरकार बोले—तुम लोग फिर कभी मिलना। आज फ़ुरसत नहीं है।

—जो हुकुम, बड़े सरकार,—और पूरा-का-पूरा गिरोह एक साथ उठकर, झुककर, बारी-बारी से बड़े सरकार, दारोगा साहब और पटवारी को सलाम करके चला गया।

तब बड़े सरकार ने धरती पर बैठे किसानों की ओर मुखातिब हो कहा—आज तुम लोग जाओ। कल तुम्हारी अरदास सुनेंगे।

वह लोग भी खड़े हो और वैसे ही सलाम करके चले गये।

—अब कहिए, दारोग़ा साहब, कैसे तकलीफ़ की आपने ?—फिर बैंगा की ओर देखकर उन्होंने कहा—दारोग़ा साहब के लिए नाश्ते का इन्तज़ाम कर।

—नाश्ता क्या, अब तो खाने का ही वक्त हो गया,—हँसकर दारोग़ा ने कहा—आपके यहाँ का खाना मुँह से ऐसा लगा है कि...

—यही सही, इसमें तकल्लुफ़ की कोई बात नहीं,—बड़े सरकार ने भी हँसकर कहा—अब बताइए, योंही निकल आये या....

—योंही आने-जाने की आजकल कहाँ फुरसत मिलती है ? कलक्टर साहब की एक चिट्ठी लेकर आया हूँ ।—कहकर उसने पैन्ट की जेब से चिट्ठी निकालकर सरकार की ओर बढ़ा दी ।

सरकार चिट्ठी खोलने लगे, तो वह बोला—अभी रहने दीजिए,—और उसने वहाँ बाकी बैठे हुए लोगों की ओर देखा ।

बड़े सरकर ने पुजारीजी से कहा—भगवान के भोग का समय तो हुआ जान पड़ता है ।

—अभी कुछ देर है, लेकिन बड़े सरकार का हुकुम है, तो अभी भोग लगाये देता हूँ ।—कहकर वह मन्दिर की ओर चल पड़े ।

तभी हाँफती हुई मुँदरी आकर बोली—रानीजी बेहोश हो गयी हैं । दौरा आ गया है ।

बड़े सरकार ने वैद्यजी की ओर देखकर कहा—जाइए, वैद्यजी ! आप तो कहते थे कि अब दौरा कभी आयेगा ही नहीं । देखते हैं कि अब डाक्टरी इलाज...

—कोई धक्का लगा होगा, बड़े सरकार,—उठकर पगड़ी ठीक करते हुए वैद्यजी बोले—हम अभी दवा देते हैं !

—बड़े सरकार, आपका चलना जरूरी है । रानीजी जब तक आपसे बातें न कर लेंगी....—मुँदरी बोली ।

—बस, अब आ ही रहे हैं । तू चलकर सँभाल ।

—आप जाइए, हुजूर । बातें फिर होंगी । आज रात मैं यहीं रुक जाऊँगा ।—दारोग़ा ने कहा ।

—माफ़ कीजिएगा ! क्या बताऊँ, यह ऐसा रोग है कि उनका पीछा ही नहीं छोड़ता । पच्चीस साल से ज्यादा हो गये ।—कहकर उन्होंने पैर लटका दिये । बेंगा ने झुककर जूते पहना दिये ।

वह चले ही थे कि माली बेले के फूलों की डाली लिये आ पहुँचा। बड़े सरकार ने मुँदरी की ओर संकेत कर दिया।

*

आँगन में रानीजी पलंग पर बेहोश होकर चित पड़ी थीं। सुनरी और सुगिया उनके दोनों ओर झुकी हुई उनके पतले, सफ़ेद बाहुओं को रूमालों से कसकर बाँध रही थीं। बदमिया पंखे पर गुलाब-जल डाल ज़ोर-ज़ोर से हवा कर रही थी। सभी नौकरानियाँ इकट्ठी हो रानीजी की ओर चिन्ता-भरी आँखों से देख रही थीं।

मुँदरी ने लपककर एक कुर्सी ला रानीजी के सिरहाने रख दी। बड़े सरकार ने बैठकर कहा—गुलाब-जल ला। वैद्यजी के साथ कौन दवा लाने गया है?

—बेंगा गया है, बड़े सरकार,—और लपककर मुँदरी चाँदी के लोटे में गुलाब-जल ला, बड़े सरकार के पास झुककर खड़ी हो गयी।

बड़े सरकार ने अँगुलियों से रानीजी के होंठों के नीचे टटोला। दाँत लगे हुए थे। उन्होंने हाथ धोकर मुँदरी के कन्धे से तौलिया खींचकर पोंछा। फिर रानीजी की पतली, नन्ही नाक को अँगुलियों से दबा दिया।

थोड़ी देर में रानीजी के गले में एक हरकत हुई और फक-से उनका मुँह वैसे ही खुल गया, जैसे घुण्डी दबाने से खिलौने बतख का मुँह खुल जाता है। और लम्बी गरम साँस उनके मुँह से ऐसे निकल पड़ी कि झुके हुए बड़े सरकार की मूँछें फरफरा उठीं। बड़े सरकार मुँह हटाकर, लोटे से अंजुली में पानी ले रानीजी के मुँह पर हौले-हौले बूँदें टपकाने लगे।

थोड़ी देर में रानीजी की पलकें खुल गयीं। उन्होंने पुतलियाँ घुमा-घुमाकर इधर-उधर देखा। फिर ज़ोर से हँस पड़ीं। वह हँसी देखकर सब-के-सब ऐसे सहम गये, जैसे कोई मुर्दा हँसा हो। फिर उनके शरीर में एक हरकत हुई। वह ज़ोर लगाकर अपनी बाँहें छुड़ाने की कोशिश में छटपटाने लगीं।

—ज़ोर से पकड़े रहो, छूटने न पाये !—बड़े सरकार ने कहा।

महराजिन और पटेसरी ने लपककर रानीजी के पैर दबा लिये।

थककर रानीजी ने एक ज़ोर की चीख मारी और फिर बेहोश हो गयीं। कट की एक आवाज़ हुई और दाँत बैठ गये।

परेशान होकर बड़े सरकार चीख-से उठे—बेंगवा अभी नहीं लौटा ?

—आ गया, सरकार,—दालान से हाँफते बेंगा की आवाज आयी।

दवा रानीजी के कानों में डाली गयी।

और फिर बड़े सरकार ने पहले ही की तरह होंठों के नीचे टटोलकर रानीजी की नाक दबा दी।

एक घंटे के बाद रानीजी सही तौर पर होश में आकर आह-आह करती उठ बैठीं। बेहोशी में छटपटाने और ज़ोर लगाने के कारण उनकी दुर्बल देह होश में आने पर बड़े ज़ोर से दर्द करने लगती थी।

मुंदरी ने चाँदी के गिलास में गर्म दूध लाकर रानीजी के होंठों से लगा दिया।

—बदमिया, जल्दी छत पर पलंग लगाकर रानीजी को ऊपर ले जा। हम अभी आते हैं। एक मेहमान आये हुए हैं।—कहकर बड़े सरकार उठ खड़े हुए।

*

—आप इतनी जल्दी चले आये, हुज़ूर ?—बड़े सरकार को देखकर कुर्सी से उठता हुआ दारोगा बोला।

—क्या करें, दारोग़ा साहब, एक दिन की बात हो तो हो। यह तो ज़िन्दगी-भर का रोग है। कौन कहाँ तक सर दे।—तख़त पर बैठते हुए परेशानी से बड़े सरकार बोले। बेंगा लपककर जूते उतारने लगा।

बैठक की घड़ी ने टन-टन कर दस बजाये।

—आप उन्हें बम्बई क्यों नहीं भेज देते ?—दारोग़ा बोला—सुना

है, वहाँ इस रोग के बड़े-बड़े डाक्टर हैं। वे बातचीत करके ही यह रोग ठीक कर देते हैं।

—ऊँह ! आप भी क्या ले बैठे !—पाँव ऊपर कर बड़े सरकार बँगा से बोले—दारोगा साहब के खाने का इन्तजाम कर, बहुत देर हो गयी। —फिर पटवारी की ओर देखकर बोले—मुंशीजी को भी खाना खिलाना है।

पटवारी बैठा-बैठा झपकी ले रहा था। चिहुँककर बोला—मुझे कुछ हुकुम हुआ था, बड़े सरकार ?

—मुंशीजी, आप क्यों यहाँ बैठे-बैठे इस गरमी में अपनी साँसत कर रहे हैं ? जाइए, मन्दिर में भोजन कर आराम से सोइए। कल सुबह आप से बातें होंगी।

पटवारी बस्ता सँभालते हुए उठकर चला गया।

—मैं जानता कि आप आज इतने परेशान होंगे, तो...

—कोई परेशानी नहीं, दारोगा साहब,—बड़े सरकार आराम से गाव तकिये पर पीठ टेकते हुए बोले—परेशानी को तो हवेली में छोड़ आया हूँ। अब आप अपनी बात कहिए।

—बात जो है, कलक्टर साहब ने चिट्ठी मे लिख दी है,—दारोगा ने बड़े सरकार को जेब से चिट्ठी निकालते देखकर कहा—अब इस वक्त इसे पढ़ने की आप तकलीफ न करें। मैं सब बातें मुख्तसर आपको बताये देता हूँ। एक हफ्ते के बाद रिक्रूटिंग अफसर आनेवाला है। एक हजार जवान उसे जैसे भी हो इस हलके से देना है। सुझाव यह है कि इसी बीच आप जितने किसानों को बेदखल कर सकें, कर दें, ताकि बेकार होकर जवान हमारे काँटे में आप-ही-आप आ फँसें। दूसरी बात कलक्टर साहब ने यह फरमायी है कि आप छोटे सरकार को कमीशन में भेज दें। उनके देखने में हमारे हलके में हुजूर का ही एक ऐसा खानदान है, जिसका कोई आदमी फौज में बड़ा अफसर हो सकता है। ऐसा करने से जवानों के दिल

का डर भी निकल जायगा। कलक्टर साहब ने यह भी कहा है कि इस साल आपको राय बहादुर का खिताब दिलाने की हर कोशिश करेंगे।

हाथों में थाल लिये बेंगा ने पूछा—खाना कहाँ लगेगा, बड़े सरकार?

बड़े सरकार ने कहा—दीवानखाने में लगा। और किसी दूसरे को पंखा खींचने को कह। इसे अब छुट्टी दे दे।

दीवानखाना काफ़ी बड़ा और खूब सजा हुआ था। पूरब-उत्तर के कोने में एक खूबसूरत छोटी मेज पर टेबिल लैम्प जल रहा था। उसके हरे शेड में बहुत खूबसूरत मोतियों की झालर लगी थी। पूरे फर्श पर मोटा गालीचा बिछा था और चारों ओर दीवारों से लगाकर मखमली, सुनहरे कामवाले लम्बे, गोल और चौकोर गाव तकिये सजाकर रखे हुए थे। पश्चिम की दीवार से लगाकर बीच में एक मखमली चाँदनी बिछी थी। चाँदनी के चारों कोनों पर छोटे-छोटे कढ़े हुए सोने के मोर नाच रहे थे और बीच में एक बड़ा पान चमक रहा था। इसी पर बड़े सरकार बैठते थे। इसके ठीक ऊपर बड़े सरकार के पिता का एक बड़ा ही शानदार तैल-चित्र टंगा था। उस चित्र के दाहिने बड़े सरकार का एक बड़ा चित्र था, जिसमें वह शिकारी की पोशाक में जमीन पर बन्दूक टिकाये अकड़कर खड़े थे और बायी ओर घोड़े पर सवार छोटे सरकार का चित्र शोभायमान था। दक्खिन की दीवार से लगी गंगा-जमनी चौकी थी। उसके बीच में सोने के दो सुन्दर, बड़े-बड़े गुलाबपाश रखे हुए थे। और उनके आगे इत्र से भरा हुआ इत्रदान रखा हुआ था। पूरब की दीवार में बड़ा दरवाजा था। दरवाज़े के दोनों ओर दो बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ थीं। दरवाजे और खिड़कियों के ऊपर की चौखटों से मोती की झालरें लटक रही थीं। पच्छिम-उत्तर के कोने में अन्दर जाने का दरवाजा था, जिसके पल्ले अन्दर से बन्द कर दिये जाते, तो मालूम होता कि एक खूबसूरत आलमारी जड़ी है। उत्तर की दीवार पर दो बन्दूकें लटक रही थीं। बीच में ऊपर छत से लटके रंग-बिरंगे झाड़-

फानूस पर हरी रोशनी कई रंगों में चमक रही थी। पूरी छत लकड़ी की थी और उसपर तरह-तरह के फूल-पत्तों की नक़्क़ाशी हुई थी। झाड़ के नीचे छत की आधी लम्बाई में गोटेदार बड़ा पंखा रंगीन डोरियों से लटकाया गया था, जिसके बीच की डोर दरवाजे के ऊपर एक छेद से ओसारे में जाती थी, जहाँ बैठा कोई उसे खींचता रहता था। दीवानखाना हमेशा गम-गम महकता रहता था।

गंगा-जमनी चौकी के पास दस्तखान पर बैठकर दारोगा बोला—गला तर करने के लिए भी कुछ है, या....

—इतने बेसब्र क्यों होते हो, यार?—कहकर बड़े सरकार ने बेंगा को आवाज लगायी। और उसके आने पर पीछे के गाव तकिये के नीचे से चाभियों का गुच्छा निकालकर उसके सामने फेंक दिया। बेंगा अन्दर जाने के दरवाजे से चला गया।

लुकमा तोड़ता दारोगा बोला—अकेले खाने में कुछ मज़ा नहीं आता। मजहब कमबख्त भी क्या चीज है!

हँसकर बड़े सरकार बोले—पीने में तो हम साथ देंगे ही!

—हाँ, यही तो एक चीज है, जिसके सामने मजहब-वजहब की एक नहीं चलती!—कहकर वह जोर से हँस पड़ा।

बेंगा ने सामान ला दस्तरखान के एक ओर करीने से रख दिया।

—देखो, थोड़ी बरफ़ हो, तो लाओ, जल्दी!—कहकर बड़े सरकार बोतल खोलने लगे।

—सोडा भी खोलूँ या....

—आग में पानी डालने से तो बस राख ही हाथ लगती है!

कुल-कुल की आवाज़ हुई और दिलों के तार जैसे झनझना उठे। लाल परी से नजरें मिलीं और आँखों में रंग आ गये।

—बरफ का इन्तजार करोगे?

—अमा, इसे उठाओ,—कहते हुए दारोगा ने गिलास उठाया। गिलास टकराये और दुनिया झूम उठी।

तीन पेगों के बाद दमकती हुई नजरें उठाकर दारोगा ने कहा — उस रात जो छोकरी आयी थी, क्या नाम था उसका ?

हँसकर बड़े सरकार बोले—एक-दो हों, तो नाम याद रखें। यहाँ तो मौसम बदला, और नया फल। कहो तो....

—यार, वह खूब थी ! सच पूछो तो उसी का ख्याल लेकर चला था। खैर, अब जैसा तुम चाहो।

बड़े सरकार ने बेंगा को पुकारा।

(२)

बड़े सरकार जब दीवानखाने से हवेली की
चढ़ रहा था।

छत पर रानीजी के पलंग के सिरहाने खड़ी सुनरी पंखा झल रही थी।

—रानीजी सो गयीं?—बड़े सरकार ने बगल ही में पड़े अपने पलंग पर धच से बैठते हुए सिरहाने से बेले के हार उठा सूंघते हुए पूछा।

घूंघट नीचे सरकाकर सुनरी ने कहा—जी, बड़े सरकार।

—तो मसहरी गिराकर तू नीचे जा। महराजिन से कह देना, मलाई भेज दे। खाना नहीं खायेंगे। और बदमिया को जल्दी भेज।

पंखा सिरहाने के पाये से टिकाकर सुनरी नीचे उतरी।

बदमिया अपने कमरे में बैठी लालटेन की रोशनी में सिंगार-पटार कर रही थी। जरा दूर ही खड़ी होकर सुनरी ने कहा—मलाई लेकर जा, बड़े सरकार बुला रहे हैं।

साँप के फन की तरह पलटकर बदमिया ने कहा—और तेरे छोटे सरकार कब आ रहे हैं, पूछा था?

सुनरी ने कोई जवाब न दिया। वह अपने कमरे की ओर चली गयी।

मुंदरी चौके से निबटकर आयी, तो देखा, सुनरी ठेहुने पर ठुड्डी रखे बैठी थी।

—यहाँ कैसे बैठी है? सोयी नहीं?—कथरी उठाते हुए मुंदरी ने कहा—तेरा खाना रख दिया था, खा लिया?

वैसी ही बैठी सुनरी बोली—जी नहीं करता।

—आज शाम से ही तुझे का हुआ है? चल, जल्दी दो कौर खा ले। बड़े सरकार आ गये?

—हूँ।

—तो उठ न !

—उठती हूँ।

—अब दिन धरेगी कि जल्दी उठेगी ? कितनी रात चली गयी। जो रुचे-पचे जल्दी खा ले।

—खाऊँगी नहीं।

—काहे नहीं खायगी ? चल, उठ जल्दी। तंग न कर। थकान के मारे पोर-पोर दर्द कर रहा है। दो घड़ी आराम से सोऊँगी नहीं, तो कल कैसे खटूँगी।—कहकर उसने सुनरी का कन्धा हिलाया।

—उठती हूँ।

—ला दूँ यहीं ?

—नहीं, मैं खाऊँगी नहीं। जी बिल्कुल नहीं करता, सच कहती हूँ।

—बड़ी जिद्दी है, माई, यह लड़की ! का हुआ है आखिर तुझे ?

—कुछ नही।

—तो फिर उठती काहे नहीं ?

—छोटे सरकार का सच ही फौज में चले जायेंगे, माई ?—इतनी देर से सुनरी के गले में अटका हुआ सवाल आखिर बाहर आकर ही रहा।

—वह जाय भाड़ में ! तुझे का लेना-देना है उससे ?—चिढ़कर मुँदरी बोली—उठेगी कायदे से कि...

हथेली टेककर सुनरी उठ खड़ी हुई। बोली—खाऊँगी नहीं।

—खायगी कैसे नहीं ?—उसका हाथ पकड़कर बाहर ले जाती हुई मुँदरी बोली—मुँह तो जुठार ले, बिना खाये कहीं सोते हैं ! और अब यह आदत छोड़। बच्ची नहीं है, कि तेरे मुँह में ठूँसकर खिलाऊँगी।

*

बदमिया ने बड़े सरकार के जूते उतार दिये, तो उन्होंने दोनों हाथ उठाकर कहा—कुरता उतार।

बदमिया ने कुरता उतारकर खूँटी पर टाँग दिया। बड़े सरकार ने पाँव ऊपर कर मलाई खायी और तुरन्त पाँव फैला दिये।

बदमिया पैताने बैठकर उनके पाँव दबाने लगी। उसके हाथों की चूड़ियाँ झन-झन बजने लगीं। कई बार उसने चूड़ियों को ऊपर सरकाया, लेकिन चूड़ियाँ फिर-फिर नीचे बह आतीं। आखिर उसने उन्हें ऊपर चढ़ाना छोड़ दिया और चूड़ियाँ झन-झन बजती रहीं, जैसे लम्बी-लम्बी साँसों में नन्हीं-नन्हीं घण्टियाँ बँधी हुई हों। नीचे सन्नाटा छा गया था।

पुरवा झझकार उठा। बड़े सरकार की नाक बजने लगी, तो बदमिया ने हाथ ढीले कर दिये। अब वह उनके तलवे सहला रही थी और नींद में झूम रही थी। और थोड़ी देर में उनके पाँवों पर हाथ रखे हुए ही वह नींद का झोंका खाकर लुढ़क गयी।

*

पुरवा के मधुर झकोरों में सारी दुनिया बेसुध होकर सो रही थी। लेकिन तब भी रानीजी की दुखी आत्मा को चैन न था, वह जाग रही थी और तड़प रही थी। अचानक नींद में डूबी हुई रानीजी जोर-जोर से रोने लगीं।

बदमिया रात को कुत्ते की नींद सोती थी। पाँच सालों से उसे इसकी आदत पड़ गयी थी। बारह साल की उम्र में वह बड़े सरकार की सेवा में लगायी गयी थी। तब से रोज रात में वह इसी तरह बड़े सरकार के पाँव दबाती हुई नींद का झोंका खा, लुढ़ककर सो जाती थी। सोये में ही बड़े सरकार उसे अपनी बग़ल में खींच लेते थे। और उसके जिस अंग के साथ जैसा चाहते थे, करते थे। शुरू-शुरू में नींद खुल जाने पर बदमिया के हाथ मशीन की तरह उठकर विरोध करते थे, उसकी सारी देह कसमसाकर जंजीरों को तोड़ देना चाहती थी। लेकिन जंजीरों की ताकत से लोहा लेना उस असहाय, अनाथ छोकरी के बस की बात न

थी। वह जानती थी कि पलंग की पाटी के पास बिछौने के नीचे एक बन्दूक रखी रहती है। वह हारकर पत्थर की तरह पड़ जाती थी। कई बार उसका मन कहीं भाग जाने को हुआ था। लेकिन भागकर वह कहाँ जाती? विधवा माँ के मरने पर बड़े सरकार ने तरस खाकर उसे आसरा दिया था। सो, धीरे-धीरे उसका विरोध मर गया, आत्म मर गयी। वह एक मशीन बन गयी। और सब-कुछ की अभ्यस्त हो गयी। बड़े सरकार का हुक्म था कि वह सज-सँवरकर उनके पास आया करे। बड़े सरकार उसके कपड़े-लत्ते, साज-सिंगार के सामान खुद मँगाते थे। रात में बड़े सरकार को जब जो जरूरत पड़ती, वह तुरन्त उठकर करती। उसे नींद से जगाने के लिए एक आवाज, पैर की एक हरकत या पलंग का जरा भी हिलना काफ़ी था। शुरू में बड़े सरकार के स्पर्श से बदमिया का अंग-अंग गनगना उठता था। लेकिन धीरे-धीरे उसके शरीर की बिजली हमेशा के लिए बुझ गयी। उसको पहले बड़ी शर्म आती थी, लेकिन अब बिल्कुल नहीं आती। धीरे-धीरे उसे मालूम हो गया था कि हवेली में जितनी औरतें थीं, सब-की-सब अपने दिनों मे उसी तरह बड़े सरकार की सेवा में रह चुकी थीं। कोई उसपर हँसनेवाला हवेली में न था, चलनी चलनी पर कैसे हँसे? और अब तो वह बेहद ढीठ हो गयी थी। वह किसी भी नौकरानी को ताव में न लाती। हाँ, वह खिज खाती थी, तो सिर्फ सुनरी से। सुनरी भी उसकी हमउम्र थी। लेकिन, जाने क्यों, बड़े सरकार उसपर आँख न उठाते थे। इसलिए बदमिया उससे बेहद जलती थी। और सुनरी के भोलेपन की यह हद ही थी कि वह बद-मिया को नीची नजर से देखती थी और कभी-कभी ताने भी मार देती थी। बदमिया जल-भुनकर रह जाती थी। उसकी समझ में न आता था कि सुनरी अब तक कैसे बची रह गयी? वह चाहती थी कि सुनरी भी उसी की पाँत में आ जाय, तब वह उसके तानों का वह जवाब दे, वह जवाब दे कि छट्ठी का दूध याद आ जाय। वह हमेशा सुनरी पर नजर रखती और किसी भी मौके की तलाश में रहती। लेकिन वह देखती कि सुनरी की माँ

हमेशा उसे चारों ओर से ऐसे अपने आँचल से ढँके रहती, जैसे कोई मुर्ग़ी अपने अंडे को। बदमिया रात-दिन मनाती कि मुँदरी मर जाय। लेकिन मुँदरी की तन्दुरुस्ती ऐसी कि माँ-बेटी अगल-बगल खड़ी होतीं, तो लगता, जैसे बहनें हों।

लेकिन पिछले साल गर्मी के इन्हीं दिनों बदमिया की मुराद पूरी हो गयी। उसी दिन से जब भी मौक़ा मिलता, वह सुनरी पर ताना मारने से बाज न आती। फिर भी उसे वह ख़ुशी न हुई, जो ऐसा मौक़ा मिलने पर उसे होनेवाली थी। जाने क्यों, मन-ही-मन वह अपनी हार मानने लगी थी। जैसे सुनरी में और उसमें बहुत बड़ा फ़र्क़ हो, बहुत बड़ा!

रानीजी के रोने की आवाज सुनकर बदमिया उठ बैठी। बड़े सरकार सीने से तकिया दबाये पट पड़े वैसे ही ख़र्राटे ले रहे थे। बदमिया के जी में आया कि वह भी कान मूँदकर सो जाय। लेकिन रानीजी की सपने की वह रुलाई बड़ी डरावनी होती। बदमिया के रोंगटे खड़े हो गये। वह थोड़ी देर तक सहमी हुई बैठी रही कि बड़े सरकार या नीचे कोई भी जाग जाय, तो वह पलंग से उतरकर रानीजी को जगाये। लेकिन बड़े सरकार कुम्भकर्ण की नींद सोते थे। और नीचे जगकर भी कोई ऊपर न आती। रात में ऐसे मौके पहले भी कितनी ही बार आये थे। शुरू में ऐसे मौके पर वह डरकर बड़े सरकार के पाँव पकड़े, काँपती हुई पड़ी रहती थी। फिर भी देर तक रानीजी की रुलाई जब न थमती और वह कुछ बड़बड़ाने भी लगतीं, तो बदमिया और अधिक सहने में असमर्थ हो, कुछ ऐसी हरकत करती कि बड़े सरकार चौंककर उठ बैठते और बन्दूक पर हाथ रखते हुए पूछते—क्या हुआ?—बदमिया को कुछ बताने की जरूरत नहीं पड़ती। रानीजी की रुलाई अब तक बड़े सरकार के कानों में पड़ गयी होती। वह हँस पड़ते। कहते—जगा, उन्हें।—बदमिया काँपती हुई उठकर, मसहरी उठाती और रानीजी को जगा देती।

लेकिन इधर बड़े सरकार का हुक्म हो गया था कि उन्हें किसी भी हालत में कभी भी न जगाया जाय। बदमिया भी अब बच्ची नहीं रही।

उसका डर अब कुछ कम हो गया था। फिर भी रात के सन्नाटे में रानीजी की वह रुलाई उसे ऐसी लगती, जैसे श्मशान में कोई मुर्दा रो रहा हो। रात में नींद में होने पर भी बदमिया की सुप्त चेतना में कहीं-न-कहीं यह भयानक डर हमेशा बना रहता। रानीजी की रुलाई सुनकर कई बार उसने कानों में उँगलियाँ ठूँसकर चुप पड़ी रहने की कोशिश भी की थी। लेकिन ऐसा करने से वह रुलाई जैसे सौगुनी तेज और भयानक हो उसके दिमाग में गूँज उठती। उसे उठना ही पड़ता।

बदमिया ने उतरकर सहमे हाथों से मसहरी उठायी। पलंग से सटी रानीजी का मांसहीन चेहरा सचमुच ही उसे मुर्दे की तरह लगा। रुलाई के कारण उनका चेहरा ऐसा विकृत हो रहा था, कि देखते ही डर लगे। बदमिया ने अपने कांपते हाथों से उनके छाती पर पड़े हाथों को उठाया और हिलाकर सहमी आवाज में बोली—रानीजी, रानीजी! होश कीजिए!

रानीजी ने चौंककर आँखें खोलीं और चीख उठीं—रंजन! रंजन! —और दोनो हाथ फैलाये उन्होंने उठने की कोशिश की, लेकिन अगले ही छन गिरकर चुप हो गयीं।

बदमिया ने झुककर उनके होंठ टटोले। दांत लग गये थे।

ऐसा अक्सर ही होता था। ऐसे मौके पर जब भी रानीजी के मुंह से कोई शब्द निकलता, वह बेहोश हो जाती थीं।

बदमिया डरकर नीचे भागी। उसे एक बार मुंदरी ने बताया था कि रोज रात में रानीजी के पास एक प्रेतात्मा आती है। रानीजी की नींद खुलने पर जब वह जाने लगती है, तो रानीजी हाथ फैलाकर उसे पकड़ना चाहती हैं। लेकिन वह पकड़ में नहीं आती और तब रानीजी गिरकर बेहोश हो जाती हैं।

बदमिया कई जगह गिरते-गिरते बची। वह ऐसी बदहवास होकर भाग रही थी, जैसे कोई भूत उसका पीछा कर रहा हो। हाँफती हुई वह

मुँदरी के बिस्तर के पास पहुँची, तो उसके पास लेटी सुनरी बोल पड़ी—का बात है, बदामो बहन ?

बदमिया का सारा डर जाने कहाँ क्षण-भर में ही उड़ गया। वह जलकर बोली—तू जाग रही है का ?

—हाँ, नींद नहीं आती,—कसमसाकर सुनरी ने कहा।

—नींद कैसे आये !—झमककर बदमिया ने कहा—तेरा चहेता जो फौज में जा रहा है !

—कोई बात हुई, बदामो बहन ? का सच ही छोटे सरकार फौज में चले जायेंगे। रानीजी उन्हें रोकेंगी नहीं ?—सुनरी ऐसे बोली, जैसे यह जानने को उसका दिल जाने कब से तड़प रहा हो।

—जाकर तू ही काहे नहीं पूछती ?—झिड़ककर बदमिया ने कहा और झुककर वह मुँदरी को उठाने लगी।

मुँदरी उठ बैठी, तो बदमिया ने कहा—रानीजी बेहोस हो गयी हैं, फुआ।

—बड़े सरकार तो हैं वहाँ,—जंभाई लेती हुई मुँदरी बोली।

—वह तो फों-फों सो रहे हैं। चलो जल्दी, फुआ !—उसका हाथ पकड़कर बदमिया बोली।

—तू दूध गरमाकर ले आ। मैं आती हूँ।—उठकर खड़ी हो मुँदरी ने आँचल ठीक करते हुए कहा।

मुँदरी चली गयी, तो सुनरी ने खड़ी हो बदमिया से कहा—बैठो न, बहन, दो छन।

—बैठे मेरी बला ! भगवान करे, छोटे सरकार जरूर फौज में चले जायें !—और जोर-जोर से पाँव पटकती हुई वह चली गयी। उसके पाँवों की हर धमक जैसे सुनरी के नाजुक दिल पर हथौड़े की चोट कर रही थी।

*

रानीजी होश में आकर उठ बैठीं।

मुंदरी ने रोंएदार तौलिये से फूल के हाथों उनका मुंह, गला और भीगे बाल पोंछ दिये। फिर रोकर बोली—रानीजी, मुझसे देखा नहीं जाता। आपकी सोने की देह माटी में मिल गयी!—और वह फफक-फफककर रो पड़ी।

रानीजी की भी पलकें मलकने लगीं। उनकी लबालब भरी आंखों को तौलिये से ढंककर मुंदरी भरे गले से बोली—का करूं, चुप नहीं रहा जाता।—और बगल में दूध लिये खड़ी हुई बदमिया के हाथ से गिलास लेकर कहा—यह दूध पी लीजिए।—और तौलिया हटाकर उनके होंठों से गिलास लगा दिया।

दो घूंट पीकर रानीजी ने पलकें उठाकर मुंदरी की आखों में देखकर कहा—इस तरह तू कब तक मुझे दूध पिलायगी?

—जब तक जिन्दा हूं,—सिर झुकाकर मुंदरी बोली—पी लीजिए!

—तू जिन्दा है?—एक करुण मुस्कान रानीजी के नीले होंठों पर उभरती-उभरती रह गयी।

—हां, मैं जिन्दा हूं। हमासुमा हर हालत में जिन्दा रहते हैं, रानीजी। गम को हम रोटी-पानी की तरह खा-पीकर पचा लेते हैं। लीजिए, यह दूध तो पी लीजिए। बदमिया खड़ी है।—और उसने गिलास फिर उनके होंठों से लगा दिया।

दो घूंट और लेकर, मुंह हटाकर रानीजी ने कहा—बस।

—थोड़ा और पी लीजिए। आज दो-दो बार दौरा आ गया। आप बहुत कमजोर हो गयी है।—और उसने फिर गिलास उनके होंठो से लगा दिया।

एक-दो घूंट और लेकर रानीजी ने मुंह खींच लिया।

मुंदरी ने बदमिया को गिलास थमाते हुए कहा—जा नीचे, सुनरी अकेली है। उसी के पास सो जाना।

बदमिया का मन उनकी बातें सुनने को कर रहा था। बड़े अनमनेपन से वह नीचे गयी। बड़े सरकार और रानीजी के बाद हवेली में मुंदरी का ही हुक्म चलता था।

पुरवा झझकार रहा था। बड़े सरकार पट पड़े हुए छाती से तकिया चिपकाये बेगम सो रहे थे। उनकी नाक घड़र-घड़र बज रही थी।

रानीजी के उड़ते बालों को उंगलियों से सँवारती हुई मुंदरी बोली—जरा उठिए तो बिस्तर बदल दूँ। आपके कपड़े भी तो भींग गये हैं।

—नहीं, इस वक्त रहने दे। तू जरा मेरे पास बैठ। आज बातें करने को बहुत जी कर रहा है। नींद निगोड़ी अब नहीं आने की। और नींद में भी यहाँ किसे चैन मिलता है!—कहकर रानीजी ने उसका हाथ पकड़ लिया।

*

मुंदरी आज रानीजी की सिर्फ़ लौंडी थी। लेकिन कभी वह उनकी सहेली और राजदार भी रह चुकी थी, बहन और दूती भी।

मुंदरी पान कुंवरि (पिता के घर रानीजी का यही नाम था) से सिर्फ दो साल उम्र में छोटी थी। मुंदरी की माँ पान कुंवरि के पिता के यहाँ लौंडी थी। वह बिहार के एक बहुत बड़े ताल्लुकेदार थे।

बचपन से ही पान कुंवरि और मुंदरी में एक तरह का सहलापा कायम हो गया था। पान कुंवरि को उसे अपने साथ रखना, उसके साथ खेलना-कूदना बहुत पसन्द था। उसके कोई दूसरी बहन न थी। उसके माता-पिता ने उसकी इस मर्जी मे कोई खलल न डाला। पान कुंवरि ने होश सँभाला, तो मुंदरी को वह इस तरह रखने लगी, उसे ऐसे कपड़े वगैरा पहनाने लगी, जो हमेशा उसके साथ रहने वाली के योग्य हो। वह जहाँ जाती, उसे साथ ले जाती। सबसे अधिक आश्चर्यजनक बात तो यह थी कि पान कुंवरि और मुंदरी के नाक-नक्शे कोई गौर से देखता, तो बहुत-सी रेखाएँ समान मिलती। हो सकता है कि पान कुंवरि के मुंदरी के साथ इस तरह हिलने-मिलने से न रोकने का एक बड़ा कारण यह भी हो।

कभी-कभी भावावेश में पान कुंवरि मुंदरी को बाहों में भरकर

कहती—तू मेरी छोटी बहन की तरह है। कभी-कभी तो जीजी कहा कर।

और कभी-कभी वह उसके हाथ अपने हाथों में लेकर स्नेह से कहती—तू मेरी सहेली है। तुझे मैं जिन्दगी-भर न भूलूँगी। तुझे हमेशा अपने साथ रखूँगी!

फिर भी कुँवरि कुँवरि थी और लौंडी लौंडी। इस बात का दोनों को पूरा-पूरा अहसास था। दोनों अपना-अपना स्थान जानती थीं। मुँदरी सदा पान कुँवरि की सेवा में तत्पर रहती। वह उसे नहलाती, कपड़े पहनाती, शृङ्गार करती, खिलाती, उसका पलंग ठीक करती, पाँव दबाती, पंखा झलती। वह हमेशा उसका मुँह जोहा करती। पान कुँवरि उसे हुक्म देती। वह बजा लाती। कभी कुछ इसके उल्टा न हुआ। फिर भी कुँवरि और लौंडी के बीच एक सूक्ष्म-स्नेह-सम्बन्ध तो था ही। मुँदरी इसे अपने मालकिन की कृपा समझती, कि उन्होंने उस लौंडी को मुँह-बोली बना लिया था। मालकिन उसे जो चाहे, बना सकती थीं, यह उनकी स्वेच्छा पर निर्भर था। लेकिन लौंडी तो ऐसा न कर सकती थी। वह तो मालकिन को बहन या सहेली न बना सकती थी। सो, वह मालकिन को हमेशा मालकिन ही समझती रही और अपने देखे वह हमेशा उनके हुक्म की बन्दी ही बनी रही। वह अपना भाग्य सराहती कि उसे इतनी अच्छी मालकिन मिलीं।

जब ये दोनों अपनी उम्र पर आयीं, तो ताल्लुकेदार और मुँदरी की माँ को एक साथ ही अपनी बेटियों की शादी की चिन्ता हुई। पान कुँवरि के लिए वर की खोज होने लगी।

मुँदरी की माँ ने ताल्लुकेदार साहब से एक दिन कहा—मुँदरी भी उम्र पर आयी, उसके लिए भी मेरे जीते जी कहीं ठौर-ठिकाने की सबील बैठ जाती, तो छुट्टी पाती।

ताल्लुकेदार कुछ देर तक सिर झुकाये सोचते रहे।

मुँदरी की माँ ही बोली—यह फरज भी सरकार का ही है। सरकार उसकी जिनगी किसी राह लगा दें। मैं लौंडी ठहरी, मुँदरी के लायक

वर पाना मेरे बस की बात नहीं। और सरकार यह कैसे पसन्द करेंगे कि मुँदरी किसी गढ़े में ढकेल दी जाय।

—वही तो सोच रहे हैं,—ताल्लुकेदार ने सिर उठाकर कहा—अपने हाथों हम मुँदरी को किसी ऐरे-गैरे के हाथों कैसे सौंप सकते हैं? देख-कर मक्खी नहीं निगली जाती।

—सरकार ठीक ही सोच रहे हैं। फिर मुँदरी ऐरे-गैरे के यहाँ खपेगी भी कैसे? आखिर उसके अन्दर खून किसका है! फिर पान कुँवरि के साथ जिस तरह आज तक उसकी जिनगी बीती है, उसका गुजर किसी वैसी जगह कैसे हो सकता है?—मुँदरी की माँ ने ऐसे अवसर पर बात जरा साफ-साफ कहना ही ठीक समझा।

—वही तो। लेकिन मुश्किल तो यह है कि मुँदरी के लिए कोई लायक वर मिलेगा कहाँ? मैं जानता था कि एक दिन यह धर्म-संकट मेरे सामने आयगा। और मैंने कुछ सोचा भी था, लेकिन अब वह मुम-किन नहीं लगता।—चिन्तित-से ताल्लुकेदार बोले।

—का सोचा था सरकार ने?—उत्सुक हो मुँदरी की माँ उनका मुँह निहारती हुई बोली।

—सोचा था कि जब यह दिन आयगा, मैं तुझे और मुँदरी को लेकर कहीं दूर किसी बड़े शहर में एक शानदार कोठी लेकर कुछ दिनों के लिए जा बसूँगा। वहाँ मुँदरी को अपनी बेटी बनाकर रखूँगा। उसका नाम बदल दूँगा। उसकी तालीम-तरबीयत के लिए कोई मास्टरनी रखूँगा। तुझे उसकी आया बताऊँगा। उसके कुछ सँवर-सुधर जाने के बाद उसे साथ लेकर वहाँ के क्लबों और रईसों के घर जाऊँगा, उसका परिचय ऊँचे घराने के युवकों से कराऊँगा, और एक दिन उन्हीं में से किसी के हाथों उसे सौंप दूँगा।

—बहुत अच्छा सोचा था सरकार ने!—खुश होकर मुँदरी की माँ बोल पड़ी।

—लेकिन आज यह मुमकिन नहीं दिखायी देता,—एक लम्बी साँस

र ताल्लुकेदार ने कहा—पान कुँवरि उसे एक मिनट के लिए भी
ना नहीं चाहती। पहले इसका ख्याल ही न हुआ। आखिर आज
बात बिगड़ गयी, तो ख्याल आ रहा है। समझ में नहीं आता कि
क्या किया जाय।—कहकर उन्होंने फिर सिर झुका लिया।

एक ठण्डी साँस लेकर मुंदरी की माँ ने कहा—सरकार ने पहले ही
यह बता दिया होता, तो आज यह नौबत न आती। मैं तो सोच
थी कि लौंडी पान कुँवरि के साथ रहकर कुछ सर-सलीका सीख
। मुझे इसका कहाँ पता था कि यही बात उसे ले डूबेगी!

—पहले ही यह बात तुझे कैसे बता देता? यह कोई मामूली राज
बात न थी। ख़ैर, जो हुआ, सो हुआ। भगवान एक राह बन्द
ता है, तो दूसरा खोल देता है। पान कुँवरि उसे इतना चाहती है,
अच्छा ही हुआ। उसकी जिद तो तुझे मालूम ही होगी। वह मुंदरी
अपने साथ अपनी ससुराल ले जाने के लिए कई बार मुझसे कह
ी है।

—तो इससे का होगा?—मुंदरी की माँ चिन्तित होकर बोली।

—वही जो हमेशा से होता आया है,—ज़रा हँसकर ताल्लुकेदार
ने—तू भी तो मेरी ताल्लुकेदारिन के साथ हो यहाँ आयी थी। एक
ा तेरी माँ ने भी अपने मालिक से तेरे बारे में यही बातें कही होंगी
र उन्होंने भी उसे शायद यही जवाब दिया होगा, जो आज मैं तुझे
रहा हूँ। तू तो खुद ही समझदार है। सब ठीक हो जायगा। चिन्ता
कोई बात नहीं है।—और वह उठकर चले गये।

मुंदरी की माँ कुछ और कहना चाहती थी। लेकिन वह कुछ न कह
ी। उसने कभी सोचा था कि उसके खानदान का लौंडीपन का सिल-
ला उससे ही खतम हो जायगा। वह अपनी बेटी की शादी कहीं कर
ी। उसे उम्मीद थी कि ताल्लुकेदार साहब भी यही चाहेंगे और हर
ह उसकी मदद करेंगे। लेकिन आज उसे मालूम हो गया कि शायद
सिलसिला कभी खतम न हो, यह चलता जायगा, चलता जायगा और

मुंदरी की माँ ने अपना माथा ठोंक लिया। आज हमेशा-हमेशा के लिए उसने समझ लिया कि वह लौंडी है, सिर्फ लौंडी और लौंडी की बेटी भी, चाहे वह किसी से भी पैदा क्यों न हुई हो, लौंडी ही है, सिर्फ लौंडी। और उसकी आँसू-भरी आँखों के सामने अपना पूरी जिन्दगी घूम गयी। और उसे लगा कि उसकी प्यारी बेटी भी उसी की जिन्दगी का पूरा चक्कर काटकर, उसी की स्थिति में उसकी बगल में आ बैठी है। उसने दोनों हाथ माथे से लगाकर भगवान से मिनती की कि हे भगवान, चाहे जो करना, लेकिन मुंदरी का बेटी की माँ न बनाना!

और उन्हीं दिनों एक नया गुल खिल गया, जिसके कारण मुंदरी की माँ की रही-सही आशा पर भी पानी फिर गया। वर्ना उसने सोचा था कि वह खुद कुछ ऐसा करेगी कि मुंदरी किसी घाट लग जाय।

पान कुँवरि की मौसेरी बहन की शादी पड़ी। माताजी के साथ पान कुँवरि, मुंदरी और मुंदरी की माँ भी वहाँ गयीं। वहीं शादी के हो-हल्ले में पान कुँवरि और रंजन की आँखें लड़ गयीं। रंजन पान कुँवरि के मौसेरे भाई राजेन्द्र का कालेज का पार्टनर और दोस्त था। उसी के विशेष आग्रह पर वह शादी में शामिल हुआ था।

पहली ही नजर के तीर से दोनों कुछ ऐसे घायल हुए कि बस मर मिटने को तैयार हो गये। इधर मुंदरी राजदार बनी, उधर मौसेरा भाई। कुछ सन्देश पहुँचाये गये। कुछ चिट्ठियाँ आयीं-गयीं। कुछ छुप-छुपकर मुलाकातें करायी गयीं और देखते-देखते ही उनकी पहली मुहब्बत बरसाती नदी की तरह उमड़ पड़ी।

*

—सच बता मुंदरी, तुझे पैंगा की बिल्कुल याद नहीं आती?—रानीजी ने मुंदरी का हाथ अपने हाथ में लेकर बडे आग्रह से पुछा।

मुंदरी के होंठों पर एक करुण मुस्कान उभर आयी। वह सिर झुकाकर बोली—कभी-कभी जरूर आती है। लेकिन आप की तरह किसी की याद लेकर मैं तिल-तिल मरने बैठ जाऊँ, तो मुझे कौन पुछे

—ऐसी बात नहीं है, मुंदरी। मुहब्बत-मुहब्बत में फ़र्क होता है।

—जी, रानीजी, आदमी-आदमी में भी फ़र्क होता है। आप रानी-जी हैं, मैं लौंडी हूं!

—लेकिन एक बात में हम दोनों एक हैं।

—कि आप भी औरत हैं और मैं भी!

—नहीं, यह नहीं। वह यह कि हम दोनों के गले एक ही ज़ालिम ने एक ही साथ दबोच दिये। हम दोनों की ज़िन्दगी बरबाद हो गयी।

—आपको इस हालत में देखकर मुझे बड़ा दरद लगता है, रानी-जी! रही मेरी, तो वह तो बरबाद होने के लिए थी ही, ऐसे होती, चाहे वैसे। लेकिन सच कहती हूं, रानीजी, आपकी यह सूखी देह देखकर मुझे ऐसा छोह लगता है कि का बताऊं!

—लेकिन तेरी देह देखकर तो मुझे अचरज लगता है। समझ मे नहीं आता कि तू कैसे सब-कुछ झेलकर भी जैसी-की-तैसी बनी रही! तेरा जी क्या कभी भी पुरानी बातों को याद करके नहीं कूल्हता, मुंदरी?

मुंदरी एक भेद-भरी हंसी-हंसकर बोली—कभी-कभी जरूर कूल्हता है, रानीजी। लेकिन आपकी तरह मैं अपने को अपने जी पर कैसे छोड़ सकती हूं? आप रानीजी हैं, आप जैसे चाहें रह सकती हैं, लेकिन मैं तो वैसा नहीं कर सकती। मैं जानती हूं, जब तक मेरी यह देह है, तभी तक पूछ है। जिस दिन यह देह बेकार हुई, मैं किसी कोने में सड़ने-गलने के लिए फेंक दी जाऊंगी। यही सोचकर मैंने अपनी देह से कभी कोई दुश्मनी न की। दिल टूट गया, लेकिन देह को टूटने से बचाये रही।

—दिल टूट जाने पर देह कैसे कायम रहेगी, पगली?—धीमी हंसी हंसकर रानीजी बोलीं।

—रहती है, रानीजी, रहती है। शुरू-शुरू में जरा कलक होती है,

फिर सब-कुछ आप ही ठीक हो जाता है। देह एक मसीन बन जाती है, उसे कोयले-तेल के अलावा और किसी चीज की जरूरत नहीं रह जाती। और जब सुनरी पेट में आयी, मेरी जिनगी ही बदल गयी। मैं अभी मरना नहीं चाहती, रानीजी।

—लेकिन मैं तो चाहकर भी न मर सकी। लेकिन अब, अब मैं जरूर मर जाऊँगी, मुँदरी। देखती है, लल्लन का पागलपन! वह फौज में जाने की सोच रहा है। मेरी जिन्दगी शायद उसे भी भारी लग रही है। बड़े सरकार तो जाने कब से मुझे मरी हुई समझ....

तभी बड़े सरकार पैताने पाँव हिलाकर बोले—बदमिया!

जाने कब पुरवा रुक गया था। रानीजी और मुँदरी को इसका ख्याल ही न रहा था।

मुँदरी झट उतरकर बड़े सरकार को पंखा झलने लगी। पसीने से थक-थक बड़े सरकार ने करवट बदली और पंखे की हवा को पहचानकर बोले—कौन?

—मैं मुँदरी, बड़े सरकार।

—बदमिया कहाँ गयी?—चिढ़कर बड़े सरकार बोले।

—रानीजी को फिर दौरा आ गया था, बड़े सरकार। मैं वहाँ गयी थी। वह नीचे चली गयी है।

—जा, उसे भेज दे!

—मुझसे सरकार को बहुत नफरत होने लगी है का?

—नफरत क्यों होने लगी?—धीमे से बड़े सरकार बोले।

—फिर का इसे डर समझूँ?

—क्या बकती है?....रानीजी सो गयी हैं?

—उनका सोना-जागना दोनों बराबर है, बड़े सरकार। आप आराम से सोइए, मैं पंखा झल रही हूँ।—आँखों में मुस्कराकर मुँदरी बोली।

—मुझे नींद नहीं आयगी। तू रानीजी के पास जा। बदमिया को

मेरे पास भेज !—कसमसाकर बड़े सरकार बोले ।

मुँदरी बन्द होंठों में मुस्करायी । ज़रा-सा होंठ चबाया । फिर ज़रा रोब से बोली—अब इतनी रात गये सबको परेसान न कीजिए । कहिए तो एक हाथ से पंखा झलती रहूँ और दूसरे से आप के पाँव भी दबा दूँ ।

—नहीं, नहीं ! तू दूर से ही पंखा झल !—घबराकर बड़े सरकार बोल पड़े ।

मुँदरी ज़रा खुलकर हँस पड़ी और ऐसा लगा, जैसे पूरी हवेली में हजारों घंटियों की टुनटुनाहट गूँज उठी हो ।

रानीजी ने दूसरी ओर करवट ले आँखें मूँद लीं ।

३

जेठ बन्दोबस्त का आखिरी महीना है। असाढ़ बरसते ही खेतों पर हल चढ़ जाते हैं। तब किसी भी किसान का खेत निकालना मुँह का कौर छिनने के बराबर है।

बैसाख के अखीर तक खेत कटकर खाली हो जाते हैं। तब खेतों पर ज़मींदारों का अधिकार होता है, अगले साल के लिए वे जैसा चाहें, बन्दोबस्त करें। फ़सल दाँ-मिस और बेंच-बुच लेने के बाद लगान के रुपये ले किसान ज़मींदारों के यहाँ जाते हैं। लगान चुकता कर अगले साल के लिए खेत माँगते हैं। लगान चुका देने के बाद किसान अपने खेत पर अपना नैतिक अधिकार समझते हैं। लेकिन जमींदार ऐसा नहीं समझते। उनके लिए मोल-तोल का यही वक्त होता है, लगान बढ़ाने का यही मौका होता है। वे कहते हैं—अभी क्या जल्दी है? असाढ़ तो लगने दो। देखा जायगा।

किसान गिड़गिड़ाता है, हाथ जोड़ता है, पाँव पकड़ता है, पेट और रोटी की दुहाई देता है। लेकिन ज़मींदार इस वक्त ज्यादा बोलने-सुनने की मनः-स्थिति में नहीं रहते। वे जानते हैं कि सौदा करने का यह वक्त नहीं। ज्यों-ज्यों असाढ़ नज़दीक आयगा, खेतों के दाम बढ़ेंगे, किसान बढ़ा-चढ़ी करेंगे। सिर पर असाढ़ आया देख किसान अन्धे हो जाते हैं, पागल हो जाते हैं। खेत न मिला, तो क्या होगा? सो, ज़मींदार उसी मौके के इन्तज़ार में बैठे मुस्कराते रहते हैं। बोलते नहीं।

जब कोई किसान बहुत पीछे पड़ जाता है, तो जमींदार कह देते हैं—अच्छी बात है, इसी लगान पर अगर खेत उठाना होगा, तो तुझे ही मिलेगा।

किसान समझ जाता है कि अब इसके आगे क्या बात होगी। लेकिन

अभी उसे भी कोई उतनी जल्दी नहीं होती। आगे की बात कौन जाने, बाज़ार-भाव के बारे में कोई क्या कह सकता है। बाज़ार खुलेगा, तो देखा जायगा। जो सब पर पड़ेगी, उसपर भी पड़ेगी। चलते-चलते वह कहता जाता है—किसी और के नाम बन्दोबस्त करने के पहले एक बार सरकार हमें मौक़ा देंगे।

—हां-हां,—ज़मींदार की बांछें खिल जाती हैं।

यह तो लगान चुका देनेवालों की बात हुई। आधा-पौना चुकानेवाले तो अपने खेतों का नैतिक अधिकार आप ही खो देते हैं। इस बात को ज़मींदार भी बड़ी खुशी से मानते हैं। ऐसे किसान संख्या में कम नहीं होते। रो-गिड़गिड़ाकर खेत मांगने का अधिकार भी उनसे छिन जाता है। उनसे खेत लेने-देने की बात नहीं होती, सिर्फ़ लगान चुकता करने की बात होती है। और यह बात बहुत आगे तक बढ़ती है। धर-पकड़ होती है, मार पड़ती है, गाय-बैल खोल लिये जाते हैं, घर का सर-सामान लूटा जाता है, कुछ न हुआ, तो गुलाम की तरह नौकरी ली जाती है, जो भी हो, जैसे भी हो, वसूल किया जाता है। इस वसूली की धाक पर ही ज़मींदारी चलती है।

यह कहानी सदियों से चली आ रही है। हर साल दुहरायी जाती है, नयी की जाती है। नयी होकर, नया खून पीकर, नये ज़ोर-ज़ुल्म की ताक़त पाकर यह कहानी एक साल खूब मजे से चलती है। हर जेठ में इसे नया जीवन मिलता है।

लेकिन यह जेठ पुराने जेठों की तरह साधारण न था। लड़ाई ने इसे असाधारण बना दिया था। इसलिए इस आसाधारण जेठ में वह पुरानी कहानी असाधारण ढंग से नयी की जाय, तो इसमें आश्चर्य या अस्वाभाविकता या अन्याय की क्या बात?

महंगी सुरसा की तरह बढ़ती जा रही थी। गल्लों के दाम दुगुने-तिगुने हो रहे थे। सब की नज़र इसी पर जाती कि खेतों की पैदावार क़ीमत दुगुनी-तिगुनी हो जायगी। साल-भर की तन-तोड़ मेहनत,

फाड मशक्कत और सूखे-सैलाब की कोई नहीं सोचता; पैदावार से आयी रकम से ज़रूरत की कितनी चीज़ें खरीदी जा सकेंगी, इसपर किसी का ध्यान नहीं जाता। जिसने अब तक खेतों का मुँह भी न देखा, आज इस तरह खेतों के पीछे बावला हो रहा था, जैसे उन्हीं में तोड़ा रखा हो। छोटे-मोटे बनिये भी, जो पुश्त-दर-पुश्त से छोटी-मोटी दुकानदारी करते आये थे, छोटे-मोटे व्यापार नष्ट हो जाने के कारण खेतों के पीछे पड़ गये थे। एक अनार, सौ बीमार का हाल था। खेत उतने ही, लेकिन अब जोतनेवाले सैकड़ों ज्यादा। खुद ज़मींदार भी अपनी खेती बढ़ाने की तैयारी करने लगे।

आधा जेठ बीत चुका था। बन्दोबस्त का बाज़ार गर्म था। ज़मींदारों की हर कौड़ी चित थी।

बड़े सरकार ने कारिन्दे को हुक्म दिया कि वह लगान तिगुनी कर दे और बीघे पीछे पचास रुपये सलामी लेकर ही बन्दोबस्त करे। यह दर और सलामी बहुत ऊँची थी। लेकिन पहला बोल ऊँचा ही रखना ठीक होता है। बाद में देखा जायगा। फिर इसके पीछे मसलहत भी थी कि छोटे-छोटे किसान बिल्कुल नाउम्मीद होकर फ़ौज में भर्ती हो जायँ।

पाँच दिनों से डुगडुगी पिट रही थी और फ़ौजी नौकरी का बखान चल रहा था। चौपालों मे बर-बन्दोबस्त की बतकही के साथ फ़ौजी नौकरी और लड़ाई की बातें भी चलने लगी थीं। जमाने की लहरों से किसान चिन्तित थे। डुगडुगी की डम-डम सुनकर माँओं और बीवियों के दिल धक-धक करने लगते।

शम्भू का मुनीम बही खोले बैठा था। उसके सामने किसानों और किसानिनों की भीड़ लगी थी। जिसके पास जो-कुछ था, रख रहा था, बेच-खुच रहा था। कोई अनाज तौला रहा था। कोई चाँदी के छोटे-मोटे गहनों का मोल-तोल कर रहा था। कोई सरखत पर अँगूठे के निशान लगा रहा था। कोई कुछ न होने पर कर्ज़ पाने के लिए गिड़-

गिड़ा रहा था और साल पर चुका देने की सौगन्धें खा रहा था। लेकिन वैसे लोगों की ओर मुनीम का अभी ध्यान न था।

किसानों के चेहरों पर बदहवासियाँ छा रही थीं। जैसे भी हो, सलामी की रक़म का इन्तज़ाम होना ही चाहिए। गड़ा-गुड़ा सब उखड़ रहा था। किसानिनों के अंग सूने हो रहे थे। काश्तकारी के छोटे-मोटे खेत सरखत पर चढ़ रहे थे। बचा-खुचा अनाज औने-पौने में जा रहा था।

मुनीम की क़लम तेज़ी से चल रही थी और कागज पर फन्दे-से बुनते जा रहे थे।

दीवानखाने के ओसारे में क़ालीन बिछे तख़त पर बड़े सरकार विराजमान थे। स्टूलों और बेंचों पर पटवारी, फ़ौज में भर्ती करानेवाला एजेण्ट, सौदागर पहलवान और दो कांसटेबिल बैठे थे। फ़र्श पर दो-चार ख़ास आसामी पचंगुरों पर बैठे थे। जंघई पंखा झल रहा था। बातें चल रही थीं। जाल बिछाया जा रहा था। सुनने मे आया था कि रात चतुरी ने किसानों को इकट्ठा किया था और खूब बरगलाया था।

एजेण्ट ने कहा—बड़े सरकार, एक काम बहुत ज़रूरी है। उधर हमारा ध्यान ही नहीं गया। महाजन के यहाँ लेन-देन ज़ोरों से चल रहा है। उसे अभी रोकवाया न गया, तो किसान रुपये का इन्तज़ाम करके चुपचाप बैठ जायेंगे। फिर तो हमारी सारी मेहनत अकारथ जायगी।

—अभी लो,—कहकर बड़े सरकार ने इधर-उधर देखा।

बेंगा हवेली से भोग का सामान लिये मन्दिर की ओर जा रहा था। बड़े सरकार ने जंघई से उसे पुकारने को कहा।

बेंगा सुबह से ही बड़े सरकार के सामने न पड़ा था। वह इस घड़ी को, जब तक मुमकिन था, बचा जाना चाहता था। अब अचानक पुकार सुनकर कांप उठा।

नाटे, बूढ़े बेंगा का दौड़कर चलना बड़ा अजीब लगता था। लोग अनायास ही हँस पड़ते थे। लेकिन आज किसी के मुँह पर हँसी न आयी। सब गम्भीर थे। वह ज़रा दूर सहन में आकर दोनों टाँगें फैलाकर खड़ा

हो गया। उसका इस तरह खड़ा होना भी बड़ा अजीब लगता था। बेंगा बहुत बार तो ऐसा जान-बूझकर करता था, ताकि बड़े सरकार हँस पड़े। उनका गुस्सा थोड़ा उतर जाय। लेकिन सरकार हँसे नहीं। एक मुस्कान मूँछों में उभरते-उभरते रह गयी। कड़ककर बोले—कहाँ जा रहा है ?

—मन्दिर भोग का समान पहुँचाने जा रहा था, बड़े सरकार,—बेंगा ने सिर झुकाये ही ज़बान लटपटाते हुए कहा। इस तरह बोलना उसका तीसरा हथियार था। वह भी आज बेकार गया।

—जा, जल्दी पहुँचाकर आ!—वैसे ही कड़ककर बड़े सरकार बोले—वहाँ से कारिन्दे को भेज देना।

बेंगा मुड़ा और वैसे ही फुदक-फुदककर दौड़ पड़ा। फिर भी कोई हँसा नहीं।

मन्दिर के बड़े आंगन में पीपल के बड़े छतनार पेड़ के नीचे चबूतरे पर दरी बिछे तख़्त पर कारिन्दा खाता खोले हुए बैठा था। उसकी बग़ल में बड़ा लट्ठ लिये चौकीदार बैठा था। सामने ज़मीन पर कुछ किसान बैठे थे और तख़्त पर इधर-उधर कुछ बनिये।

सड़ा हुआ तेली भी एक अधेली होता है। बनिये सलामी दे रहे थे और खेत बन्दोबस्त करा रहे थे। किसान उनकी ओर वैसे ही देख रहे थे, जैसे कोई अपने दुश्मन की ओर देखता है और मन-ही-मन गाली देते हुए सोच रहे थे कि देखेंगे, बेटा लोग कैसे हल की मुठिया पकड़ते हैं, हम तो उनके लिए कुछ करेंगे नहीं। वे अभी साँस लेने आये थे। अभी न उनके पास रुपये थे और न इस दर पर खेत लेने की हिम्मत।

बेंगा मन-ही-मन सहम गया था। मन्दिर से लड़खड़ाते कदमों से निकलकर आंगन में आया, तो उसे देखकर सब हँस पड़े। कारिन्दे ने चश्मा उठाकर हँसती हुई आँखों से देखकर कहा—क्या है, मेंढक के चाचा ?

एक बार फिर सब लोग हँस पड़े। बेंगा झेंपता नहीं, बुरा नहीं मानता, हँसने-हँसाने में ऐसों के बीच मजा ही लेता था। लेकिन आज वह ऐसा न कर सका। वह बोला—सरकार की बुलाहट है,—और तुरन्त लौट पड़ा।

कारिन्दा उठा, तो कई किसान बोल उठे—हम गरीबों पर भी नजर रखियेगा, कारिन्दा साहब !

कारिन्दे ने बत्तीसों दाँत चमकाकर कहा—नकद-नज़र का कुछ डौल करो, फिर हमारी नजर की करामात देखो !—और ही-ही कर बाहर हो गया।

एक किसान बोला—एक ही हरामी है साला !

फिर बनियों पर फबतियाँ कसी गयीं। एक बोला—का हो, लछिमी साहु, तराजू की डण्डी छोड़कर अब हल की मुठिया पकड़ी जायगी ? है इतनो समरथ ?

बनिये ने दाँत चियारकर कहा—का किया जाय, भाई। धंधा सब चौपट हो गया। सोचा....

—कि अब किसानन का भी धंधा काहे न चौपट कर दें !—एक तुनककर बोला—देखेंगे हम, कौन तुम लोगों के खेत में हल चलावा है !

—भाई, यह तो लेन-देन का मामला है, इसमें बिगड़ने की का बात है, कोई मुफ्त में थोड़े कुछ करेगा।

—लेकिन तुम लोग जो चलन बिगाड़ रहे हो, वह हमें उजाड़ने की बात है कि ना ?

—सब अपने-अपने भाग से उजड़ते-बसते हैं। जमाने में लहती ना लगी होती, तो तराजू-बटखरा छोड़कर का हम खेतों की ओर आते ? हमा-सुमा खेत का मरम का जानें। वह तो बटाई-दखरा पर तुम्हीं लोगों को देंगे। कुछ हमें भी मिल जायगा, कुछ तुम लोगों को भी। इसमें बुरा मानने की का बात है ?

—दर बढ़ा दी। इतनी-इतनी सलामी दे रहे हो। फिर कहते हो, बुरा मानने की का बात है! अरे, यही था, तो थोड़ा और इन्तिज़ार करते।

—अब तुम लोगों से बहस कौन करे।

*

बड़े सरकार ने नथुने फुलाकर कहा—तो तेरे क्या इरादे हैं?

—जी, बड़े सरकार?—आँखें मलकाता हुआ, रोएँ गिराकर बैंगा ऐसे बोला, जैसे कुछ समझ ही न रहा हो।

—चतुरिया को तू मना करेगा कि नहीं?—आँखें चढ़ाकर बड़े सरकार बोले—तेरा बेटा है, इसलिए तुझे अपना समझकर एक बार कह देना जरूरी समझा, वर्ना जानता है न तू मुझे। ये थाने से चतुरिया के लिए ही आये हैं। मैंने रोक रखा है, नहीं तो अब तक....

—का किया उसने, बड़े सरकार? राम कसम, मुझे कुछ भी नहीं मालूम, बड़े सरकार!—सिर हिला-हिलाकर, दाँत दिखा-दिखाकर बैंगा बोला। मोटी,नाटी देह पर छोटी-छोटी, कुचकुची आँखोंवाला घुटा हुआ छोटा सिर हिलाने का उसका अपना ही ढंग था। उसके तरकश का वह चौथा तीर था। वह भी आज खाली गया।

—क्या बकता है?—कड़ककर बड़े सरकार बोले।

—राम कसम, बड़े सरकार, तीन दिन से मुझे एक छन को भी फुरसत न मिली कि मैं घर की ओर जाऊँ। बड़े सरकार, जाने कितने पुश्तों से हम सरकार का नमक खा रहे हैं। मैं झूठ नहीं बोलता, बड़े सरकार! झूठ हो, तो मेरी देह की बोटी-बोटी काट दें, बड़े सरकार!—और वह जमीन पर कछुए की तरह हाथ-पाँव निकालकर पट पड़ गया और माथा ज़मीन पर पटकने लगा। यह उसका आखिरी सबसे ज़्यादा कारगर मंत्र था, जिसे वह बड़े ही संगीन मौकों पर काम में लाता था।

लेकिन यह कोई मामूली संगीन मामिला न था। बड़े सरकार पर इसका भी कोई असर न हुआ। वह डाँटकर बोले—जा, जल्दी चतुरिया

को पकड़कर ला, जहाँ कहीं भी मिले ! अकेले न लौटना !....और हाँ, उधर से शम्भू को भेजते जाना ।

बेंगा ने उठकर धूल झाड़ी और सिर लटकाये चल पड़ा ।

बेंगा के जीवन में पछतावों की गिनती नहीं थी । फिर भी तीन पछतावे ऐसे थे, जो हमेशा उसके दिल में कचोटते रहते थे । पहला यह कि एक बीघा ज़मीन के मोह में उसने पूरी ज़िन्दगी की गुलामी क्यों लिखा ली ? जाने किस ज़माने में बड़े सरकार के घराने से बेंगा के घरवालों को एक बीघा ज़मीन माफ़ी में मिली थी । तभी से बेंगा के घरवाले हमेशा के लिए बड़े सरकार के घराने के ज़र-ख़रीद गुलाम हो गये थे । बेंगा ने दादा को भी देखा था, बाप को भी और अब, जब से होश सँभाला, खुद भी भुगत रहा था । ऐसे भुगतनेवाले बेंगा के और भी दो दर्जन साथी थे । ये सब हमेशा बड़े सरकार की हर तरह की सेवा करने के लिए पचगुरों पर खड़े रहते थे । यों तो सभी आसामी बड़े सरकार का बेगार करते थे, लेकिन ये माफ़ी पानेवाले तो चौबीसों घंटे के गुलाम थे । बेंगा उनमें मुख्य था, क्योंकि उसे हमेशा बड़े सरकार की ज़ाती ख़िदमत में रहना पड़ता था । यह एक खास इज्ज़त की बात थी । शुरू में बेंगा को इसपर गर्व भी हुआ था ।

बेंगा के होश सँभालते ही उसके बाप मर गये थे और उत्तराधिकार में यह गुलामी दे गये थे, और कह गये थे कि बेंगा एक लायक बेटे की तरह बड़े सरकार के घराने की सेवा-टहल करेगा और ऐसा कुछ भी कभी न करेगा कि बाप-दादों के ज़माने से चली आयी माफ़ी की यह एक बीघा जमीन निकल जाय और वे बेखेत के हो जायँ । बेंगा ने सिर झुकाकर बाप की बातें गाँठ में बाँध ली थीं ।

बेंगा दो भाई थे । पेंगा उससे तीन साल ही छोटा था । लेकिन इस तीन साल के अन्तर ने ही बेंगा और पेंगा की ज़िन्दगी में एक बहुत बड़ा फ़र्क डाल दिया था । पाँच-छै साल की उम्र से ही बेंगा को बाप के कामों में हाथ बँटाना पड़ गया था । वह घर का बड़ा बे

घर की जिम्मेदारी उसी के कन्धे पर आनेवाली थी। शुरू से ही मन मारकर उसे वह जिम्मेदारी निभाने-लायक बनना था, बाप की बनायी लीक पर छोटे-छोटे पाँवों से ही चलना सीखना था। सो, वह बाप का ही बनकर रह गया। बाप उसे हमेशा अपने साथ रखता और हमेशा उसे अपनी ज़िन्दगी के गुर पिलाया करता।

पेंगा पर माँ का अधिकार था। शुरू से ही माँ की ख्वाहिश थी कि पेंगा बड़े सरकार की गुलामी में नहीं रहेगा। वह अपनी अलग ज़िन्दगी बनायगा। और जब बहुत सालों बाद भी उसे और कोई लड़का न हुआ, तो उसने उसे ही पेट-पोंछना समझकर उसी पर अपना सारा मोह-छोह केन्द्रित कर दिया। फिर तो बाप की सारी कोशिशें बेकार गयीं। माँ ने पेंगा को पुरानी लीक पर ले जाने से इनकार कर दिया।

पेंगा जब आठ साल का हुआ, तो एक दिन पड़ोस के बनिये सरूप की औरत ने पेंगा की माँ से कहा—जब यह कुछ करता-धरता नहीं, तो काहे नहीं इसे पाठशाला भेजती? वहाँ कुछ नहीं तो दो अच्छर सीख तो लेगा। आगे जिनगी में काम आयेगा। कमानेवाले तो दो हैं ही तेरे घर।

माँ को यह बात जँच गयी। उसने दूसरे ही दिन पेंगा को सिर से पैर तक तेल से चुपड़ा, आँखों में मोटा काजल लगाया, गले में काले तागे में बँधी तावीज़ डाली और कमर में अंगौछी लपेटकर उसे पाठ-शाला ले चली। बनिये की औरत ने मेहरबानी करके उसे अपने यहाँ पड़ी एक पुरानी पटरी दे दी थी। माँ ने राह में लाला की दुकान से एक धेले का भट्ठा भी खरीद लिया।

पाठशाला के ओसारे की सीढ़ी के पास पेंगा का एक हाथ पकड़े माँ खड़ी हो मास्टर का इन्तज़ार करने लगी। ओसारे में हर किस्म के नंगे-अधनंगे, मैले-कुचैले, बड़े-छोटे लड़के ज़मीन पर टेढ़ी-मेढ़ी कतार में बैठे शोर मचा रहे थे। मास्टर की कुर्सी खाली पड़ी थी। नये रंगरूट

को देखकर लड़कों में उत्सुकता हुई। कइयों ने घेरकर पूछा—यह पढ़ने आया है ?

मां ने खुश होकर हां कही और मास्टर के बारे में पूछा। एक लड़का अन्दर जाकर मास्टर को बुला लाया। मां ने मास्टर के पांव हाथों में आंचल लेकर छुआ। फिर बोली—इसे पाठसाला में बैठाने आयी हूं।

मास्टर ने ग़ौर कर लड़के की ओर देखकर कहा—यह ढढ्क का पाड़ा क्या पढ़ेगा ?

—भाग में होगा, तो कुछ सीख लेगा। आप इसे बैठाइए।—और वह आंचल के कोने की गांठ खोलने लगी।

मास्टर उसकी गांठ की तरफ़ देखता चुप खड़ा रहा। मां ने एक दुअन्नी उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—यह सुरूकराई है। कल-परसों तक सीधा भी भेजूंगी। गरीब मनई हूं। कुछ पढ़ जायगा, तो जिनगी भर आपका जस गाऊंगी।

मास्टर ने दुअन्नी लेकर पेंगा से कहा—आ, बे !

पेंगा अब छरिया गया। वह खुश-खुश और ही कुछ समझकर मां के साथ आ गया था। यहां मास्टर का चेहरा देखते ही भड़क गया। वह मां की फ़ुफ़ुती पकड़कर रोने लगा।

मास्टर अपनी कुर्सी पर जा बैठा। मां पेंगा को समझाने-बुझाने लगी। लेकिन वह क्यों मानने लगा।

मास्टर ने मां से कहा—तू लेकर इसे बैठ। शायद दो-चार दिन में मान जाय।

—हुमा-सुमा का बैठने से काम चलेगा ?—मां ने कहा। फिर भी उसे गोद में उठा वह ओसारे में आकर बैठ गयी।

पेंगा उससे सटा-सटा, उसका हाथ पकड़े बैठ गया। थोड़ी देर बाद वह चुप हो गया और वैसे ही बैठा-बैठा मुलुक-मुलुक लड़कों की ओर देखने लगा।

जब भी वह उठने को करती, वह भी उठ पड़ता। आख़िर थोड़ी देर बाद मास्टर बोला—यहाँ इसकी जान-पहचान का कोई लड़का नहीं है ? हो तो उसके पास बैठाकर देखो।

माँ ने इधर-उधर देखा। फिर परेशान-सी होकर उसने सिर हिला दिया। और आखिर किसी तरह पेंगा जब न माना, तो उसकी पीठ पर ज़ोर से दो घोल लगाकर उसे लिये-दिये चल पड़ी।

मास्टर ने कहा—दो-चार दिन आयगा, तो परच जायगा।

शाम को माँ ने बेंगा और उसके बाप से यह बात बतायी, तो बाप ने हँसकर कहा—कौआ चले हंस की चाल !

इस पर बेंगा ने चिढ़कर कहा—ऐसी बात काहे कहते हो, काका ? आदमी के लड़के ही तो पढ़ते-लिखते हैं !

—वो आदमी हम नहीं, वे। अभी तू इन बातों को क्या समझे ! —बाप ने टालते हुए कहा।

—नहीं, माई, नहीं ! काका की बात तू छोड़। पेंगा जरूर पढ़ेगा ! उसके बिना अभी कौन काम रुका पड़ा है। हम दो तो कमाते ही हैं। कुछ नहीं तो रमायन बाँचने लायक तो पढ़ जाय। —बेंगा ने ज़ोर देकर कहा।

—लेकिन यह तो पाठसाला में बैठता ही नहीं,—माँ ने कहा।

—बैठेगा काहे नहीं, कल मैं इसे लेकर जाऊँगा। दो-चार दिन में सब ठीक हो जायगा।

लेकिन सच तो यह है कि माँ ने शुरू से ही पेंगा की रहन बिगाड़ दी थी। फिर वह उसपर कोई सख्ती न खुद कर सकती थी और न बेंगा को करने देती थी। सो, बेंगा की साध मन में ही रह गयी। पेंगा एक हरफ़ भी न पढ सका।

अब बाप की बन आयी। वह बिगड़कर बेंगा की माँ से बोला—तू इसे खराब करके ही दम लेगी। मैं कहता हूँ, अब भी अपनी छोड़, नहीं तो बाद में रोने को आँख न मिलेगी।

—अभी तो बच्चा है...

बीच ही में उसकी बात काटकर बाप बोला—अभी से इसके हाथ-पांव सीधे नहीं हुए, देह न टूटी, तो बाद में पके बांस को तू नवा लेना ! अरे, तू इसे कुछ काम-धन्धा तो सीखने दे। फिर बड़े सरकार से पोत पर कुछ जमीन लेंगे। सब मिलकर करेंगे। तू बात काहे नहीं समझती ?

मां हार गयी। बड़े सरकार के यहां एक गुलाम की और बढ़ती हो गयी। बड़े सरकार के यहां हजारों काम थे। कोई तर-तनखाह तो देनी पड़ती न थी। बहुत हुआ, तो खाने को साग-सत्तू दे दिया गया। यों कुछ बेकार भी पड़े रहे, तो कोई बात नहीं। बड़े घर की बात ठहरी। यह-सब तो चलता ही रहता है।

बेंगा ने सोचा था कि बड़े होने पर दोनों भाई अपनी अलग किसानी करेंगे। बाप बड़े सरकार के यहां रहेगा।

लेकिन बेंगा की योजना पूरी न हुई। बाप ऐन मौके पर चल बसा। सब गोटी ही बिखर गयी। अब एक को तो बड़े सरकार की गुलामी में रहना ही पड़ता। पेंगा के लिए बड़े सरकार से उसने कहा, तो उन्होंने कहा—तेरी परवरिश तो मेरे यहां हो ही जायगी। माफ़ी की ज़मीन पेंगा के लिए काफ़ी होगी।

बाप से बेंगा ने सीखा था कि मालिक से बहुत बात नहीं करनी चाहिए। सो बेंगा चुप रह गया। गाड़ी पुरानी लीक पर ही चलने लगी। बेंगा में हिम्मत न थी, कि वह कोई दूसरी राह निकाले। एक बीघा माफी की जमीन हमेशा उसकी गर्दन पर तलवार की तरह लटकती रहती। उसे हमेशा यह डर बना रहता, कि कहीं बड़े सरकार खफा होकर उसे निकाल न दें।

बेंगा नाटा, मजबूत, चुस्त, हाज़िरबाश और काफ़ी समझदार था। बड़े सरकार ने उसे अपनी खास खिदमत में जगह दी। जंजीर दुहरी हो गयी। बेंगा हमेशा के लिए बँध गया।

४

*

दूसरी बड़ी पछतावे की बात पेंगा को लेकर थी। पेंगा को बेंगा से कहीं ज्यादा आज़ादी और सहूलियत मिली थी। उस पर तीन-तीन जान देनेवाले थे। उसकी देह जवानी का पानी पाकर ऐसी हरी हुई कि देख-कर आँखें निहाल हो जायँ। शुरू से ही साफ़ रहने की उसकी कुछ आदत पड़ गयी थी।

बेंगा के पास अपना हल-बैल न था। उसका बाप सरकार के हल-बैल से ही अपना खेत भी जोत लेता था। यह बात पेंगा को पसन्द न आयी। वह अपनी अलग गिरस्ती जमाना चाहता था। उसने बेंगा से एक हल-बैल कर देने को कहा। बेंगा के पास पैसा न था। उसने बड़े सरकार से यह बात कहकर कुछ रुपया माँगा, तो बड़े सरकार ने कहा—इसकी क्या ज़रूरत है? पेंगा से कह दो कि वह भी हमारे हलवाहों में शामिल हो जाय। हमारे ही हल-बैल से अपना खेत भी जोत-बो लिया करे। तुझे जाने मालूम है कि नहीं, तेरे बाप ने तेरी शादी में सौ रुपये मुझसे लिये थे। वह अभी तक तुम लोगों ने अदा न किया। जाने सूद मिलाकर अब तक कितना हो गया हो।

बड़े सरकार की निजी खेती भी दस हलों की होती थी। हलवाहे-चरवाहे मिलाकर क़रीब पचीस आदमी उनका यह काम करते थे। इनमें ज्यादातर माफ़ी ज़मीन पाने ही वाले थे। उनकी मजदूरी वह माफ़ी ज़मीन ही थी और बड़े सरकार की यह मेहरबानी थी कि वह अपने ही हल-बैल से उन्हें भी अपना खेत जोत-बो लेने देते थे।

पेंगा ने यह बात सुनी, तो उसका मन मुरझा गया। वह बोला—तब तुम्हीं यह करो। मैं कहीं बाहर जाकर कुछ कमाऊँगा।

सुनकर माँ रोने-धोने लगी। बेंगा ने भाई को समझाया-बुझाया कि साल-छै महीने जैसे भी हो गुजारा करे। फिर वह किसी तरह पैसों का बन्दोबस्त करेगा और उसके लिए एक हल-बैल कर देगा। माँ के मोह ने पेंगा को हरा दिया। क्या करता?

बेंगा ने सच्चे मन से ही यह बात कही थी। उसे अभी शायद यह पूरे तौर पर मालूम नहीं था कि यह वह जाल नहीं, जिसमें एक बार फँसकर आदमी अपनी जान छुड़ा ले।

मन्दिर के पीछे कलमी आम का बहुत बड़ा बाग था। बाग के बीच में शादी या किसी खास मौके पर शामियाना लगाने के लिए एक चौकोर बड़ा चबूतरा बना हुआ था। इसी बाग में एक ओर गोशाला थी, जिसमें एक क़तार में पचीस नाँदें जुड़ी हुई थीं। दस जोड़ी खूबसूरत बैल और तीन गायें यहाँ रहती थीं। दो नाँदें और जर-अरूरत के लिए पड़ी रहती थी। जमुनापारी भी जब आयी थी, तो तीन-चार दिन यहीं बाँधी गयी थी। लेकिन गैर जाति-वालों के साथ रहने की उसकी आदत न थी। तीन-चार दिनों के अन्दर ही उसने दस खूँटे तोड़ दिये, एक गाय को पटक दिया, एक बैल से भिड़ गयी और सबके ऊपर उसने मन्दिर के आँगन में घुसकर फूलों की क्यारियाँ तहस-नहस कर दीं। तब पुजारीजी के कहने से उसके लिए मन्दिर के बाहर इनारे से हटकर पच्छिम के हाथीखाने के सामने जगह बनायी गयी और गोपाल को चौबीसों घंटे उसकी सेवा के लिए रख छोड़ा गया।

गोशाला से लगकर भूसा रखने का एक बहुत बड़ा ऊँचा मिट्टी का कोठार था। उसी के एक कोने में कुट्टी काटने की जगह थी, जहाँ दिन-भर बैठा कोई-न-कोई चरवाहा कुट्टी किया करता। दूसरे कोने में छत तक भूसा भरा रहता, तीसरे में हल, जुआठ, कुदाल, हेगा वगैरा खेती के हरवे-हथियार और चौथे में खली, चुद्दी, भूसी रखी रहती। और बरसात में रात को यहीं जमीन पर चरवाहे सो भी रहते।

हलवाहे सुबह ही आकर हल काँधे पर रखते और अपनी-अपनी बैलों की जोड़ी के कन्धों पर जुआठ रखकर आगे-आगे उन्हें हाँकते खेतों की ओर चल देते। फिर दोपहर को, और कभी-कभी तीसरे पहर को भी, खेतों से वापस लौटते और अपना-अपना सत्तू लेकर घर लौट जाते। बाकी सभी काम चरवाहे करते। घास लाते, कुट्टी

भरते, बैलों को खिलाते, गोबर निकालते, खेतों में खाद पहुँचाते, पानी चलाते, गायों के दूध दुहते और कभी ऊपर का कोई काम आ पड़ता, तो उसे भी करते। एक तरह से ये चौबीसों घंटे के आदमी थे। ये हमेशा वहीं बने रहते। इनकी वजह से बाग में बड़ी रौनक़ रहती। कभी-कभी चाँदनी रात में वहाँ बिरहे की वह तान उठती कि पेड़ झूम उठते। बरसात के दिनों में, जब ज़रा फ़ुरसत मिलती, वहाँ 'आल्हा', विजय 'मल' और 'सोरठी' जमती और किसानों का बड़ा जमावड़ा होता। खैनी फटकी जाती, नारियल गुड़गुड़ाये जाते, ठहाके लगते और खूब आनन्द मनाया जाता।

यह जगह दीवानखाने और हवेली से काफ़ी दूर थी और चारों ओर ऊँची चहारदीवारी से घिरी हुई थी, जिसमें दो फाटक थे, एक मन्दिर के आँगन में खुलता था और दूसरा खेतों की ओर। यहाँ की आवाज़ दीवानखाने या हवेली तक नहीं पहुँच सकती थी। इसी कारण चरवाहे और हरवाहे यहाँ काफ़ी आज़ादी महसूस करते थे।

इन्हीं चरवाहों में पेंगा की भर्ती हुई। खेती में काम करने वाले नौजवानों की शिक्षा यहीं से शुरू होती थी। कुछ दिनों तक वह बहुत उदास रहा। फिर धीरे-धीरे मन मारकर काम में दिल लगाने लगा। और थोड़े ही दिनों में वह भी उन्हीं में से एक होकर रह गया।

उन्हीं दिनों चरवाहों और हलवाहों की दुनिया में एक नयी बहार आ गयी।

पिछली शाम को वे बड़े सरकार की बारात से लौटे थे। बारात में बड़े लोगों के साथ सैकड़ों नौकर-चाकर और अर-आसामी भी काम सँभालने, सेवा-टहल करने और साज-सामान, अल्लम-बल्लम उठाने के लिए गये थे। लौटानी पर भी खूब बड़ा और शानदार भोज हुआ। रात-भर पाँच-पाँच पतुरियाँ नाचती रहीं। बाग में ही चौंसठ खम्भों का तम्बू लगा था। रात-भर किसानों ने तम्बू के चारों ओर खड़े-खड़े

नाच देखा था। बहुत-से तो देखते-देखते वहीं जमीन पर लुढ़ककर सो गये थे।

सूरज निकले काफ़ी देर हो गयी थी। फिर भी चारों ओर एक सन्नाटा छाया था। बाग में, मन्दिर के आँगन में, इनारे पर कितने ही किसान-मजदूर सोये पड़े थे। सबके मुँह पर मक्खियां भिनभिना रही थीं। खाली नांद पर बैल और गायें खड़े-खड़े मुँह ताक रही थीं और रह-रहकर हुँकड़ और रँभा उठती थीं और खुरों से जमीन खोद रही थीं। आरती का वक्त कब का गुज़र चुका था। पुजारीजी भी होशो-हवास खो सोये पड़े थे। जैसे किसी को भी किसी बात का होश न हो, जैसे सबकी छुट्टी हो। दीवानखाने में, हवेली में, सब ओर यही आलम था

तभी हवेली से छम-छम करती, सन्नाटे में जीवन की रागिनी छि हरिन-सी चकित, चंचल आँखों से इधर-उधर देखती, एक सोलह को शोख़ लड़की निकली। चम-चम पायल की छम-छम ध्वनि में उ नन्हें-नन्हें नृत्य-से करते पाँव बता रहे थे, कि वह एक अजनबी में कदम रख रही है, हरिन-सी चंचल आँखों से बिजली की तरह रहकर चमक उठने वाली चितवनें कह रही थीं कि वह एक नये ज से गुजर रही है।

इनारे की जगत पर सोये पड़े एक किसान नौजवान के पास हो उसने दाँतों से अपना होंठ काटा और उसके कान के पास अ एक पाँव उठाकर पटक दिया। पायल ऐसे छनक उठी, जैसे कोई चाँदी का तश्त पक्के फ़र्श पर गिर पड़ा हो। चौंककर नौजवान ने खोलीं और ऐसे उठकर खड़ा हो पीछे को पाँव रखने लगा, जैसे परी उसके सामने अचानक प्रगट हो गयी हो।

लड़की ने एक शान से लम्बी-लम्बी पलकें उठाकर पूछा—मं किधर है?

गूँगे की तरह लड़की को घूरते, ओ-ओ करते नौजवान ने मं की ओर हाथ उठा दिया।

—सबको उठाकर भगाओ ! रानीजी पूजा करने आ रही हैं !—और लड़की वैसे ही छम-छम करती आगे बढ़ गयी।

मन्दिर का दरवाज़ा खुला पड़ा था। वह अन्दर जा मन्दिर की सीढ़ियों पर छम-छम करती चढ़ गयी। एक नज़र इधर-उधर देखा। फिर वह ओसारे में खड़ी महाबीर की बड़ी मूरत के चरणों के पास मृगछाला पर सोये युवक के पास गयी। उसे ध्यान से देखा। फिर झुककर ज़राज़ोर से बोली—आप ही पुजारी हैं ?

पुजारी की भी वही हालत हुई, जो नौजवान किसान की हुई थी। वह हकबकाये पीछे हटने लगे, तो वह मुस्कराकर बोली—आप ही पुजारी हैं ?

गूंगे की तरह आँखें फाड़कर देखते हुए पुजारी ने सिर हिला दिया।

—मैं मुंदरी हूँ। रानीजी के साथ आयी हूँ। आप अभी तक सो ही रहे हैं ?—उसकी बात में सवाल से ज्यादा रोब था। वह कहती गयी—जल्दी पूजा की तैयारी कीजिए। आज रानीजी पूजा करने आयेंगी। रानी माँ का हुक्म है। और मुझे फुलडलिया दे दीजिए। फूल लोढ़ लूँ।

पुजारी अब तक संभल गये थे। फिर भी उनके मुँह से लकार न निकल रही थी।

—इस तरह मुँह बाये काहे खड़े हैं ? आप-जैसे लड़के को पुजारी किसने बना दिया ? जल्दी फुलडलिया दीजिए !

पुजारी ने चुपचाप फुलडलिया लाकर उसके सामने रख दी।

फुलडलिया उठाकर मुंदरी बोली—यह तो बिल्कुल छोटा मन्दिर है। हमारे यहाँ का मन्दिर आपने देखा होता !

—आ...आ....—हकलाकर पुजारी बोले—तुम्हारा राजघराना ठहरा, हमारा तो....

लेकिन मुंदरी उनकी पूरी बात सुनने को वहाँ रुकी नहीं। वह छम-छम करती हुई सीढ़ियाँ उतर गयी।

आँगन में सोये पड़े किसानों-मजदूरों को पुजारी ने जगाया। वे-सब मुँदरी को घूरते भाग गये।

मुँदरी फूल तोड़ने लगी।

पुजारी ने बाग़ के दरवाजे पर जाकर पेंगा को पुकारा। पेंगा जब से वहाँ आया था, वही मन्दिर में झाड़ू लगाता था। पुजारी डोल और साफ़ी हाथों में लटकाये बाहर निकल गये।

पेंगा जम्हाई लेता हुआ दरवाजे से अन्दर आया, तो उसकी ओर देखकर मुँदरी बोली—ए-ए!

पेंगा ने उधर आँखें घुमायीं, तो उसकी आँखें झपक गयीं। उसके कदम पीछे हटने ही वाले थे कि मुँदरी बोली—उधर कहाँ से आ रहा है?

—बा-बा-बा....—पेंगा बोल न सका।

फिर तो मुँदरी ने वह ठहाका लगाया कि बाग़ के पेड़ों से चौककर झुण्ड-की-झुण्ड चिड़ियाँ चीख उठीं। वह बोली—गूँगा है का?

पेंगा भागकर बाग मे घुस गया। वहाँ सोये पड़े सब लोग ठहाके की आवाज़ से उठ पड़े थे। पेंगा को भागते हुए देखकर कबलू ने कहा-कहाँ से भागा आ रहा है? यह कौन हँसा था, मालूम हुआ कि जोरों मन्दिर का घड़ियाल बज उठा हो!

—जाने कौन है,—हाँफता हुआ पेंगा बोला—बिल्लकुल बिज मालूम पड़ती है!

—तो वह कोई लड़की है!—कई साथ ही बोल पड़े—चलो, देखें, ऐसी हँसी तो कोई पट्ठा भी नहीं हँस सकता!

और कितनी ही झपकती आँखें दरवाजे से झांककर मुँदरी देखने लगीं।

*

कुछ ही दिन बीतते-बीतते मुँदरी चरवाहों और हलवाहों की दि जानी बन गयी। वह मन्दिर में जब भी आती, बाग़ के दरवाजे

खड़ी होकर उन्हें कुछ मीठी मुस्कानें दे जाती, कुछ जोरदार ठहा
लगा जाती, कुछ मज़ाक कर जाती। उन्हें जैसे एक ज़िन्दगी मिल जाती
वे उसके आने का इन्तज़ार करते। उन्हें उसके आने का हर वर
मालूम हो गया था।

एक दिन कवलू ने ज़रा आगे बढ़कर कहा—तुम्हारे यहाँ क
सब जवान लड़कियाँ हमारे यहाँ के सब जवान लड़कों की साले
होती हैं!

—ज़रा गढे के पानी से मुंह तो धो आओ!—मुंदरी ने हाथ मट
काकर कहा—यही होती हैं जवानों की सूरतें! कोई मक्खी लात मा
दे, तो तीन ढिमलिया खा जाव!

—वाह!—गर्व से सीना तानकर हरी बोला—ज़रा देख तो इ
पैंगा की ओर, किस गबरू से यह कम है?

हँसकर मुंदरी बोली—वह तो गूंगा है। मुझे देखते ही बा-बा करने
लगता है।

—तो तू इसे बोलना सिखा दे!—गनेस ने चट कहा।

—ज़रा देखो, अपने गबरू का मुंह! व्यंग से मुंदरी ने कहा
सिर झुकाये खड़े पैंगा को कवलू ने कुहनी से धक्का देकर कहा—
दुत पानीमार!

और सब हँस पड़े।

सच ही सोलह साल की मुंदरी ने वह हाथ-पैर निकाले थे कि लोग
तमाशा देखते। और उसकी हँसी और ठहाके तो दूर-दूर तक मशहू
हो गये थे। जाने उसके गले में कितने पर्दे थे, और जाने वह उन पर्दे
को किन-किन स्वरों में बजाना जानती थी। पायल के नन्हें-नन्हें घुंघु
रुओं की रुन-झुन से लेकर घड़ियालों की टनटनाहट तक उसकी हँसी
और ठहाकों के स्वर पहुँचते। कानों में वे मधु और मिसरी भी घोलते
और कानों के पर्दों को फाड़ भी सकते थे। वह मुस्कराती, तो कलिय
चिटखने लगतीं; वह हँसती, तो फूल झरने लगते, लेकिन जब व

ठहाके लगाती, तो फूलों की पँखुरियाँ मर्राकर सूख जातीं। उसे कोई छेड़े बिना भी न रह सकता था और उसे छेड़ते हुए किसी का ऐसा कलेजा न था, जो काँप न उठे वह अपनी मुस्कान की ही तरह कोमल भी थी और मधुर भी और अपने ठहाके की ही तरह कठोर भी और कँपा देनेवाली भी। वह साधारण भी थी और असाधारण भी। उसे समझना मुश्किल था।

रानीजी पर सिर्फ बड़े सरकार का हक था। लेकिन मुँदरी पर सब अपना हक जताते, जैसे ससुराल से आये हुए पाहुरों में एक वह भी हो। शुरू-शुरू में कितनों ने ही उसकी ओर हाथ लपकाये, लेकिन जब कइयों के हाथ जल गये, तो सहमकर सब ऐसे पीछे हट गये, जैसे वह आग की पुतली हो।

मुँदरी रोज सुबह रानीजी की पूजा के लिए मन्दिर की फुलवारी से फूल लोढ़ने आती। पुजारी और बाग में सोनेवालों की नींद जैसे उसकी पायलों की छम-छम का ही इन्तजार करती रहती। पुजारी उठकर, डोल-साफ़ी उठा, पेंगा को आवाज़ दे बाहर निकाल जाते। पेंगा झाड़ू-बुहारी लगाता। हलवाहे और चरवाहे दरवाजे पर खड़े हो, मुँदरी की ओर देखने लगते। मुँदरी फूल लोढ़कर दरवाजे के पास आती और चन्द मिनट हँस-बोलकर छम-छम करती चली जाती।

एक दिन जाने पुजारी को क्या हुआ कि उन्होंने पेंगा को पुकारने के पहले ही मुँदरी के पास आकर मूखते गले से कहा—मुँदरी!

मुँदरी ने ऐसे मुँह घुमाया कि उसकी नागिन-सी लम्बी चोटी पीठ पर से उछलकर छाती पर आ गयी। उसने एक छन पुजारी की ओर देखकर कहा—मुझसे कुछ कह रहे थे?

पुजारी का सारा शरीर काँप उठा। उन्होंने सिर हिलाया।

—का कहना चाहते थे?—पलकें उठाकर मुँदरी बोली।

लटपटाते स्वर में पुजारी बोले—बिना कहे का तू नहीं समझ सकती?

—ओह !—मटककर मुंदरी बोली—बियाह करके घर काहे नाहीं बसा लेते, पुजारीजी ?

—तुम्हारी ही तरह मैं भी गुलाम हूँ,—पुजारी की अब मटक खुली—हमारे घर के सबसे बड़े लड़के को इस मन्दिर का पुजारी बनना पड़ता है। जाने कब से यह बात चली आ रही है। लेकिन जब से तुम्हें देखा है, मेरी आत्मा मुक्त होने के लिए छटपटा रही है।

—वह कैसे ?—आँखें झपकाकर मुंदरी ने पूछा।

—तू चाहे, तो हम दोनों मुक्त हो सकते हैं। मैं तुम्हारे साथ कहीं भी भाग चलने को तैयार हूँ।—कहकर पुजारी ने अपना हाथ बढ़ाया।

—रुको, काम का हाथ न लगाओ !....मैंने अपना आदमी चुन लिया है। तुम किसी दूसरे की तलाश करो !—कहकर उसने कांटा बचाकर एक गुलाब की ओर हाथ बढ़ा दिया।

—कौन है वह ?

—कोई भी हो, वह मुझसे भागने को न कहेगा।

—तो चाहो, तो मैं भी भागने को न कहूँ।

—फिर ?—फूलों की ओर मुंह किये ही मुंदरी मुस्करायी।

—फिर तुम जो कहो।

—वह मुझसे बियाह करेगा, यहीं सबके सामने। और यहीं हम साथ-साथ रहेंगे।

—बियाह तो मैं भी करने को तैयार हूँ, लेकिन यहाँ नहीं, कहीं दूर चलकर।

—यहाँ काहे नहीं ?—मन्द हँसी के घुंघरू बज उठे।

—मैं पुजारी हूँ। ब्राह्मण हूँ। लोग....

—अच्छा आप बाम्हन हैं !—मुंदरी ने ऐसे मुंह घुमाया कि उसकी काली नागिन-सी लम्बी चोटी लहराकर पीठ पर जा बैठी, और फिर ठहाके के घड़ियाल टनटना उठे !

पुजारी के पाँव उखड़ गये। वह बाहर की ओर ऐसे भागे, जैसे उस ठहाके ने उनके सारे कपड़े उतार दिये हों।

तभी बाग के दरवाजे से चिड़ियों की चीखों के साथ कई ठहाकों की आवाजें आयीं। छम-छम करती हुई मुंदरी दरवाजे पर पहुँची, तो कल्लू बोला—साला भगत बना फिरता है! थू:!

—ऐसे कितने ही भगतों को मैं नंगा कर चुकी!

—डर है कि साला बड़े सरकार से कहीं लाई न लगाये,—हरी ने कहा।

—उँह, तुम-सब इसकी चिन्ता न करो। मुंदरी किसी से डरती नहीं। बड़े सरकार का खा जायेंगे?

सब उसकी ओर अवाक् देखने लगे। कैसी परकाला है यह लड़की!

—अच्छा, अब मैं चली,—कहकर मुंदरी मुड़ी।

—सुनो!—गनेस ने कहा—एक बात तो बताती जाव।

पेंगा उसकी बगल से निकलकर मन्दिर की ओर जाने लगा। मुंदरी उसकी ओर देखकर मुस्करायी, फिर बोली—इस गूँगे की लकार सुनी?

सब हँस पड़े। फलांग लगाता पेंगा भाग गया।

—हाँ, का पूछ रहा था तू? – मुंदरी बोली।

—यही कि सचमुच में तूने अपना आदमी चुन लिया है?

—और नहीं तो का मैं झूठ बोलती हूँ?—मुस्कराकर मुंदरी बोली।

—कौन है वह?

—पुजारी!—हँसकर मुंदरी बोली।

—दुत!—सब हँस पड़े।

—सच बता! मेरा मन धुकुर-पुकुर कर रहा है!

—काहे?

—मेरा भी बियाह अभी नहीं हुआ है।

सब हँस पड़े।

—इतने सारे हैं, किसी की बहन से कर ले !

—उन-सबों को तो तेरे ननदोई ले गये !

—कह तो एक को दिला दूँ ?

—तेरे यहाँ की लड़कियाँ यही करती हैं का ?

—मेरे यहाँ की लड़कियाँ जो करती हैं, उसे अभी तूने नहीं देखा का ?—कहकर मुंदरी हँस पड़ी और छम-छम कर भाग खड़ी हुई।

पुजारी अब मुंदरी के आने के पहले ही पेंगा को आवाज़ दे, बाहर चले जाते।

एक दिन पंजे उठाकर भी मुंदरी कठबेइल की ऊपर की टहनी के फूल लोढने में असफल हो रही थी। नीचे की टहनियों में फूल बिलकुल न थे। कई बार कोशिश करके हार गयी, तो छम से पाँव बजाकर, बुहारी करते पेंगा को देखकर उसने होंठ दाँतों से दबाया, फिर बोली —ए गूँगे !

पेंगा का कलेजा धक-धक कर उठा। उसने खड़े होकर उसकी ओर देखा।

—ज़रा ये फूल तो लोढ़ दे,—मुंदरी ने ऊपर की टहनी की ओर हाथ उठाकर कहा।

काँपते स्वर में पेंगा ने कहा—मेरे हाथ साफ नहीं हैं।

—तो ज़रा टहनी झुका ही दे। चल, जल्दी कर !—आँखों से मुस्कराकर मुंदरी बोली।

झाड़ू रखकर, धोती में हाथ पोंछता हुआ, सिर झुकाये और धक-धक करता कलेजा लिये पेंगा उधर बढ़ गया।

कनखियों से देखती मुंदरी ज़रा हट गयी। पेंगा ने उचककर टहनी पकड़ी और अभी झुका ही रहा था कि मुंदरी दोनों होंठ अन्दर से मोड़े हुए बिल्ली की तरह पेंगा [illegible] और हाथ उ[illegible]

कर उसका कान जोर से मरोड़कर छमछमाहट की एक जंजीर-सी खींचती हुई भाग खड़ी हुई।

पैंगा ने उधर नज़र घुमायी कि बाग़ के दरवाजे से ठहाकों की आवाजें सुनायी पड़ीं। शरम से सिर गाड़े हुए वह मन्दिर की ओर चल दिया।

उस दिन उसके साथियों ने उसे बहुत परेशान किया। पैंगा कभी मन-ही-मन मुस्कराया, कभी हँसा और कभी काँप उठा।

अब वे मुँदरी के इन्तज़ार में न रहते। अब वे दरवाजे पर न जाते। अब मुँदरी सबकी न रहकर एक की हो गयी थी। अब जैसे उसके साथ मज़ाक का सारा रिश्ता ही खतम हो गया हो, जैसे अब यह दिल्लगी की बात न रहकर गम्भीर बात हो गयी हो। वे चाहते थे कि उन दोनों के बीच उनकी आँखें रुकावट न बनें। वे मन-ही-मन भगवान से मिनती करते कि जैसे भी हो, वे पार लग जायँ।

*

बेंगा का ब्याह बाप कर गया था। सकी औरत की गोद उमें पाँच साल का चतुरी था। अब पैंगा के ब्याह की बात चली, तो एक दिन बेंगा को अबगे में ले जाकर पैंगा ने कहा—मुँदरी ने मुझसे बचन ले लिया है। मैं उसी से बियाह करूँगा।

बेंगा अवाक् हो उसका मुँह देखने लगा।

पैंगा ने ही कहा—मुँदरी ने कहा है कि वह रानीजी से कहकर सब ठीक करा लेगी। हमें कोई चिन्ता करने की जरूरत नहीं।

उसी तरह अवाक् बेंगा देखता रहा।

पैंगा कहता गया—बात यह है, भैया, कि हमें मोहब्बत हो गयी है। अब हम एक-दूसरे के बिना जिन्दा नहीं रह सकते। एक ही साथ जियेंगे और एक ही साथ मरेंगे। उसका भी यही कौल है और मेरा भी।

बेंगा की देह काँपी। उसकी आँखों से लुत्तियाँ छिटकीं। मुट्ठियाँ बँधी और उठीं।

पेंगा ने सिर झुका दिया।

बेंगा की मुट्ठियाँ झुक गयीं। न वह उसे मार सका, न कुछ कह सका। वह उसे बहुत मारना चाहता था, वह बहुत-कुछ कहना चाहता था। बड़े सरकार की ज़ाती ख़िदमत में रहकर उसने बहुत-कुछ देखा और बहुत-कुछ समझा था। वह सब-कुछ उसे बताना चाहता था। वह बताना चाहता था कि यह शेर की माँद में गीदड़ का घुसकर उसके शिकार पर मुँह मारना है, कि यह कभी हो ही नहीं सकता, कि बड़े सरकार ने यह सुन लिया, तो उसे कच्चे चबा जायेंगे। और भी बहुत-कुछ बिरादरी की बात, लौंडी की बात, वग़ैरा-वग़ैरा...लेकिन उससे कुछ कहा न गया। निरीह पेंगा का झुका हुआ मुँह देखकर यह-सब कहना आसान न था। वह उठकर चला गया।

और नतीजा उसके सामने आया। बेंगा को ज़िन्दगी-भर इसका पछतावा रहेगा कि क्यों नहीं उसने उसी दिन...

*

तीसरी पछतावे की बात ख़ुद बेंगा की अपनी करनी से सम्बन्ध रखती थी। पहली दो बातें बेंगा की बेबसी या संयोग से हुई थीं। उन पर उसका कोई बस न था। लेकिन यह तीसरी बात तो कुछ वैसी ही थी, जैसे कोई अपने पाँवों में ख़ुद ही कुल्हाड़ी मार ले।

बहुत चाहने पर भी वह पेंगा को पढ़ा न सका था। अपने घर किसी को थोड़ा-बहुत पढ़ाने की साध उसके मन में ही रह गयी थी। अब चतुरी जब स्कूल जाने की उम्र का हुआ, तो बेंगा की उस साध ने फिर ज़ोर मारा। चतुरी की दादी, माँ, चाचा, सबने इस बात में बेंगा का साथ दिया और मज़ाक़-मज़ाक़ में ही चतुरी दर्जा चार पास कर गया।

चतुरी को पढ़ने में दिलचस्पी हो गयी थी। पढ़ने में वह तेज़ था

इम्तिहानों में वह अपने स्कूल के सभी लड़कों को पछाड़ देता था। दर्जा चार पास करने के बाद वह अड़ गया कि उसे और आगे पढ़ाया जाय। मगर बेंगा के बस की यह बात न थी। कस्बे के मिडिल स्कूल का खर्चा वह न चला सकता था। फिर उसकी साध भी पूरी हो चुकी थी। वह तो यही चाहता था कि चतुरी चिट्ठी-पत्री पढ़ने-लायक, रमायन बाँचने-लायक पढ़ जाय। चतुरी किसी की भी चिट्ठी फरफर पढ़ देता था। उसकी लिखी चिट्ठी कलकत्ते तक पहुँच जाती थी। शाम को चौपाल में *रमायन भी गाकर सुना देता था। बेंगा निहाल हो गया था। अब इससे* ज्यादा उसे कुछ नहीं चाहिए था।

चतुरी आगे पढ़ने न जा सका। लेकिन वह थोड़ी पढ़ाई ही उसकी जिन्दगी में विष बो गयी थी। उसका मन घर के काम-धन्धे मे न लगता था। वह रेह, राख या सोडे से रोज़ अपने कपड़े साफ़ करता था। वह महाजनों के हम-उम्र लड़को के साथ रहना, खेलना-कूदना ज़्यादा पसन्द करता था। किसानों और मज़दूरों के गन्दे लड़कों के साथ वह अपना मेल न बैठा पाता था। वह अपने को उनसे कहीं ऊँचा समझने लगा था। वह महाभारत, हरिश्चन्द्र, नल-दमयन्ती, प्रह्लाद, ध्रुव, सिंहसान बत्तीसी, तोता-मैना, सोरठी, विजयमल, भारत-भारती आदि किताबें इधर-उधर से माँगकर पढ़ा करता। फिर स्कूल के मास्टर की राय से वह घर बैठे-बैठे ही मिडिल के इम्तिहान की तैयारी करने लगा।

बेंगा उसे बहुत समझाता कि ऐसा करने से हमा-सुमा का गुजरा नहीं हो सकता। उसे कुछ करना-धरना चाहिए। चाहे तो बड़े सरकार के यहाँ काम करे, या कुछ अलग से खेती करे, या कहीं कुछ मेहनत-मजूरी करे। लेकिन चतुरी की समझ में कुछ न आता। उसका मन कुछ काम करने को होता ही नहीं था। वह सबकी बात अनसुनी कर जाता।

अब वह गाली भी सुनता, मार भी खाता। फिर भी अपनी रहन न छोड़ता। बाप के लेखे वह बेहया हो गया था। अब सब उससे हाथ धो चुके थे।

और एक दिन उस पर शम्भू के चाचा शिवप्रसाद की निगाह हो गयी। शिवप्रसाद जवार के मशहूर कांग्रेसिया थे। उन्होंने जाने चतुरी पर कौन-सा मन्त्र फूंक दिया कि वह उनका चेला हो गया, उनके पीछे-पीछे झण्डा लेकर घूमने लगा। और एक बार तो उनके साथ जेल भी हो आया। जेल में वह उनके लिए खाना बनाता, उनके कपड़े साफ करता, उनका बिस्तर लगाता और पांव दबाता। शिवप्रसाद कभी-कभी रंग में आते, तो कहते कि एक दिन वह उनके साथ रहते-रहते बड़ा आदमी हो जायगा। जब कांग्रेस का राज आयेगा, तो उसे भी इन कुरबानियों का फल मिलेगा। चाहे वह जिस बड़े पद पर पहुँच जायें, वह उसे कभी भी छोड़ेंगे नहीं, हमेशा उसे साथ रखेंगे।

यह साथ बहुत दिनों तक रहा। शिवप्रसाद डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मेम्बर हुए, जिला कांग्रेस के मेम्बर हुए, फिर प्रान्तीय कांग्रेस में पहुँचे और फिर एम० एल० ए० हो गये। लेकिन चतुरी जहाँ था, वहीं रह गया। उस बेचारे की समझ में ही न आता था कि ऐसा क्यों हो रहा है। शिवप्रसाद भी कोई बहुत पढ़े-लिखे न थे। हाँ, लेक्चर वे अच्छा दे लेते थे। लेकिन चतुरी भी तो मौके-महल पर कोई खराब न बोलता था। यह दूसरी बात है कि शिवप्रसाद उसे ज्यादा बोलने का मौक़ा न देते थे। लेकिन यह बात ठीक है कि शिवप्रसाद अपने वचन से न फिरे। उन्होंने चतुरी को हमेशा अपनी सेवा में रखा।

अब चतुरी उदास रहने लगा। सालों से वह शिवप्रसाद का झोला ढोता, सेवा करता आ रहा था। वह उनसे कोई तनख्वाह न लेता था। बेदाम का गुलाम था। बहुत खुश होते, तो शिवप्रसाद साल में उसके लिए दो गाढ़े के कुरते और पाजामे बनवा देते। और कुछ नहीं। पहले शिवप्रसाद सिर्फ़ नेतागीरी करते थे, लेकिन अब वह अफ़सर भी हो गये, पैसे भी कमाने लगे। लेकिन चतुरी ख़िदमतगार-का-ख़िदमतगार ही रह गया। उसकी हालत में कोई तब्दीली न हुई। यह बात अब उसे खलने लगी।

एक दिन उसने कहा—शिव बाबू, आप तो कहते थे कि आपके साथ रहते-रहते एक दिन मैं भी कुछ हो जाऊँगा। लेकिन....

शिवप्रसाद हो-हो कर जोर से हँस पड़े। बोले—मैं अब भी देश की सेवा ही कर रहा हूँ। जनता ने अपनी सेवा के लिए मुझे यह जिम्मेदारी का पद दिया है। मैं जनता की सेवा कर रहा हूँ। तुम मेरी सेवा कर रहे हो। देश और जनता के सेवक की सेवा करना भी कम सौभाग्य की बात नहीं। तुम्हें तो खुश होना चाहिए कि....

—लेकिन, शिव बाबू, देश और जनता की सेवा तो मैंने भी कुछ-कुछ की है। आखिर मुझे....

शिवप्रसाद फिर हँस पड़े। बोले—यह तो देश और जनता से पूछने की बात है। लेकिन तुम्हें इतना तो समझना चाहिए कि मुझे कभी कोई कमी न थी, मैं चाहता, तो अपने घर के दूसरे लोगों की ही तरह आराम से जीवन बिताता। लेकिन नहीं, मैंने देश-सेवा में सब-कुछ कुरबान कर दिया। जेल की हवा खायी। कितनी ही तकलीफें झेलीं। यह बात तुम्हारे बारे में तो नहीं कही जा सकती। जनता सब देखती है।

इसका जवाब भी चतुरी के पास था। उससे कुछ छुपा न था। जब शिवप्रसाद डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मेम्बर हुए थे, तो हज़ारों के ठेके उनके घरवालों को आप ही नहीं मिल गये थे। अब जब से वह एम० एल० ए० हुए थे, उनके घर का व्यापार दिन-दूना-रात-चौगुना यों ही नहीं बढ़ता जा रहा था। कस्बे में जो नयी कोठी अभी हाल ही में उन्होंने खास अपने लिए बनवायी थी, उसका भी इतिहास उसे मालूम था। उसे और भी कितनी ही बातों की जानकारी थी। लेकिन यह-सब कहकर वह बहस न कर सकता था। शिवप्रसाद और चतुरी के बीच बहस हो ही नहीं सकती थी। शिवप्रसाद का पलड़ा इतना भारी था कि चतुरी का पलड़ा हमेशा ऊपर-ही-ऊपर टंगा रहता था। वह बेचारा क्या खाकर बहस करता? वह चुप हो गया।

लेकिन बात उसके मन को कुरेदती रही। और एक साल बीतते

बीतते जाने क्या बात उसके मन में आयी कि उसने शिवप्रसाद का साथ छोड़ दिया। अब वह कस्बे के लाल झण्डे वाले महावीर चमार के साथ रहने लगा। वह कस्बे के बाज़ार में अखबार बेचने लगा और किसानों में काम करने लगा।

बेंगा ने जब यह सुना, तो उसके कान खड़े हो गये। अब तक कुछ नहीं, तो इतना तो था ही कि चतुरी एक बड़े आदमी के साथ रहता था। बड़े आदमियों के जूठन से भी कितनों का गुजर-बसर हो जाता है। यह भर-चमार का साथ क्या ? और वह भी महाजनों और जमींदारों के खिलाफ ? नदी में रहकर मगर से बैर !

और एक दिन बड़े सरकार ने उसे बुलाकर जब डाँटा और कहा कि चतुरी को वह बरजे, वर्ना एक दिन हमेशा के लिए उससे हाथ धो लेगा, तो बेंगा के होश उड़ गये। बेंगा उस दिन चतुरी को दिखा-दिखाकर अपना माथा पीटता रहा और बार-बार चीखता रहा कि यह साला हमें निरबंस करके ही दम लेगा। इसे किसी बात की चिन्ता नहीं। खुद तो मरेगा ही, हम-सब को भी उजाड़ जायगा। जिमींदार और महाजन से बैर बेसहने चला है। अपनी अर-अवकात नहीं देखता। मुसरी करे साँप से घर्रा ! और वह रोने लगा।

चतुरी कुछ बोला नहीं। वह उठकर बाहर चला गया।

हों। रंजन सबसे ज्यादा इन्हीं बालों को प्यार करता था। वह कहा करता था—पान कुँवरि, इन बालों में ही मेरे प्राण बसते हैं, ये बाल नहीं, मेरे दिल की रगें हैं। इन्हें सँभालकर रखना !—वह इन बालों को मुट्ठियों में भरकर आँखों से लगाता, गालों से छुलाता, चूमता और बार-बार सूँघकर कहता—यह जवानी के फूल की खुशबू है !—जब तक पान कुँवरि उसकी गोद में रहती, वह अपने होंठ उन बालों पर ही रखे रहता और ज़ोर-ज़ोर से सूँघता रहता।

मुंदरी बाल सँवारने बैठती, तो पान कुँवरि ताकीद करती—एक भी बाल न टूटे !—मुंदरी फूल की तरह उनके बाल हाथों में लेती। उँगलियों की जानदार कंघी से एक-एक बाल को वैसे ही सुलझाती, जैसे बनारसी साड़ियों का कोई बूढ़ा कारीगर उलझे हुए सोने के बारीक तारों को सुलझाता है। घण्टों में बाल सुलझाने के बाद वह कंघी उठाती और आगे-आगे उँगलियाँ चलतीं और पीछे-पीछे कंघी। फिर भी हाथ ही तो ठहरे। दो-चार बाल टूट ही जाते। पान कुँवरि तब बिगड़कर उसकी ओर देखती। और मुंदरी एक कत्ल के अपराधी की तरह वे टूटे बाल उसकी फैली हथेली पर रख देती। पान कुँवरि जब रंजन से मिलती, तो ये बाल उसे भेंट करती। रंजन आँखों में आँसू भरकर कहता—तो इतनी रगें और तोड़ डालीं ! बड़ी ज़ालिम हो !

और पान कुँवरि मुस्कराकर कहती—गोजर का एक गोड़ टूट जाने से क्या होता है !

और रंजन कहता—यह तुम नहीं समझ सकती, पान। तुम आशिक़ जो नहीं हो !—और वह ठंडी साँस लेकर उन बालों को आँखों से लगाता और जेब में रख लेता।

रानीजी ने एक करवट बदली। उनके लम्बे-लम्बे केश तकिया फाँदकर नीचे लटक गये। सिरहाने खड़ी सुनरी पंखा झल रही थी। उसने देखा, तो झट पंखा रखकर, दोनों हाथों से वह उन केशों को वैसे ही उठाने लगी, जैसे कोई माँ अपने सोये बच्चे को उठाती है। लेकिन जाने क्या हुआ कि रानीजी चौंककर उठ बैठीं। वह इधर-उधर

भीगा अंगोछा सिर पर और कमर में खुँसी धोती। सारी देह पसीने से नहाती। घड़ी-घड़ी ढेकुल रोककर हकर-हकर पानी पीना। और प्याज, चेन, बोरो और ऊख के खेतों में क्यारियाँ बरानेवाली किसानिनें किसी पेड़-तले बैठी या खड़ी क्यारी भरने का इन्तजार करतीं और भर जाने पर दूसरी क्यारी में पानी फेरकर फिर पड़े-तले भाग जातीं।

दिन ढलता, तो ज़रा जान-में-जान आती। आदमी ज़रा आराम की साँस लेता, बाहर निकलता, और इधर-उधर ज़रा ज़िन्दगी नज़र आने लगती। लेकिन जैसे-जैसे शाम होने लगती, फिर उमस बढ़ने लगती। लोग पोखर की ओर भागते, घाटों, कुओं और इनारों पर मेला लग जाता।

खाते-पीते पुरवा फिर सिहरने लगता। लोग बिस्तर पर करवटें बदलते। एक करवट हवा लगती, दूसरी करवट पसीने से भींगती रहती। रात बीतती, तो पुरवा झकझारने लगता। लगता, जैसे नींद की परियाँ अपने पंखों को नशे में डुबोकर हवा कर रही हों। व्याकुल प्राणी बेहोशी की नींद सो जाते और रात ढलती, तो पुरवा बेहोश पड़े हुए जले प्राणियों के रोम-रोम पर मरहम लगाना शुरू कर देता। यह इतना सुखद लगता कि आदमी का उठने को जी न करता। वह हवा ऐसी लगती, जैसे शराब और अमृत के सागर से होकर आयी हो।

दुपहरिया ढल चुकी थी। ऊपर तिनदरे में रानीजी पलंग प[र] कुम्हलाये फूल की तरह पड़ी थीं। पलंग पर सफेद झालरदार चाद[र] बिछी थी। रानीजी के चारों ओर सफेद गिलाफ़वाले पतले-पतले रेशमी रूईवाले मखमली तकिये रखे हुए थे। वह खुद भी सफ़ेद तंजेबी साड़ी और सफेद ही ढीली ब्लाउज़ पहने हुए थीं। खुले हुए बड़े-बड़े काले केश तकिये पर बिखरे हुए थे। जाने कैसे अब तक उनके बालों में जवानी क़ायम थी। उन बालों के बीच उनका सूखा चेहरा ऐसा लगता, जैसे हरी-हरी पत्तियों के बीच कोई फूल अचानक किसी कारण मुरझा गया हो। उन्हें अपने तन की सुध न रहती थी। लेकिन [बालों] से वह कभी लापरवाह न होतीं, जैसे वे बाल उनके पास धरोहर

हीं। रंजन सबसे ज्यादा इन्हीं बालों को प्यार करता था। वह कहा करता था—पान कुँवरि, इन बालों में ही मेरे प्राण बसते हैं, ये बाल नहीं, मेरे दिल की रगें हैं। इन्हें सँभालकर रखना!—वह इन बालों को मुट्ठियों में भरकर आँखों से लगाता, गालों से छुलाता, चूमता और बार-बार सूंघकर कहता—यह जवानी के फूल की खुशबू है!—जब तक पान कुँवरि उसकी गोद में रहती, वह अपने होंठ उन बालों पर ही रखे रहता और ज़ोर-ज़ोर से सूंघता रहता।

मुंदरी बाल सँवारने बैठती, तो पान कुँवरि ताकीद करती—एक भी बाल न टूटे!—मुंदरी फूल की तरह उनके बाल हाथों में लेती। उँगलियों की आनदार कंघी से एक-एक बाल को वैसे ही सुलझाती, जैसे बनारसी साड़ियों का कोई बूढ़ा कारीगर उलझे हुए सोने के बारीक तारों को सुलझाता है। घण्टों में बाल सुलझाने के बाद वह कंघी उठाती और आगे-आगे उँगलियाँ चलतीं और पीछे-पीछे कंघी। फिर भी हाथ ही तो ठहरे। दो-चार बाल टूट ही जाते। पान कुँवरि तब बिगड़कर उसकी ओर देखती। और मुंदरी एक क़त्ल के अपराधी की तरह वे टूटे बाल उसकी फैली हथेली पर रख देती। पान कुँवरि जब रंजन से मिलती, तो ये बाल उसे भेंट करती। रंजन आँखों में आँसू भरकर कहता—तो इतनी रगें और तोड़ डालीं! बड़ी ज़ालिम हो!

और पान कुँवरि मुस्कराकर कहती—गोजर का एक गोड़ टूट जाने से क्या होता है!

और रंजन कहता—यह तुम नहीं समझ सकती, पान। तुम आशिक़ जो नहीं हो!—और वह ठंडी साँस लेकर उन बालों को आँखों से लगाता और जेब में रख लेता।

रानीजी ने एक करवट बदली। उनके लम्बे-लम्बे केश तकिया फाँदकर नीचे लटक गये। सिरहाने खड़ी सुनरी पंखा झल रही थी। उसने देखा, तो झट पंखा रखकर, दोनों हाथों से वह उन केशों को वैसे ही उठाने लगी, जैसे कोई माँ अपने सोये बच्चे को उठाती है। लेकिन जाने क्या हुआ कि रानीजी चौंककर उठ बैठीं। वह इधर-उधर

चकित आँखों से देखकर बोलीं—मेरे बाल अभी किसी ने छुए थे?

अपराधी की तरह दोनों हाथ बाँधे खड़ी सुनरी ने कहा—जी, रानीजी, नीचे लटक गये थे।

रानीजी के मुँह से निकला—ओह!

पैताने खड़ी पंखा झलती बदमिया मुँह फेरकर मुस्करायी।

—तुम लोग जाव। मुँदरी को भेजो।—रानीजी ने कहा।

बदमिया चली गयी। सुनरी उनकी अस्त-व्यस्त साड़ी को ठीक करते हुए बोली—माई आ जाती है, तो चली जाऊँगी।

पसीने से भींगकर रानी जी बोलीं—उस खिड़की का पर्दा उठा दे।

सुनरी ने रेशमी सफेद पर्दा उठा कर कहा—पुरवा अभी नहीं लौटा, बड़ा गरमसा है।—और लौट कर ज़ोर-ज़ोर से पंखा झलने लगी।

रानी जी तकिये का सहारा ले उठंग गयीं।

*

यह हवेली बहुत पुरानी और बड़ी थी। पहले यह बिल्कुल किले की तरह थी। जिस तरह किले की दीवारों में बन्दूकें छोड़ने के लिए सिर्फ छोटे-छोटे छेद रहते हैं, उसी तरह इस हवेली की दीवारों में भी बाहर को छोटी-छोटी सुराहियाँ-भर कटी थीं। कहीं कोई जंगला या खिड़की न थी। लेकिन जब बड़े सरकार ने अपने पिता के मरने के बाद बागडोर सँभाली, तो उन्होंने पूरी हवेली को इधर-उधर से तोड़वा-फोड़वा कर उसे आधुनिक ढाँचे मे ढाला। रोशनदान, खिड़कियाँ और जंगले लगवाये। हर तरह से आरामदेह बनवाया।

बीच में बड़ा पक्का आँगन, उसके चारों ओर ऊँचे, कुशादा, ओसारे, ओसारों के चारो ओर पाँच-पाँच बड़े कमरे। दक्खिन की ओर बीच के कमरों के बीच से एक गलियारा बाहर जाता था। बाहर बड़ा हाता था। हाते में पूरब की ओर तीन पैखाने और नहाने के तीन कमरे बने हुए थे। उनके सामने पक्के चबूतरे से घिरा हाथ से चलने वाला एक पानी-कल था। इधर जवार में यह पहला पानी-कल लगा था।

की ओर छै छोटी-छोटी कोठरियाँ नौकरानियों के लिए थीं और

पच्छिम की ओर बहुत बड़ा ओसारेदार पक्का रसोई-घर था।

ओसारे के ऊपर छत थी। छत के चारों ओर नीचे ही की तरह बड़े-बड़े कमरे थे। इन कमरों में छत की ओर तीन-तीन दरवाजे और बाहर की ओर तीन-तीन खिड़कियां थीं। इसीलिए इनको तिनदरा कहा जाता था। पूरब की ओर के तिनदरे में रानीजी रहती थीं। उसकी खिड़कियां बाहर के खेतों में खुलती थीं। उत्तर के बीच के तिन-दरे में लल्लन रहता था। बड़े सरकार बहुत चाहते थे कि लल्लन दीवानखाने में रहा करे, अब वह कोई बच्चा नहीं कि मां के आंचल के नीचे पड़ा रहे। लेकिन रानीजी इसके लिए कभी तैयार न हुईं। लल्लन जब तक घर पर रहता, उसी तिनदरे में रहता। रानीजी उसे हमेशा अपनी आंखों के ही सामने रखना चाहती थी। जाने क्यों, उन्हें डर बना रहता कि कहीं उसे कुछ हो न जाय। वह हमेशा उसे अपने सामने खाना खिलातीं। इस तिनदरे की खिड़कियां हाते के बाहर बाग़ में खुलतीं। पच्छिम के बीच का तनिदरा बड़े सरकार का रात मे सोने का कमरा था। इसके पीछे भी तीन दरवाजे थे जो हवेली के सामने की बड़ी छत पर खुलते थे। गर्मी के दिनों मे बड़े सरकार इसी छत पर सोते थे। इस छत के चारों ओर ऊँची झरोखेदार दीवारों की रेलिगें थीं। रेलिगों पर तरह-तरह के फूलों के गमले करीने से सजे हुए थे।

बाकी सब कमरे सामानों से अटे पड़े थे। ये सामान पुश्त-दर-पुश्त इकट्ठे हुए थे। इनमें ज्यादातर शान-शौकत के सामान थे। शादी-बारात के सामान, जलसों और जशनों के सामान। जवार में यह बात मशहूर थी कि बड़े सरकार के यहां शादी-बारात का पूरा सामान है। बड़े घरानों में शादियां होतीं, तो यहां से सामान मांगकर ले जाये जाते। बड़ी दरियां और गालीचे, सुनहरी और रुपहली चांदनियां, अलबेलों का जोड़ा, सोने की फर्शियां, सोने-चांदी के बल्लम, कामदार जाजिमें, गंगा-जमनी खासदान और थाल, सोने के सिंहासन, झाड़-फानूस, हण्डे और गैस बत्तियां वगैरा-वगैरा। बड़े सरकार के यहां कोई शादी होती या मन्दिर में जन्माष्टमी या रामनवमी

मनाया जाता, तो इन सामानों का प्रदर्शन देखकर लोग चकित हो जाते।

नीचे उत्तर की ओर के बीच का कमरा मूल्यवान वस्तुओं, खजाने और जेवर आदि के लिए सुरक्षित था। इस कमरे के एक कोने में एक लोहे की बहुत बड़ी सन्दूक थी। इस सन्दूक के बारे में यह बात मशहूर थी कि अगर किसी चोर के हाथ इसकी सब चाभियां भी लग जायँ और सिर्फ़ एक चाभी मालिक के पास रह जाय, तो भी चोर के पल्ले कुछ भी न पड़े। लोगों का कहना था कि वह एक चाभी बड़े सरकार कहाँ रखते हैं, इसका किसी को पता नहीं। सन्दूक के दरवाज़ों पर एक ओर लक्ष्मीजी की और दूसरी ओर गणेशजी की मूर्ति खुदी थी। सन्दूक के ऊपर धूपदान में चौबीसों घण्टे एक बड़ी धूपदानी में धूप और अगल-बगल घी के बड़े-बड़े दीये जलते रहते थे। टांगनेवाले सामान कमरे में दीवारों पर चारों ओर टंगे थे और फ़र्श पर रखे जानेवाले सामान लकड़ी के तख़्तों पर। इस कमरे में हर दिन एक बार बड़े सरकार ज़रूर आते थे। धूपदानी में धूप और दीपों में घी वह अपने सामने डलवाते और सफ़ाई भी वह स्वयं अपने सामने ही करवाते थे। इस कमरे की दीवारों के बारे में लोगों का कहना था कि उनके बीच में लोहे की मोटी-मोटी चद्दरें डाली गयी हैं। कोई चोर उनमें सेंध नहीं लगा सकता। इस कमरे में एक ही बहुत मजबूत दरवाज़ा था, जिसमें नीचे, बीच में और ऊपर तीन-तीन बड़े ही मजबूत ताले लगाये जाते थे। ताले लगने के बाद बड़े सरकार उन्हें जोरों से झिझोड़-झिझोड़कर देखना कभी भी न भूलते थे।

*

मुंदरी के आते ही सुनरी सिरहाने से पंखा टिकाकर चली गयी। कई दिनों से वह अकेले में रानीजी से कुछ बातें [illegible] । चाहती थी, लेकिन ऐसा कोई मौक़ा [illegible] न था। [illegible] के लिए मिला भी था, तो ऐसे में [illegible] मन कह [illegible] ।

मुंदरी के आते ही [illegible]

देखकर कहा—ज़रा बक्से से वह डिबिया तो निकालना।
मुंदरी के चेहरे पर झुंझलाहट का रंग उभरते-उभरते रह गया। वह बोली—तो आज फिर...
—मुंदरी, तुझे भी मुझपर तरस नहीं आता?—रानीजी ने ऐसी नजर से मुंदरी की ओर देखकर कहा, जो पत्थर को भी पानी कर दे।
—तरस की मैं का जानूं,—मुंदरी ने एक विकृत मुस्कान के साथ कहा—आपकी आँखें रोती हैं और मेरा मन। आपके आँसू सबको नजर आ जाते हैं, मेरा नहीं। आप पर तरस आ सकता है, लेकिन मुझपर? और रानीजी, सच कहूँ, तो मैं चाहती हो नहीं कि कोई मुझ-पर तरस खाये। इसीलिए मैं आँखों से कभी रोती ही नहीं।
—पगली! यह भी क्या कोई अपने बस की बात है? मन रोयेगा, तो आँखें कैसे चुप बनी रहेंगी?
—वह आदमी का, रानीजी, जो अपने पर बस न रख सके,—रानीजी के सिरहाने से चाभियों का गुच्छा निकालते हुए मुंदरी ने कहा।
—तू तो पत्थर है, पत्थर!—मुँह बनाकर रानीजी ने कहा।
बक्से का ताला खोलते हुए मुंदरी ने सिर घुमाकर एक नजर रानीजी की ओर देखा और उसके गले के तार झंकार उठे।
—मुंदरी!—रानीजी ने घबराकर कहा—अगर तू इस वक्त हँसी, तो मैं तेरी जान ले लूंगी! तुझे, अब देखती हूँ, मेरी तबीयत की भी परवाह नहीं रह गयी है!
बक्से का पल्ला ऊपर उठाती हुई मुंदरी ने जोर लगाकर अपनी हँसी रोकी। फिर धीरे-धीरे बोली—जी तो बहुत हो रहा था, लेकिन अब न हँसूंगी। रानीजी, आप जानती हैं न, कि गदहा अगर दिन में एक-दो बार न लोटे, तो उसकी तन्दुरुस्ती खराब हो जाती है। मेरा भी अब कुछ वैसा ही हाल है। खैर, माफी माँगती हूँ। एक बात, अगर आप जान बख्शें तो, कहूँ, रानीजी?
—अरे, तू क्या सच ही ले बैठी कि मैं तेरी जान ले लूंगी?—नरम होकर रानीजी ने कहा।

—का ठिकाना, रानीजी ? राजा-रानी का मन ही तो है !

—दुत् ! तू ही तो मेरा एक सहारा है। तू न रहेगी, तो क्या मैं जिन्दा रहूँगी।...कह, तू क्या कहना चाहती है ?

बड़े बक्से का ढेर-सारा सामान निकालकर अपनी गोद में रखती हुई मुँदरी बोली—रानीजी, आप तो जानती हैं, मैं कैसी थी ? अगर आज मैं पत्थर बन गयी हूँ, तो इसकी जिम्मेदारी किसपर है, यह आप नहीं जानतीं ?

—जानती हूँ। लेकिन मुझ पर भी तो वही पड़ा है, जो तुझ पर। मैं क्यों न पत्थर बन गयी ? यह दिल-दिल की बात है, मुँदरी।

मुँदरी का जी फिर हँस पड़ने को हुआ। लेकिन अपने को दबा-कर वह बोली—सो तो हुई है, रानीजी। कहाँ एक रानी का दिल और कहाँ एक लौंडी का। फरक तो होगा ही। लेकिन मैं तो जानूँ, आदमी-आदमी का अपना-अपना पानी होता है। किसी का पानी आँसू बनकर बह जाता है और किसी का मन में जमकर पत्थर बन जाता है ! फरक तो हुई है, रानीजी। आप रो-रोकर एक दिन आँसुओं में ही बह जायेंगी, लेकिन मैं...मैं....जाने दीजिए। यह रही आपकी डिबिया।—गोद के सारे सामानों को बायें हाथ से सँभाले हुए उठकर मुँदरी ने दाहिने हाथ से डिबिया रानीजी को थमा दी और फिर सामान बक्से में धरने लगी।

रानीजी बैठकर वह खूबसूरत सन्दल की डिबिया खोलने लगीं। उनके हाथ काँप रहे थे और उनकी भरी आँखों के आगे यादों का हुजूम तेजी से गुजर रहा था।

कमजोर, काँपते हाथ डिबिया न खोल सके। कोई पेंच कहीं लग गया था। उन्होंने मुँदरी की ओर देखा। उनके सुफेद माथे पर पसीने की बूँदें झलक रही थीं।

बक्सा बन्द करके मुँदरी ने उनके हाथ से डिबिया ले, खोलकर थमा दी।

रानीजी काँपते बायें हाथ में डिबिया ले उसे देखने लगीं। ... में बालों के लच्छे नन्हे-नन्हे फनों की तरह उठ गये थे। उन्होंने ...

हाथ की उँगलियां उन पर वैसे ही फेरीं, जैसे कोई जख्म पर हाथ फेरे। और उनकी आंखों से टप्-टप् आंसू की बूंदें चूने लगीं। और पानी के झलमलाते पर्दे के पीछे वह दृश्य उभर आया :

आंखों में लबालब आंसू भरे, सिर झुकाये, रंजन उनके सामने खड़ा था। उसने कांपते हाथ से वह डिबिया जेब से निकालकर उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा था—यह अपनी चीज तुम ले लो। इस पर अब मेरा कोई हक़ न रहा। और तुम्हारी कुछ चिट्ठियां भी लाया हूं। उन्हें भी मुंदरी के हाथ भेजवा दूंगा।—और वह फफक-फफककर रो पड़ा था। और सुहागरात की दुलहिन की तरह सजी हुई पान कुंवरि ने उसकी छाती पर सिर रख दिया था।

यह शादी के पांच महीने बाद की बात थी। पान कुंवरि ने रंजन को अपनी ससुराल जरूर-जरूर आने के लिए लिखा था। उसने अपनी जान की क़सम दिलायी थी। उसने लिखा था कि आखिरी बार वह उससे मिलना चाहती है।

*

रंजन इतने ही दिनों के अन्दर मुहब्बत की हर मंजिल से गुजर चुका था। उसने छककर अमृत भी पिया था और अब जहर के घूंट भी पी रहा था। उन्नीस-बीस साल के रंजन के साफ और मासूम दिल-दिमाग पर पहला नशा कुछ इस तरह आ छाया था, कि वह बेखुद हो गया था। उसके संसार में पान कुंवरि के सिवा कुछ भी न रह गया था। खुमार-भरी उसकी आंखों के सामने हमेशा पान कुंवरि की मोहनी मूरत नाचा करती, उसका दिमाग खोया-खोया-सा चौबीसों घटे पान कुंवरि के बारे में सोचा करता और मुहब्बत के नशे में चूर उसके दिल से हरदम 'पान कुंवरि-पान कुंवरि' की पुकार उठा करती। उसकी जबान दूसरी हर बात के लिए खामोश हो चुकी थी। उसके मुंह से जब भी कोई बात निकलती, वह पान कुंवरि की होती। वह उदास, खामोश, अधखुली आंखों से एक टक सामने देखता, खोया हुआ पड़ा रहता। उसका दोस्त हैरान था कि यह उसे क्या हो गया। वह उसे टोकता और

छता, तो रंजन कहता—न पूछो, यह कहने की नहीं, बस महसूस करने की है। यह गूंगे के गुड़ की बात है।

अपने दोस्त के यहाँ रंजन पन्द्रह दिन रहा था और पन्द्रह दिनों में ही वह इस तरह बदल गया था कि पहचानना मुश्किल। वह दीवान-खाने के अपने दोस्त के कमरे में ही रात-दिन पड़ा रहता। उसे खाने-पीने की भी सुध न रहती। दोस्त बहुत इसरार करता, तो दो लुकमे मुंह में डाल लेता। वह बहुत जोर देकर, हाथ पकड़कर उठाता, तो जरा देर शाम को कहीं से घूम आता। वह कोई बात छेड़ता, तो वह पान कुँवरि की ले बैठता। उस वक्त उसकी उदास आँखों में एक नशीली चमक आ जाती, उसके होंठों पर एक प्यासी स्निग्धता दिखायी देती, उनका चेहरा फूल की तरह खिल उठता और उसकी आवाज ऐसी लगती, जैसे जबान नहीं, दिल बोल रहा हो। यही हालत उसकी उस वक्त भी होती, जब मुंदरी पान कुँवरि का कोई संदेशा या चिट्ठी लेकर आती या जब पान कुँवरि ख़ुद उसके पास होती। पान कुँवरि की बात वह अपने दोस्त से घंटों लगातार कर सकता था। उसके दोस्त की समझ में यह न आता था कि इतनी छोटी-सी पहचान इतना लम्बा दास्तान कैसे बन गयी? वह मजा न लेता हो, ऐसी बात न थी, मगर लगातार बहुत देर तक वह न सुन सकता था। वह उकता जाता था। वह उससे पाँच साल बड़ा था। सात साल पहले सत्रह साल की उम्र में ही उसकी शादी हो चुकी थी। वह कभी इस गली से न गुजरा था, होश सँभालते ही उसे सड़क से लगा दिया गया था, उसे त्रिलोक का अनुभव करा दिया गया था। उसे रंजन की बातें सुनकर उससे ईर्ष्या होती, उसे अफसोस होता कि इस तरह की मुहब्बत उसके लिए कहानी ही रह गयी।

हर रात खाना-पीना हो जाने के बाद वह अपनी मौसी (पान कुँवरि की माताजी) से कहकर पान कुँवरि और मुंदरी को अपने कमरे में ताश खेलने के लिए ले आता या मौसी हवेली में ही खेलने को '', तो रंजन को ही वह हवेली में पान कुँवरि के कमरे में बुला

लेता। थोड़ी देर तक ताश होता। थोड़ी देर तक हा-हा, हू-हू होता। और जब किसी की डांट पड़ती, तो सन्नाटा छा जाता। और थोड़ी देर के बाद जब सब सो जाते, तब राजेन्द्र और मुंदरी कमरे से बाहर आ जाते। ओसारे में खड़ा राजेन्द्र बार-बार अपनी कलाई-घड़ी देखता, बेआवाज कदमों से चौकन्ना हुआ टहलता और खम्भे से पीठ टिकाये मुंदरी नींद में झूमती रहती और अन्दर दरवाजा उठंगाकर पान कुंवरि और रंजन सांसों की आवाज में प्रेमालाप करते रहते।

बहुत देर के बाद राजेन्द्र दरवाजे के पास जाकर धीमे से कहता—अरे यार, एक बज गये। अब आज बस करो।

रंजन और पान कुंवरि को हैरत होती, कि इतनी जल्दी एक कैसे बज गये। अभी तो मुश्किल से दो-चार मिनट बीते होंगे। तब अन्दर जाकर दोस्त उन्हें घड़ी दिखाता। वे देखकर अचरज में पड़ते। रंजन सूखे गले से कहता—जब भी इनसे मिलता हूँ, मेरी घड़ी तो चलना ही बन्द कर देती है।—और फिर वे पांच मिनट के लिए और मिन्नत करते। राजेन्द्र बाहर आ जाता।

तन से प्राण एक क्षण मे ही बिछुड़ता होगा। लेकिन बिछुड़न के पहले की वह कशमकश! पान कुंवरि और रंजन रोज एक मौत मरते और एक जिन्दगी जीते। मुहब्बत उनके लिए जिन्दगी और मौत बन चुकी थी। साथ रहें, तो जिन्दगी और बिछुड़ें, तो मौत! रोज एक उम्मीद कि यह बिछुड़न मिलन के लिए है, और रोज एक आशंका कि यह मिलन बिछुड़न के लिए है। फिर भी वे मिलते और बिछुड़ते रहते, जीते और मरते रहते।

दस दिन की छुट्टी खतम हो गयी। लेकिन रंजन टलने का नाम न लेता। दोस्त परेशान, उसे लाकर क्या आफ़त मोल ले ली!

पान कुंवरि की माताजी बहुत दिनों के बाद अपनी बहन से मिली थीं। उनका कम-से-कम दो महीने ठहरने का विचार था। लेकिन अभी पन्द्रह दिन ही बीते थे, कि एक रात, जाने उन्होंने क्या देखा, कि सुबह होते ही उन्होंने चलने की तैयारी कर ली। सबने समझाया, मनाया,

मिन्नतें कीं। लेकिन सब बेसूद। उन्हें तो जैसे बिच्छू ने काट खाया था। एक क्षण भी वह रुकने के लिए राजी न हुईं।

पान कुंवरि ने सुना, तो बेपानी की मछली की तरह तड़पकर रह गयी। रंजन ने सुना, तो जैसे जान ही निकल गयी। कई मिनट तक तो वह सिर ही न उठा सका। फिर तड़पकर बोला—यार, कुछ ऐसा करो, कि हम भी उसके साथ जा सकें। वर्ना मैं तो मर जाऊँगा!

राजेन्द्र ने एक क्षण गौर से उसकी हालत देखी। वह हँसना चाहता था, डांटना चाहता था, समझाना चाहता था, लेकिन उसकी समझ में ही न आ रहा था कि क्या करे। खेल-खेल में ही मामिला इतना संगीन हो जायगा, उसे मालूम न था। आखिर उसने रंजन की पीठ सहलाते हुए कहा—ऐसा काम करना इस वक्त ठीक नहीं। पान की माताजी को शायद सब-कुछ मालूम हो गया है। मेरी बात मानो और सब्र से काम लो। मैं तुम लोगों की शादी कराने की हर कोशिश करूंगा। अपनी माताजी से कहूँगा, पिताजी से कहूँगा, मुझे उम्मीद है कि कामयाबी जरूर मिलेगी। लेकिन इसके लिए जरूरी है कि तुम कुछ दिनों तक अपने पर क़ाबू रखो। पागलपन में पड़कर कुछ ऐसा न कर डालो, कि बात हमेशा के लिए बिगड़ जाय और तुम्हें जिन्दगी-भर पछताना पड़े।

—क्या कहूँ, सहा नहीं जाता, दोस्त! जैसे दिल में एक आग जल रही हो। ओफ़!—और बिलख-बिलखकर रो पड़ा।

उस घड़ी से रोना, तड़पना और आहें भरना ही रंजन की जिन्दगी बन गया। रास्ते-भर ट्रेन में फर्स्ट क्लास के डिब्बे की ऊपर की एक बर्थ पर वह कुहनियों में मुँह छिपाये, आँखें मूँदे उदास लेटा रहा। रह-रहकर उसके सामने पान की वह डबडबायी आँखें आ जातीं। दिन के दो बजे पान वहाँ से विदा हुई थी। आगे उसकी माताजी की और पीछे पान की झालरदार पर्देवाली पालकी थी। पान की पालकी के . मुँदरी थम रही थी। दीवानख़ाने के सामने भरी-भरी आँखें रंजन और गम्भीर बना राजेन्द्र खड़े थे। हवेली से निकलकर

की चिट्ठी आती, तो उसे लगता कि उसकी हर बात का उसमें जवाब आया है। वह खुश होकर भी रोता और व्यथित होकर भी रोता, वह हर हालत में रोता और रो-रोकर हवा में खड़ी पान से फ़रियादें करता।

राजेन्द्र ने अपने माता-पिताजी को उनकी शादी के बारे में कई बार लिखा, लेकिन उसकी बात की ओर किसी ने ध्यान न दिया। फिर मजबूर होकर रंजन के बहुत ज़िद करने पर उसने अपने मौसी-मौसा की भी इसके बारे में लिखा। और यही बात पान कुँवरि के माता-पिताजी के लिए ज़हर हो गयी।

पान कुँवरि की माताजी ने सब-कुछ देख लिया था। उन्होंने घर आकर अपने पति को सब-कुछ बताया और शंकित होकर कहा कि पान की शादी में अब ज़रा भी देर करना खतरे से खाली नहीं।

यह जानकर ताल्लुकेदार के तो बस आग ही लग गयी। उन्होंने मुँदरी को बुलाकर पूछा—क्या यह-सब सच है ?

गो-हत्या की अपराधिनी-सी मुँदरी खड़ी थी। डर के मारे उसकी एक साँस ऊपर जा रही थी और दूसरी नीचे। उसका मुँह सूख रहा था। होश फ़ाख्ता हो रहा था।

ताल्लुकेदार सब समझ गये। गुस्से के मारे उनके मुँह से झाग निकलने लगा। उन्होंने ऐसा थप्पड़ मुँदरी की कनपटी में मारा कि वह चीखकर धड़ाम से गिर पड़ी।

चीख की आवाज़ सुनकर मुँदरी की माँ भागी-भागी आयी। बेटी को उस हालत में देखकर वह तड़प उठी। उसे अपनी गोद में उठाती बोली—का हुआ ? काहे मार दिया मेरी बेटी को ? ऐसा कोई कसूर करनेवाली तो यह नहीं।

ताल्लुकेदार मंज़िल मारे घोड़े की तरह हाँफ रहे थे। उन्होंने कहा—कसूर तो इसने वह किया है कि इसका गला काट देना चाहिए ! हटा यहाँ से इसे !

सहमी हुई मुँदरी की माँ उसे हटा ले गयी। उसका कलेजा कट था। ताल्लुकेदारिन वहाँ न होती, तो जाने क्या-क्या उसके मुँह से

निकल जाता। वह अपने कमरे में मुँदरी की कनपटी सहलाती रोती रही, और मुँदरी उसकी छाती में सिर डाले साँस खींच-खींचकर सुबकती रही।

बहुत देर बाद मुँदरी बोली—मेरा इसमें कौन दोस है, माई ? मैं कुँवरिजी का हुकुम कैसे टाल सकती थी ? उन्होंने जो कहा, वही तो मैंने किया।

—ऐसा ही होता है, मेरी बेटी, इस राज में ऐसा ही होता है ! मजा मारें गाजी मियाँ मार खाय डफाली !—उसके आँसू अपने आँचल से पोंछती हुई माँ बोली—राछस ने मेरी फूल-जैसी बेटी को ऐसा थप्पड़ मार दिया, कि पाँचों उँगलियाँ उखड़ आयी हैं ! च-च !—और उसका मुँह आँचल से पोंछने लगी।

मुँदरी ने मचलकर कहा—मैं अब कुँवरिजी के साथ नहीं रहूँगी, माई। चल, यह हवेली छोड़कर हम कहीं और रहें। कहीं किसी का कूट-पीसकर जिन्दा रहना यहाँ की गुलामी से कहीं अच्छा रहेगा।

—यहाँ से निकल भागना आसान नहीं, बेटी,—माँ ने मन मसोसकर कहा—और किसी तरह निकल भी भागें, तो अपनी जवान बेटी की हिफाजत मैं कैसे कर सकूँगी ? तू दुनिया को अभी क्या जाने। यह राछसों की बस्ती है। किसी गरीब के पास जवान बेटी का होना और खुले में भेली रखना दोनों बराबर है। जरा भी पलखत पड़ी कि वह काले-काले चींटे चिमट पड़ते हैं, कि छुओ तो काट खायें। मैं हर तरह मजबूर हूँ, बेटी। तेरी सादी के लिए ताल्लुकेदार से कई बार कह चुकी हूँ। लेकिन वह तुझे कुँवरि के साथ दहेज में भेजना चाहता है। मालिक के लिए लौंडी भी तो एक चीज-बस्त ही है, बेटी।

—मैं तुझे छोड़कर कहीं भी नहीं जाऊँगी !—माँ के गले से लिपटकर मुँदरी बोली।

—ऐसी बात मुँह से न निकालना। वह तुझे गोली मार देगा।—सहमकर माँ बोली।

—गोली काहे मार देगा ?—डरकर मुँदरी बोली।

—अब तुझे वह बात कैसे समझाऊँ ?...जाने दे, बेटी, जो किस्मत में लिखा है, उससे पिंड कैसे छुड़ाया जा सकता है।

—नहीं, माई, मैं नहीं जाऊँगी, नहीं जाऊँगी !—सिर हिलाकर हठपूर्वक मुँदरी ने कहा।

—पान कुँवरि फिर भी अच्छी है, बेटी। वह तुझे बहुत मानती भी है। उसके साथ तू सुख से रहेगी।—माँ ने बात बदलनी चाही।

—नहीं, माई, नहीं ! मैं तुझे छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी ! भले ही ताल्लुकेदार मुझे गोली मार दे !—माँ के ठेहुने पर अपना सिर पटककर मुँदरी बोली।

—तब का मैं जिन्दा रहूँगी ? वह मुझे भी मार डालेगा।—सामने शून्य में देखती माँ बोली।

—काहे ?—सिर उठाकर उसकी ओर आँखें फैलाकर देखती हुई मुँदरी बोली।

—बड़ी जिद्दी है, माई !—उसका सिर उठाती हुई माँ बोली।

—नहीं-नहीं, माई, बताओ !—उसके बाजू पकड़कर झकझोरती हुई मुँदरी बोली।

—नहीं मानेगी ?—गम्भीर स्वर में माँ बोली।

—नहीं, नहीं ! आखिर वह हमें काहे मार डालेगा ? बोल, बोल, माई, बता न !—और भी ज़ोर-से उसके कन्धे झकझोरती हुई मुँदरी बोली।

थोड़ी देर तक माँ खामोश रही। कई रंग उसके चेहरे पर आये-गये। आखिर उसने होंठ चबाकर कहा—अच्छा सुन ! एक दिन तुझे मैं बताने ही वाली थी। ताल्लुकेदार अपने रहते तुझे यहाँ किसी के साथ घर बसाते नहीं देख सकता।

—काहे ?—चकित होकर मुँदरी बोली।

—तू उसी की बेटी है !

—माई !—मुँदरी उसके बाजू छोड़कर चीख पड़ी।

—हाँ, अगर तू उसकी बेटी न होती, तो आज तुझे भी वह उसी

तरह रखता, जैसे मुझे रख चुका है।...यह सब बातें अभी तुझसे कहनी नहीं चाहिये थीं, लेकिन कह दीं, अच्छा ही हुआ। जाने फिर कभी मौका मिलता, न मिलता।...बेटी, मैं तुझसे का-का बताऊँ। भगवान राह का भिखारी बनाये, लेकिन किसी को किसी की लौंडी न बनाये। तू कुँवरि के साथ चली जाना, बेटी। और वहाँ किसी के साथ भी कुँवरि से कहकर घर बसा लेना। और हो सके, तो गुलामी से गला छुड़ा लेना। मैं कुँवरि से भी अरजी-मिनती करूँगी। नहीं तो तेरी भी वही हालत होगी, जो मेरी हुई है। और तेरे भी अगर कोई बेटी हुई....

—माई!—एक चीख मारकर मुँदरी माँ की गोद में सिर पटककर रो पड़ी।

—रो मत, मेरी बेटी। हिम्मत से काम लेगी, तो तेरी जिनगी सुधर जायगी। तेरी माँ बड़ी अभागिन है। वह तेरे लिए दुआ के सिवा कुछ नहीं कर सकती। इस ताल्लुकेदार की आँखों के सामने से हमेसा के लिए तेरा हट जाना ही अच्छा है। तू होसियारी से काम लेगी, तो सब बिगड़ी बन जायगी? तू सुन्दर है, कोई भी तुझसे बियाह करने को तुरन्त तैयार हो जायगा। कुँवरि की ससुराल में कितने ही नौकर-चाकर होंगे। देख-सुनकर किसी भी जवान के साथ तू जरूर बियाह कर लेना। बेटी, यह बात हमेसा याद रखना कि लौंडी से एक बेसवा की भी जिनगी कहीं अच्छी होती है और बड़ी-से-बड़ी बेसवा भी एक अदना ब्याहता औरत को देखकर सरम से गड़ जाती है। तू किसी के साथ बियाह कर लेना, जो भी दुख पड़े झेलना, लेकिन लौंडी की जिनगी हरगिज न जीना!

और तभी से मुँदरी ने एक खोल उतार फेंका। ताल्लुकेदार का सोया पड़ा खून लौंडी की देह में जहर बनकर जाग उठा। मुँदरी का जैसे सारा डर उड़ गया। हमेशा खामोश रहने वाली मुँदरी अब बार-बार आईने में अपना मुँह देखती और पान कुँवरि के मुँह से मिलान करती और खिलखिलाकर ऐसे हँस पड़ती कि हवेली चौंक जाती।

५

जवार में तहलका मचा हुआ था। लड़ाई के कामों में दखल देने के अपराध में महावीर, चतुरी और उनके छै साथियों को गिरफ्तार करके ज़िले को चालान कर दिया गया था। चारों ओर पुलीस गश्त लगा रही थी। पुलीस के साथ-साथ एजेण्ट और पटवारी भी घूम रहे थे। पटवारी बताता जाता था कि इस घर मे इतने जवान हैं, इस घर में इतने। जवान दिखायी पड़ जाते, तो उन्हें तुरन्त पकड़कर कांसटेबिलों की निगरानी में थाने भेज दिया जाता। हाज़िर न होते, तो उनके बूढ़े माँ-बापों से उनके बारे में पूछा जाता और तुरन्त ज़मींदार के यहाँ हाज़िर करने को कहा जाता। वे ज़रा भी ना-नुकर करते या बहाना बनाते, तो उन्हे खूब पीटा जाता, उनके घरों में घुसकर खानातलाशी ली जाती। बहू-बेटियाँ डरकर घरों से बाहर आ जातीं और जिस कान्से-टेबिल के हाथ जो लगता, उठा लेता। बूढ़े चीखते-चिल्लाते रहते औरतें रोती-पीटती रहतीं।

कितने घरों में ताला पड़ गया था। कितने ही नौजवान जान ले-ले इधर-उधर छुप गये थे, जैसे पकड़े गये, तो फांसी पर लटका दिये जायेंगे। बूढ़े माँ-बापों के दिल धक-धक कर रहे थे कि कहीं उनके सहारे न छिन जायँ, कहीं उनके लाड़लों को पकड़कर लड़ाई में कटने के लिए न भेज दिया जाय। जवान औरतों के कलेजे मुँह को आ रहे थे कि कहीं उनके आदमी हमेशा के लिए उनसे जुदा न कर दिये जायँ। और बच्चे खेल-कूद भूलकर सहमे-सहमे बडे-बूढ़ों की गोद में चिपके उनके उदास मुँहों को तक रहे थे और सोच रहे थे कि ये लाल पगड़ीवाले यहाँ से कब जायेंगे।

पुलीस जवानों की तलाश ऐसे कर रही थी, जैसे वे डाकू या कातिल । और खुद जवानों को भी आज ऐसा लग रहा था, जैसे जवान होना

ही कोई संगीन जुर्म हो। भोले-भाले गाँवों के किसान जवान, जिन्होंने परदेश का कभी मुँह न देखा था, जिनके लिए अपने घर, खेत, कस्बे के बाजार, गंगा के मेले और बहुत हुआ तो तहसीली और ज़िले की कचहरी तक ही दुनिया सीमित थी, कहीं दूर-दराज़ लड़ाई के मैदानों में कटने के लिए भेजे जाने की बात सुनकर वैसे ही भड़क उठे थे, जैसे शिकारियों को देखकर जंगल के हिरन।

जिस दिन चौकीदारों ने गाँवों में फ़ौज में भरती होने के लिए डुग-डुगी पर ऐलान किया था, उसी दिन से बड़े-बूढ़ों के चेहरों पर ऐसी उदासी, ऐसी बेकली आ छायी थी, जो आनेवाले बुरे दिनों की बातों के आसार देखकर आ जाती है। एक लड़ाई वे देख चुके थे। उस जमाने की महंगी, कहत, क़िल्लत और लहती की कहानियाँ आज तक वे न भूले थे और जब कभी ज़माने के रंग-ढंग या भाव-ताव की बात चलती, वे उस आफ़त के ज़माने की बात ज़रूर कहते थे। आज फिर उसी लड़ाई की खबर सुनकर उनकी जान सूख गयी। हे भगवान्, अब कैसे दिन आनेवाले हैं!

*

किसानों को यह ठीक मालूम न था कि ज़मीदार खेतों का बन्दोबस्त करने में क्यों देर लगा रहा है? ज्यादे-से-ज्यादे उनका यही ख्याल था कि लगान बढ़ाने की ही गरज से वह वैसा कर रहा है। लेकिन जो दर उसने चलायी थी, उसपर लेने की किसी की हिम्मत न थी। उस दर पर लेने से, साल अच्छी तरह सूखे-सैलाब से बच भी जाता, तब भी कोई फ़ायदा न था। इसी लिए सब इन्तज़ाम करके भी चतुरी वगैरा की राय से वे दम साधे बैठे थे। सब सोच रहे थे, जो सब पचों का हाल होगा, वही हमारा। देखा जायगा। जिमीदार आखिर कब तक रोके रहेगा। खुद तो इतने खेतों को जोत-बो सकता नहीं। और अगर ऐसा करने पर भी उतारू हो जाय, तो जोताई-बोआई वह किनसे करायगा? खुद हल की मुठिया थामने की सकत उसमें कहाँ है? उसकी ताकत तो हमीं हैं। हमारी ही ताकत तो उसकी है। हम उसके खेत न

जोतें, लगान न दें, बेगार न करें, सभी ओर से अपने हाथ खींच लें, तो....और एक अनजान ताकत महसूस करते हुए ये कहते—यह चतुरिया कैसी गियान की बातें करता है। कहाँ से ऐसी समझ आ गयी है उसमें ! कहता है, जैसे ताक़तवर होते हुए भी हनुमानजी हमेशा अपनी ताक़त भूले रहते थे, और उन्हें इसकी याद दिलानी पड़ती थी, वैसे ही किसान-मजूर भी दुनिया की सबसे बड़ी ताक़त होकर भी अपनी ताकत भूले हुए हैं। उन्हें इसकी याद दिलानी है। फिर तो जैसे हनुमानजी समुन्दर लांघकर रावन की लंका जला आये थे, उसी तरह जालिम जिमींदारों की हवेलियाँ छन-भर में किसान जला दें और अपनी मेहनत का फल खुद भोगें !....कैसी साधारन बात थी, फिर भी हमारी समझ में न आती थी। गुसाईंजी ने ठीक ही कहा है, बिनु गुरु होहि न ग्यान ! हम नाहक कारिन्दे की बात में फँसकर परती लिखाने जाकर चौधरियों से रार बेसह रहे थे। चतुरिया ने कैसे समझा दिया कि यह किसानों और चौधुरियों के बीच फूट डालने और पटवारी और कानूनगो और कारिन्दे की मुट्ठियाँ गर्म करने और खुद भी रुपया ऐंठने की जिमींदार की चाल है। किसानों को आपस में सनमत हो करके जिमींदार के जुलुमों के खिलाफ लड़ना चाहिए।

तीन दिनों से कानूनगो, दारोग़ा, पटवारी और एजेण्ट गाँवों में चक्कर लगा रहे थे और फ़ौजी नौकरी और जिन्दगी का बखान कर रहे थे। कई जगह उन्होंने सभाएँ भी कीं। ज़मींदारों की ओर से किसानों को उन सभाओं में शामिल होने का हुकुम दिया गया था। हाकिमों और ज़मींदारों के डर से किसान उनमें शामिल भी हुए थे और चुपचाप बैठकर उनकी लम्बी-चौड़ी, चिकनी-चुपड़ी बातें भी सुनी थीं। लेकिन जब नाम माँगा गया था, तो सोच-विचार के लिए मोहलत लेकर एक-एक कर सब खिसक गये थे। सबके मुँह में एक ही बात थी—परदेस की हलुआ-पूड़ी से घर का साग-सत्तू भला। ऐसी किसी की जिनगी बेकार नहीं हुई है, कि जान-बूझकर लड़ाई में जा गँवाये !

इतनी दौड़-धूप, सर-सभा और ज़मींदारों की सख़्ती का नतीजा

जब कुछ भी हाथ न लगा, तो हाकिमों को चिन्ता हुई कि यहाँ का कोटा कैसे पूरा होगा ? डिप्टी साहब की सख्त ताकीद थी कि जैसे भी हो, उस थाने से एक हज़ार जवान मिलने ही चाहिएँ । कलक्टर साहब का हुकुम है । कोटा पूरा न होने पर पेशी तक हो सकती है और ज़ाहिर है कि उसका नतीजा मुकामी अफसरों के लिए बुरा होगा । इसके खिलाफ़ अगर कोटे से ज्यादा जवान भेजे गये, तो उनकी तरक्की हो सकती है । लड़ाई का ज़माना है, घंटे-घंटे में अच्छा काम करनेवालों को तरक्की मिलती है और सरकार को मदद देनेवाले ज़मींदारों और रईसों को खिताब मिलते हैं ।

आखिर जब देख लिया गया, कि किसी तरह सीधी अंगुली घी नहीं निकलने का, तो एक रात बड़े सरकार के दीवानखाने में दारोग़ा, नायब दारोग़ा, कानूनगो, पटवारियों और ज़मींदारों की मिटिंग हुई । बड़े सरकार हल्के के सबसे बड़े ज़मींदार थे । दो सौ गाँवों में उनकी अमलदारी थी । सबसे ज्यादा ज़िम्मेदारी उन्हीं पर पड़ती थी ।

एक मत से सबने यह बात मानी कि महाबीर, रमेसर, चतुरी और उनके साथी ही सबसे बड़े अड़ंगे हैं । उन्होंने ही किसानों का दिमाग खराब कर दिया है । जब तक मैदान उनसे साफ न कर दिया जायगा, काम बनना मुश्किल है । वक्त कम है । जो करना हो, चटपट करना चाहिए ।

तय हुआ कि कल ही महाबीर और रमेसर और चतुरी और जितने भी उनके साथी मिलें, सब पकड़कर जिले को चालान कर दिये जायँ । और फिर जैसे भी हो हलके के जवानों को पकड़-पकड़कर थाने में इकट्ठा करना शुरू कर दिया जाय । डिप्टी साहब के आने के पहले ही कोटा पूरा कर देना ज़रूरी है । कोई भी यह काम पूरा करने के लिए कुछ उठा न रखे । ज़रूरत पड़ेगी, तो दारोग़ा और भी कांसटेबिल ज़िले से बुला लेगा ।

*

दूसरे दिन कस्बे का बाज़ार था । कस्बे के पूरब ओर बड़े मैदान

में हफ्ते में दो दिन, इतवार और बुद्ध को, यह बाज़ार लगता था। चार-चार कोस तक के लोग इस बाज़ार में सौदा-सुलुफ़ करने आते थे। काफ़ी बड़ा बाज़ार लगता, हर ज़रूरत की चीज़ की छोटी-बड़ी कितनी ही दुकानें लगतीं। बड़े दूकानदारों ने ईंटों या मिट्टी की दुकानें बना रखी थीं, जो बाज़ार के दिन ही खुलती थीं, बाक़ी दिन उनपर ताला पड़ा रहता था। छोटे-छोटे दुकानदार अपनी चीज़ें ज़मीन पर ही लगाते थे। दौरी में थोड़ा-थोड़ा अनाज या गुड़ या तेलहन या तरकारी बेचनेवाले किसान, ग़ल्ला, नमक, सुरती, तम्बाकू बेचनेवाले बनिये, कपड़े बेचनेवाले बजाज, जूते बेचनेवाले चमार, कम्बल बेचनेवाले भेड़िहार, मसाले बेचनेवाले पंसारी, चूड़ियाँ बेचनेवाले चूड़िहार, आईना, कंघी बटन, चाकू, कैंची, कलम, खिलौने, सिन्दूर वगैरा बेंचनेवाले मनिहार, खली और तेल बेचनेवाले तेली, गरजे कि समाज के सब तबके के लोगों का यहाँ मेला-सा लगता था। बड़ी भीड़ होती। अंग से अंग छिलता। आसमान में जितनी धूल उड़ती, उतना ही शोर उठता।

कभी-कभी मदारी और जादूगर भी अपना खेल दिखाने आ पहुँचते। ज़िले की मिशनरी का पादरी तो अक्सर इस बाज़ार में आता, किताबों की दुकान छानता, हारमोनियम पर गाने सुनाता और लेक्चर देता। इक्के-दुक्के लोग वहाँ भी एकाध छन के लिए खड़े हो जाते। कस्बे के आर्यसमाजियों ने एक बार उसके खिलाफ आवाज उठायी थी, लेकिन कलक्टर ने उनका मुँह बन्द कर दिया था।

महावीर और उसके दूसरे साथी इस बाज़ार में कन्धे पर झण्डा लटकाये, आवाज लगाकर बराबर अखबार बेंचते थे। यहाँ वे जवार से आये सैकड़ों किसानों से मिलते, उनके सुख-दुख की सुनते, दुनिया का हाल-चाल सुनाते, सभा-सोसायटी का प्रोग्राम बनाते।

इधर एक हफ्ते से बाज़ार के पास ही टाउन एरिया के दफ्तर में लड़ाई का भी एक दफ्तर खुल गया था। दीवारों पर बड़े ही भड़कीले पोस्टर टंगे हुए थे, जिनमें सैनिकों और सैनिक-जीवन के बड़े ही आकर्षक और लुभावने वर्णन छपे थे। यहाँ एक एजेण्ट सैनिक-जीवन के

बखान में घुआँधार भाषण दे रहा था। बाज़ार में कई एजेण्ट घूम-घूमकर नोटिसें बाँट रहे थे और भोंपे पर भर्ती का ऐलान कर रहे थे और जवानों को फँसा रहे थे। कोई फँस जाता, तो उसे वे दफ्तर में लाते और उसका नाम-पता लिखाकर थाने में पहुँचा देते।

पुलीसवालों ने सलाह-मशविरा कर, खूब सोच-समझकर महाबीर वगैरा को फँसाने के लिए आज दुहरा जाल बिछाया था। बाज़ार में ही यह जाल उन्होंने इसलिए बिछाया था कि महाबीर वगैरा के पकडे जाने की खबर तुरन्त चारों ओर फैल जाय, लोग अपनी आँखों से उन्हे पकड़े जाते देख लें और समझ लें कि पुलीस की ताकत के आगे उनकी बिसात क्या है। यों वे चाहते, तो कहीं भी उन्हें पकड़ सकते थे, लेकिन वैसा करने से वह तमाशा कैसे खड़ा होता, जिसे वे आम लोगों को दिखाना चाहते थे और उसके ज़रीये यह बताना चाहते थे कि किसान जिनके बल पर इतना कूदते हैं, उन्हें वे यों चुटकी से मसल सकते हैं, किसान किसी भ्रम में न रहें।

पहला जाल ज़मींदारों की ओर से बिछाया गया था और दूसरा एजेण्टों की ओर से।

बात यह थी कि जिस जमीन पर बाजार लगता था, उसमें सात-आठ ज़मींदारों का हिस्सा था, और चूंकि जमीन जमींदारों में बँटी न थी, इसलिए हर जमींदार पूरी ज़मीन पर अपना हक़ जताता और दूकानदारों से कौड़ी (कर) वसूल करता। यह कौड़ी एक पैसे से लगाकर आठ आने तक प्रति दूकान होती। दूकानदारों पर यह बहुत बड़ा ज़ुल्म था कि उन्हे हर ज़मींदार को कौड़ी चुकानी पड़ती। लेकिन यह धाँधली बहुत दिनों तक न चली। दूकानदारों ने आपस में सलाह-मशविरा किया और एक बाज़ार के दिन हड़ताल कर दी। जमींदारों ने सुना, तो हक्का-बक्का हो गये। बाज़ार से उन्हें बहुत फ़ायदा होता था, तम्बाकू, सुर्ती, तरकारी और नक़द पैसा काफ़ी मिल जाता था। उन्होंने दूकानदारों के नुमाइन्दों को बुलाया। नुमाइन्दो ने मांग रखी कि इस तरह कौड़ी वसूलना जमींदार बन्द करें। वे या तो अपने में बाजा—

हिस्से बाँट लें, या एक-एक बाज़ार की कौड़ी एक-एक ज़मींदार से लें, या कोई भी एक आदमी वसूल कर ले और जमींदार आपस में बाँट लें। दूकानदार हर जमींदार को हर बाजार कौड़ी नहीं दे सकता। सोचने की बात है कि आठ आने-एक रुपये की तरकारी बेंचनेवाले दो आने कौड़ी के दे देंगे, या चार-पाँच रुपये के नमक-मुर्चा बेंचनेवालों से आठ आने कौड़ी के वसूल कर लिये जायेंगे, तो उन्हें क्या मिलेगा ? अगर जमींदार न मानें, तो दूकानदार और कहीं बाजार लगा लेंगे। दूकानदारी वे दो पैसे कमाने के लिए करते हैं, घर से भी गँवाने के लिए नहीं।

कोई चारा न था। ऐसा तो था नहीं कि जमींदार जबरन्ती करके दूकानदारों को बाजार में ला बैठाते। ऐसा सम्भव होता, तब तो ये कर ही गुजरते। लेकिन यह असम्भव था। दूकानदारों की बात मजबूरन उन्हें माननी ही पड़ी। तै हुआ कि अब बाज़ार में एक ही आदमी कौड़ी वसूल करेगा। जमींदार आपस में बाँटने का कोई इन्तजाम कर लेंगे।

कई साल इसी तरह बाजार चलता रहा। फिर अचानक एक दिन टाउन एरिया की ओर से डुगडुगी पर यह मुनादी करायी गयी कि बाजार टाउन एरिया के अन्दर है। कोई भी दूकानदार किसी भी जमींदार को कौड़ी न दे। अब टाउन एरिया की ओर से हर दूकानदार पर उसकी दूकानदारी की हैसियत के मुताबिक सालाना टिकस लगेगा। हर दूकानदार को यह इत्तिला दी जाती है कि वह एक हफ्ते के अन्दर टाउन एरिया के दफ्तर में अपना नाम लिखाकर, सालाना टिकस जमा कर रसीद हासिल कर ले। उसके बाद जो भी दूकानदार बिना रसीद का पाया जायगा, उसका चालान हो जायगा।

यह दो मूजियों की आपसी खटपट थी। दूकानदारों के नुमाइन्दे दोनों से मिले और कहा कि अब वे किसी को भी तब तक कोई कौड़ी न देंगे, जब तक कि टाउन एरिया और जमींदारों में से किसी एक को कौड़ी वसूल करने का हक कचहरी से न मिल जाय। और अगर दोनों फ़रीकैन किसी ने दूकानदारों को तंग किया, तो वे बाजार ही तोड़ देंगे।

उन्हें कौड़ी देने से कोई इनकार नहीं, लेकिन किसको दें, यह बात पहले तै हो जानी चाहिए।

जब टाउन एरिया और जमींदारों के बीच झगड़ा चला। पहले सर-समझौते की कोशिश हुई। टाउन एरिया के कई मेम्बरों ने बीच-बचाव किया, उन्होंने कहा कि अगर जमींदार खुद बाजार की आमदनी से सालाना कम-से-कम आधा हिस्सा टाउन एरिया को दे दें, तो टाउन एरिया बाजार से अपना हक़ वापस ले लेगा। आखिर जब बाजार की जमीन कस्बे के अन्दर है, तो टाउन एरिया का हक़ उसपर है ही। कोई खेत की जमीन होती, तो जमींदारों का उस पर हक़ होता, जिसकी लगान वे सरकार को देते। लेकिन वह तो डीह की जमीन है। उसपर टाउन एरिया का ही क़ानूनी हक़ है। अब तक जमींदार धांधली से अपना क़ब्ज़ा जमाये रहे। लेकिन जमींदार इतनी आसानी से माननेवाले कहाँ थे? सालों से चली आयी अपनी आमदनी और हुकूमत वे कैसे छोड़ सकते थे? उन्होंने टाउन एरिया पर मुकद्दमा दायर कर दिया।

क़ानून का रास्ता जितना लम्बा है, उतना ही पेचीदा भी। शतरंज के बत्तीस मोहरे, लेकिन उनकी चालें अनगिनत। तहसील से लेकर हाई कोर्ट तक और फिर विलायत तक बिसातें बिछी हैं। एक-से-एक बढ़कर माडे के खिलाड़ी हैं। जैसा रुपया लगाओ, वैसा खिलाड़ी मिलेगा। वह तुम्हारे लिए खेल खेल देगा। जीत-हार का नफ़ा-नुकसान तुम्हारा। एक पर मात खाओ, तो दूसरी बिसात पर फिर खेल शुरू कराओ। खेलते जाओ, खेलते जाओ। उम्मीद का दामन न छोड़ो। खेल है, खेल की चालें हैं, कहीं जीत और कहीं हार।

मुकद्दमा जमींदारी का सिंगार है। एक मुकद्दमा और सही। हुकूमत है, तो ज़मींदारी है, ज़मींदारी है, तो रुपया है। रुपया का मोह जमींदारों की शान कैसे बनाये रख सकता है? और शान ही ... तो कुछ नहीं, बेशान की जमींदारी बेताज की बादशाहत के बराबर ताज की चलती है, बादशाहत की नहीं। जिसके सिर शाह। जिसकी शान उसी की जमींदारी।

हिस्से बाँट लें, या एक-एक बाजार की कौड़ी एक-एक जमींदार ले लें, या कोई भी एक आदमी वसूल कर ले और जमींदार आपस में बाँट लें। दूकानदार हर जमीदार को हर बाजार कौड़ी नहीं दे सकता। सोचने की बात है कि आठ आने-एक रुपये की तरकारी बेंचनेवाले दो आने कौड़ी के दे देंगे, या चार-पांच रुपये के नमक-सुर्ती बेंचनेवालों से आठ आने कौड़ी के वसूल कर लिये जायेंगे, तो उन्हें क्या मिलेगा? अगर जमींदार न मानें, तो दूकानदार और कहीं बाजार लगा लेंगे। दूकानदारी वे दो पैसे कमाने के लिए करते हैं, घर से भी गँवाने के लिए नहीं।

कोई चारा न था। ऐसा तो था नहीं कि जमींदार जबरन्ती करके दूकानदारों को बाजार में ला बैठाते। ऐसा सम्भव होता, तब तो वे कर ही गुजरते। लेकिन यह असम्भव था। दूकानदारों की बात मजबूरन उन्हें माननी ही पडी। तै हुआ कि अब बाजार में एक ही आदमी कौड़ी वसूल करेगा। जमीदार आपस में बाँटने का कोई इन्तजाम कर लेंगे।

कई साल इसी तरह बाजार चलता रहा। फिर अचानक एक दिन टाउन एरिया की ओर से डुगडुगी पर यह मुनादी करायी गयी कि बाजार टाउन एरिया के अन्दर है। कोई भी दूकानदार किसी भी जमीदार को कौड़ी न दे। अब टाउन एरिया की ओर से हर दूकानदार पर उसकी दूकानदारी की हैसियत के मुताबिक सालाना टिकस लगेगा। हर दूकानदार को यह इत्तिला दी जाती है कि वह एक हफ्ते के अन्दर टाउन एरिया के दफ्तर में अपना नाम लिखाकर, सालाना टिकस जमा कर रसीद हासिल कर ले। उसके बाद जो भी दूकानदार बिना रसीद का पाया जायगा, उसका चालान हो जायगा।

यह दो मूजियों की आपसी खटपट थी। दूकानदारों के नुमाइन्दे दोनों से मिले और कहा कि अब वे किसी को भी तब तक कोई कौड़ी न देंगे, जब तक कि टाउन एरिया और जमींदारों में से किसी एक को कौड़ी वसूल करने का हक़ कचहरी से न मिल जाय। और अगर दोनों फरीकैन किसी ने दूकानदारों को तंग किया, तो वे बाजार ही तोड़ देंगे।

उन्हें कौड़ी देने से कोई इनकार नहीं, लेकिन किसको दें, यह बात पहले तै हो जानी चाहिए।

अब टाउन एरिया और जमींदारों के बीच झगड़ा चला। पहले सर-समझौते की कोशिश हुई। टाउन एरिया के कई मेम्बरों ने बीच-बचाव किया, उन्होंने कहा कि अगर जमींदार खुद बाजार की आमदनी से सालाना कम-से-कम आधा हिस्सा टाउन एरिया को दे दें, तो टाउन एरिया बाजार से अपना हक वापस ले लेगा। आखिर जब बाजार की जमीन कस्बे के अन्दर है, तो टाउन एरिया का हक़ उसपर है ही। कोई खेत की जमीन होती, तो जमींदारों का उस पर हक़ होता, जिसकी लगान वे सरकार को देते। लेकिन वह तो डीह की जमीन है। उसपर टाउन एरिया का ही कानूनी हक है। अब तक जमींदार धाँधली से अपना कब्जा जमाये रहे। लेकिन जमींदार इतनी आसानी से माननेवाले कहाँ थे? सालों से चली आयी अपनी आमदनी और हुकूमत वे कैसे छोड़ सकते थे? उन्होंने टाउन एरिया पर मुकद्दमा दायर कर दिया।

कानून का रास्ता जितना लम्बा है, उतना ही पेचीदा भी। शतरंज के बत्तीस मोहरे, लेकिन उनकी चालें अनगिनत। तहसील से लेकर हाई कोर्ट तक और फिर विलायत तक बिसातें बिछी हैं। एक-से-एक बढ़कर भाड़े के खिलाड़ी हैं। जैसा रुपया लगाओ, वैसा खिलाड़ी मिलेगा। वह तुम्हारे लिए खेल खेल देगा। जीत-हार का नफ़ा-नुकसान तुम्हारा। एक पर मात खाओ, तो दूसरी बिसात पर फिर खेल शुरू कराओ। खेलते जाओ, खेलते जाओ। उम्मीद का दामन न छोड़ो। खेल है, खेल की चालें हैं, कहीं जीत और कहीं हार।

मुकद्दमा जमींदारी का सिंगार है। एक मुकद्दमा और सही। हुकूमत है, तो ज़मींदारी है, ज़मींदारी है, तो रुपया है। रुपया का मोह जमींदारों की शान कैसे बनाये रख सकता है? और शान ही नहीं, तो कुछ नहीं, बेशान की जमींदारी बेताज की बादशाहत के बराबर है, हुकूमत ताज की चलती है, बादशाहत की नहीं। जिसके सिर ताज, वही बादशाह। जिसकी शान उसी की जमींदारी।

और कौन टाउन एरिया के पदाधिकारियों के बाप का पैसा खर्च हो रहा था !

सो मुकद्दमा चला, तो चलता रहा। कहीं एक हारता, तो कहीं दूसरा ? नुक्ते पर नुक्ते निकलते गये। संसार का कोई वकील हारकर भी कहीं अपने को हारा हुआ मानता है ! उसकी हार तो अफ़सर की नासमझी, पक्षपात या बदमाशी होती है।

लेकिन इस बीच भी जमींदार कौड़ी के बारे मे सचेत रहे। थोड़े ही दिनों बाद फिर जमींदारों के आदमी बाजार मे घूमने लगे। अब पहले का इन्तजाम रद्द हो गया था। अब जमींदार धांधली पर उतर आये थे। सब जमींदारों के आदमी जिस दुकान से मौका देखते, कौड़ी माँगते। दूकानदार कमजोर होता, तो कुछ देकर पिण्ड छुड़ा लेता। बिक्री के वक्त झायँ-झायँ कर कौन अपनी दूकानदारी खराब करे ? लेकिन जो दूकानदार दबंग होता, वह अड़ जाता। बात बढ़ती। शोर मचता। भीड़ इकट्ठी हो जाती। तब खबर पाकर जहाँ कहीं भी महाबीर, चतुरी, रमेसर वगैरा होते, भागे-भागे आ जाते और दूकानदार की तरफ़दारी कर जमींदार के आदमी को भगा देते। न्याय उनके पक्ष में होता। सब थू-थू करते जमींदारों के आदमी पर। इस तरह की एक-न-एक वारदात हर बाजार मे जरूर होती।

इसी बात को पहले जाल का आधार बनाया गया था। तय हुआ था कि जमींदार का एक आदमी किसी दबंग दूकानदार से उलझेगा। जब महाबीर वगैरा उसकी तरफदारी करने आयेंगे, तो वह उनसे उलझ जायगा और एकाध को एकाध थप्पड़ भी लगा देगा। जाहिर है, तब बात आप ही बढ़ जायगी। बाजार में तहलका मच जायगा। तभी कहीं पास ही तैयार खड़ी पुलीस पहुँचेगी और महाबीर वग़ैरा को पकड़कर मारते हुए घसीट ले जायगी। इससे बाजार टूट जाने का खतरा था। लेकिन अब बाजार रहने ही से जमींदारों को क्या फ़ायदा था ?

यह योजना अगर किसी कारण असफल हो जाय, तो दूसरा जाल ग में लाया जानेवाला था। वह सीधा और अचूक था। एजेण्टों

को ताक़ीद कर दी गयी थी कि वेबात के भी वे महाबीर वग़ैरा से झगड़ा मोल ले लें।

लेकिन दूसरे जाल की जरूरत न पड़ी। पहले ही जाल में चिड़ियां फँस गयीं। दारोगा, नायब और पच्चीस कांसटेबिल महाबीर, चतुरी और उनके छै साथियों को डंडों से सूअर की तरह पीटते हुए सरे बाजार घसीट ले गये। दूकानदार डर के मारे अपनी-अपनी दूकान बढाकर भाग खड़े हुए। और लोग आँखें फाड़-फाड़कर देखते रह गये।

*

चतुरी की माँ को जब यह खबर मिली, वह छाती पिटती वेंगा के पास पहुँची।

दरबार लगा था। वेंगा बड़े सरकार के पाँव दबा रहा था। चतुरी की माँ चीखती हुई सीधे बड़े सरकार के पाँवों पर सिर पटककर बिलखती हुई बोली—मेरे बेटे को सिपाही पकड़ ले गये! दुहाई है बड़े सरकार की! हम मर जायेंगे! एक ही तो मेरा बेटा है। आप उसे छुड़वा दीजिए, बड़े सरकार....—और वह ऐसे फूट-फूटकर रोने लगी, जैसे उसका कलेजा ही कटा जा रहा हो।

बड़े सरकार ने पाँव खींचकर बेंगा से कहा—हटा इसे! क्या हुआ, कुछ मालूम भी तो हो। जैसी करनी, वैसी भरनी। कन्धे पर झण्डा झुलाते जब वह गाँव-गाँव घूमकर किसानों को भड़काता फिरता था, तब तो यह मेरे पास न आयी!

वैद्यजी बोले—हमने कितनी बार इन्हें समझाया था, मना करो उसे। मगर सुनता कौन है? अब सिर पर आ पड़ी, तो कैसे पुक्का फाड़-फाड़कर रो रही है!

पुजारीजी ने कहा—भगवान के यहाँ देर है अन्धेर नहीं। एक दिन हमसे भी वह उलझ गया था, बड़े सरकार। कहता था, यह धरम-करम सब ढोंग है। मैं तो जानूँ, यह ठाकुरजी के कोप का ही नतीजा है।

—मुसरी करे साँप से घर्रा!—पहलवान सौदागर ने मुंह बिचका-

कर कहा—अपनी बिसात देखकर काम न करनेवाले का यही नतीज
होता है।

—अब कैसा मज़ा मिल रहा है!—शम्भू बोला—चाचाजी क
सालों नमक खाकर अब उन्हीं के खिलाफ प्रचार करता फिरता था
बड़े सरकार!

बेंगा के जले पर ये बातें नमक की तरह छन-छन कर रही थीं
एक छन को उसके जी में तो आया कि वह भी कुछ सुना दे। लेकि
गम खाकर वह सिर झुकाये ही अपनी औरत को उठाने लगा। बड़े स
कार के पाँव वह छोड़ ही न रही थी। वह गिड़गिड़ाये जा रही थी
धरती पर बैठे कई किसान उठकर उसके पास आ पूछने लगे—कै
पकड़ा गया? का हुआ था, चाची?....

बड़े सरकार ने घुड़ककर कहा—यहाँ शोर न मचाओ! हटाओ
इसे!

किसान चतुरी की चीखती-चिल्लाती बेहाल माँ के हाथ छुड़ाकर उ
सँभाले हुए ले जाने लगे। बेंगा एक छन सिर झुकाये चुप खड़ा रहा
फिर अचानक बड़े सरकार के पाँवों पर गिरकर गिड़गिड़ा पड़ा—दुह
है सरकार की! जिनगी-भर सरकार की गुलामी की है। ईमान-धरम स
छोड़कर सरकार की तावेदारी की है। सरकार के जूते उठाते-उठाते
यह उमर हो गयी। कभी सरकार के सामने किसी बात के लिए जब
न हिलायी। आज पहली बार सरकार से मिनती कर रहा हूँ! चतुरि
को छोड़ा दीजिए, बड़े सरकार! आपके पाँव पड़ता हूँ। बस, एक ब
छोड़ा दीजिए, एक बार!...फिर कभी आपसे किसी बात के लिए क
तो मेरे मुँह पर जूता मारिएगा। बड़े सरकार! बड़े सरकार!...

बड़े सरकार ने पाँव खींचते हुए कहा—सौदागर, इसे फाटक
बाहर कर आ!

सौदागर उठकर बेंगा के हाथ छुड़ाने लगा, लेकिन उसके ह
चमगादड़ के पंखों की तरह चिमटे हुए थे। वह गिड़गिड़ाकर दुहाई दि
रहा था। आखिर जोर लगाकर सौदागर उसके हाथ छुड़ाकर, उ

टाँगकर फाटक की ओर ले जाने लगा। बेंगा मछली की तरह छटपटाता 'बड़े सरकार-बड़े सरकार' चीखता जा रहा था।

मुँदरी हाथ में पान की तश्तरी लिये मुँह फुलाये खड़ी-खड़ी खामोश निगाहों से सब देख रही थी और होंठ चबाये जा रही थी। सौदागर बेंगा को टाँगे-टाँगे फाटक के बाहर हो गया, तो झमककर मुँदरी ने तख्त पर तश्तरी पटक-सी दी और झम्म से पलटकर तेज कदमों से चली गयी।

बड़े सरकार ने पंखा झलनेवाले से कहा—जरा गोपलवा को तो पुकार!

*

बेंगा की झोंपड़ी के सामने भीड़ लगी थी। चतुरी की माँ ऐसी छाती कूट-कूटकर विलाप कर रही थी, जैसे उसका बेटा मर गया हो। पास खड़े औरत-मर्द उसे समझा-बुझा रहे थे।

—कोई चोरी-डकैती में गया है कि तू इस तरह जान छोड़ रही है!

—अरे, दो-चार दिन हवालात में रखकर आप ही छोड़ देंगे।

—उसे कुछ न होगा, काकी, तू नाहक परेसान न हो।

—वह हम-सबका पियारा है, उसे कुछ होगा, तो का हम चुप बैठे रहेंगे?

—आरे, सबुर कर, भौजी, सबुर कर। चतुरिया कोई अकेले नहीं गया है कि पुलीसवाले उसे खा जायेंगे।

—अरे, उसको खा जाना कोई ठट्ठा है! हमारे बड़े सरकार भी उससे मन-ही-मन डरते हैं।

—मैं तो जानूँ, बड़े सरकार की भी इसमें साट-गाँठ जरूर होगी। अभी तक हमने उनके खेत नहीं लिये चतुरिया के समझाने से ही तो। बड़े सरकार को जरूर इसकी भनक मिल गयी होगी।

—और तभी तो, अभी देखा नहीं, कैसा फटकार दिया! कोई दरवाजे पर आये कुत्ते को भी इस तरह नहीं दुतकारता। काका-काकी ने तो जिनगी-भर उनकी खिदमत की है।

—आरे, ई जमींदार-रईस किसी के नहीं होते रे ! वखत पड़े पर तोते की तरह आँख चुरा लेते हैं।

—आरे, चुप रहऽ, बहिनी, चुप रहऽ। कपार बथे लागी।

—चुप कइसे रहसु ? माई के जीउआ गाई अइसन, पुतवा के जीउआ कसाई अइसन।

—ऐसी का बात है रे ? जो दुनिया-जहान के लिए जान हथेली पर लिये काम करता है, वह अपने माँ-बाप को ही दुख देगा ?

—अरे भाई, ई सब काम ही ऐसा है। भगत सिंह कैसे हँसते-हँसते फाँसी पर झूल गये !

—और चतुरी के लिए ई कोई नयी बात है। पहले भी तो कई बार सिव बाबू के साथ थाना-जेहल देख चुका है।

—तब की बात और थी, भइया। कंगरेसियों के लिए तो जेहल में ससुराल का मजा था। कितना मोटाके आते थे सिव बाबू जेहल से !

सिर लटकाये हुए बेंगा पहुँचा, तो चतुरी की माँ और भी धाड़ मार-मारकर रोती हुई बोली—मेरे बेटे को छोड़ा लाओ, जैसे भी हो, छोड़ा लाओ !

औरतें उसे समझाती रहीं।

मर्दों में राय-बात होने लगी, क्या करना चाहिए। पड़ोस का बनिया सरूप बोला—अब इस रात को थाने जाना ठीक नहीं।

—अरे सरूप भाई, तुम तो बाजार गये थे न। कैसे का हुआ, तुमने कुछ देखा ?

—देखने की कहते हो, हमारी दुकान के पास ही से तो सिपाही उसे पकड़कर ले गये।

—लेकिन हुआ का ?

—अब का बताऊँ। कुछ भी कहा होता चतुरी ने या उसके किसी साथी ने तो कोई बात होती। लेकिन वहाँ तो जैसे पहले ही से सब मामिला ठीक-ठाक करके रखा गया था। हमारी दुकान के पास ही एक किसान तरकारी लेकर बैठता है। आज-कल कोढ़ी के बारे में जो

धांधली चल रही है, वह तो तुम लोग जानते हो हो। एक जमींदार का आदमी गोजी लिये उसके सामने खड़ा हो बोला, निकालो कौड़ी! बेचारे ने भरी दौरी दिखाकर कहा, अभी तो बोहनी भी नहीं हुई, कौड़ी कहां से दें? अकड़कर जमींदार का आदमी बोला, यह-सब हम कुछ न सुनेंगे! कौड़ी निकालो नहीं तो दौरी उलट देंगे! और वह गोजी दौरी की ओर बढ़ाने लगा। बूढा दोनों हाथों से दौरी को छेंकता हुआ बोला, ऐसी कोई रहजनी नहीं आयी है। बस, इसी पर तो उसने बूढे को एक झापड़ जमा ही दिया। हम-सब उठकर बोले, यह का किया, ठाकुर? कि वह जोर-जोर से चिल्लाकर हम-सब को गाली देने लगा। इसपर चारों ओर शोर मच गया। भीड़ के साथ चतुरी वगैरा भी आ पहुँचे। अभी वह-सब पूछ ही रहे थे कि का हुआ कि वह गोजी चलाने लगा। और फिर आँख झपकते ही जिधर देखो, लाल पगड़ी! जाने किस बिल से सिपाही-ही-सिपाही चारों ओर से चूहों की तरह निकल आये और बिना कुछ पूछे-पाछे महाबीर, चतुरी और उनके छै साथियों को मारते-पीटते घसीट ले गये। बेचारों के अखबारों और झंडों को भी फाड डाला।

—हूँ! ई तो साफ कारसाजी मालूम होती है, जमींदारों और सिपाहियों की।

—जरूर दाल मे कुछ काला है।

—बात गम्हीर मालूम देती है। जाने उनके मन में का है।

—सरूप भाई, रमेसर भी पकड़ा गया का?

—रमेसर, कौन चौधरियो के टोलेवाला?

—हां-हां, वह भी उनके साथ था न?

—वह तो सायद...नहीं, वह नहीं था।

—तो सायद उससे कुछ पता लग सके। राय हो, तो चला जाय उसके पास।

—चलना चाहिए। जाने का होनेवाला है। चतुरी के सिर से हो

—आरे, ई जमींदार-रईस किसी के नहीं होते रे ! बखत पड़े पर तोते की तरह आँख चुरा लेते हैं ।

—आरे, चुप रहऽ, बहिनी, चुप रहऽ । कपार बथे लागो ।

—चुप कइसे रहसु ? माई के जीउआ गाई अइसन, पुतवा के जीउआ कसाई अइसन ।

—ऐसी का बात है रे ? जो दुनिया-जहान के लिए जान हथेली पर लिये काम करता है, वह अपने माँ-बाप को ही दुख देगा ?

—अरे भाई, ई सब काम ही ऐसा है । भगत सिंह कैसे हँसते-हँसते फाँसी पर झूल गये !

—और चतुरी के लिए ई कोई नयी बात है । पहले भी तो कई बार सिव बाबू के साथ थाना-जेहल देख चुका है ।

—तब की बात और थी, भइया । कंगरेसियों के लिए तो जेहल में ससुराल का मजा था । कितना मोटाके आते थे सिव बाबू जेहल से !

सिर लटकाये हुए बेंगा पहुँचा, तो चतुरी की माँ और भी धाड़े मार-मारकर रोती हुई बोली—मेरे बेटे को छोड़ा लाओ, जैसे भी हो, छोड़ा लाओ !

औरतें उसे समझाती रहीं ।

मर्दों मे राय-बात होने लगी, क्या करना चाहिए । पड़ोस का बनिया सरूप बोला—अब इस रात को थाने जाना ठीक नहीं ।

—अरे सरूप भाई, तुम तो बाजार गये थे न । कैसे का हुआ, तुमने कुछ देखा ?

—देखने की कहते हो, हमारी दुकान के पास ही से तो सिपाही उसे पकड़कर ले गये ।

—लेकिन हुआ का ?

—अब का बताऊँ । कुछ भी कहा होता चतुरी ने या उसके किसी साथी ने तो कोई बात होती । लेकिन वहाँ तो जैसे पहले ही से सब मामिला ठीक-ठाक करके रखा गया था । हमारी दुकान के पास ही एक बूढ़ा किसान तरकारी लेकर बैठता है । आज-कल कौड़ी के बारे में जो

भाँधली चल रही है, वह तो तुम लोग जानते ही हो। एक जमींदार का आदमी गोजी लिये उसके सामने खड़ा हो बोला, निकालो कौड़ी! बेचारे ने भरी दौरी दिखाकर कहा, अभी तो बोहनी भी नहीं हुई, कौड़ी कहाँ से दें? अकड़कर जमींदार का आदमी बोला, यह-सब हम कुछ न सुनेंगे! कौड़ी निकालो नहीं तो दौरी उलट देंगे! और वह गोजी दौरी की ओर बढ़ाने लगा। बूढ़ा दोनों हाथों से दौरी को छेंकता हुआ बोला, ऐसी कोई रहजनी नहीं आयी है। बस, इसी पर तो उसने बूढे को एक झापड़ जमा ही दिया। हम-सब उठकर बोले, यह का किया, ठाकुर? कि वह जोर-जोर से चिल्लाकर हम-सब को गाली देने लगा। इसपर चारों ओर शोर मच गया। भीड़ के साथ चतुरी वगैरा भी आ पहुँचे। अभी वह-सब पूछ ही रहे थे कि का हुआ कि वह गोजी चलाने लगा। और फिर आँख झपकते ही जिधर देखो, लाल पगड़ी! जाने किस बिल से सिपाही-ही-सिपाही चारो ओर से चूहों की तरह निकल आये और बिना कुछ पूछे-पाछे महावीर, चतुरी और उनके छे साथियों को मारते-पीटते घसीट ले गये। बेचारो के अखबारों और झंडों को भी फाड़ डाला।

—हूँ! ई तो साफ कारसाजी मालूम होती है, जमींदारों और सिपाहियों की।

—जरूर दाल में कुछ काला है।

—बात गम्भीर मालूम देती है। जाने उनके मन में का है।

—सरूप भाई, रमेसर भी पकड़ा गया का?

—रमेसर, कौन चौधरियो के टोलेवाला?

—हाँ-हाँ, वह भी उनके साथ था न?

—वह तो सायद...नहीं, वह नहीं था।

—तो सायद उससे कुछ पता लग सके। राय हो, तो चला जाय उसके पास।

—चलना चाहिए। जाने का होनेवाला है। चतुरी के सिर से ही

यह बात खतम होनेवाली नहीं मालूम देती।

—कौन-कौन जायगा ?

चार-पाँच जवान आगे आये।

—लाठी लेकर जाना। और लौटते ही खबर देना। खयका खाकर जाव तो अच्छा। जाने कितनी देर लगे।

बेंगा को धीरज बँधाकर सब अलग हो गये।

चतुरी की माँ सुसुक रही थी। रोते-रोते गला जवाब दे चुका था। लस्त हो चुकी थी। ठेहुनो पर सिर डाले, आँखें मूँद निर्जीव-सी पड़ी थी। हिचकी आती, तो पूरी देह काँप जाती।

बेंगा झोपड़ी में जा, टटोलकर ताक से तेल की कुप्पी ले पड़ोस से जला लाया और ओसारे के ताक पर रख दिया। पास ही मिट्टी की गगरी रखी थी। हिलाकर देखा, तो खाली थी। उठाकर कुएँ से पानी भर लाया। पीतल का लोटा साफ किया और उसमे पानी लेकर चतुरी की माँ के पास जाकर बोला—ले, हाथ-मुँह धो ले।

—रख दऽ,—वैसे ही बैठी चतुरी की माँ बोली।

—धो ले, जी हल्का हो जायगा,—उसका हाथ पकड़कर बेंगा बोला।

—तू रख दऽ,—हाथ छुड़ाती चतुरी की माँ बोली।

बेंगा ने तब वहीं बैठकर अपना हाथ-मुँह धोया और फिर लोटा भरकर उसके पास रखकर बोला—खाने-वाने को कुछ बनेगा ?

ठुनककर वह बोली—पेट में राकस समाया है, तो जा जमींदार के पास। काहे को यहाँ आ गये ? कोई मरे या जिये तुम से का मतलब ?

बेंगा के ओठ बिचक गये। बोला—तेरे ही लिए कह रहा हूँ। मुझे तो बिल्कुल भूख नहीं।

—तुम मेरी फिकिर न करो !

—अब तू मुझपर तो नाहक ही बिगड़ रही है न। मैंने भला का किया ? कितनी बार मैंने मना किया, लेकिन तेरे सामने मेरा बस चले, तब तो। सच कहूँ, तो तेरे लाड़ ने ही उसका मन इस तरह बढ़ा

दिया ।....

तभी पड़ोस के नगेसर की औरत आँचल के नीचे कुछ ढँके हुए आ गयी । खड़ी-खड़ी ही बोली—अरे, चाची अभी बैठी ही है !

बेंगा बोला—पानी लाकर कब से रखा है । यह किसी की सुनती है !

नगेसर की औरत आँचल के नीचे से छिपुली निकालकर, बैठकर बोली—उठो, चाची । जीव है तो जहान है । यह चने की लीटी नमक लगाके पकायी है । मुँह-हाथ धोकर खा लो । सोचा, अब इस हालत मे तुम रोटी का बनाओगी ।— और लोटा उसके हाथ में थमा दिया ।

चतुरी की माँ लोटा हाथ में लेकर बोली—का करूँ, बेटी, सबुर नहीं होता । जाने किस हालत में हो । एक ही तो बेटा है ।

—असमान मे चाँद-सूरज भी एक-एक ही है, चाची । चतुरी देवर से एक दिन तुम देखना, मैं कहती हूँ, हमारे गाँव में उजाला फैलेगा । तुम उसकी नाहक चिन्ता न करो । सिपाही-जेहल से वह घबराने वाला नही ।....तुम अब खाकर आराम करो । उन्हे चौके में बैठाकर आयी हूँ । रमेसर से मिलने जाना है न ।—और उठकर वह चली गयी ।

*

गाँव के पूरब ओर की इस बस्ती 'भटोलिया' (भरों की टोलिया) को दस-बारह बीघे खेत गाँव से अलग करते है । यहाँ करीब अस्सी भरो, पाँच बनियों और दो रंगवों के घर हैं । भर खेती और मर-मजदूरी करते हैं, बनिये दाल दलते हैं और कस्बे के बाजार में बेंचते हैं और रंगवे मिल का सूत बाज़ार से खरीद कर थान बुनते और बेंचते हैं । इन घरो में बनियों के घर कुछ अच्छे हैं । सुबह चार बजे से ही उनके घरो से चाकियों की आवाज़ आने लगती है । मर्द-औरत मिलकर चक्की चलाते हैं, धूप में पयार डालते हैं, खुद्दी-भूसी छानते हैं, फटकते-छोटते हैं, तब कहीं दिन-भर में एक बोरी दाल तैयार कर पाते

हैं। दाल ही का पेशा ये कई पुश्तों से करते आ रहे हैं। इनके जीवन में, रहन-सहन में आज तक कोई फ़र्क नहीं आया। ये अपने लड़कों को हिसाब-किताब रखने-लायक ज़रूर पढ़ाते हैं। रंगवों और भरों के घरों में कोई फ़र्क नहीं। एक-आध मिट्टी की कोठरी और एक ओसारे से ज्यादा नहीं। सुबह मर्द बाग मे ताना करने निकल जाते हैं। औरतें घर में बैठी चरखे पर नलियां भरती हैं। ओसारे में लगी मशीन पर मर्द दिन-भर ढकर-पेंच लगाये रहते हैं। चार दिन में कहीं जाकर ये मोटिये का एक थान तैयार कर पाते हैं। भर ज़मींदार से लगान पर खेत लेकर खेती करते हैं, ज़मींदार या महाजनों के यहाँ बेगारी और मज़दूरी करते हैं और कस्बे में मज़दूरी और बाजार में मोटिहाई करने जाते हैं। रोज़ कमाने-खाने की बात सब पर लागू है। जाति-बिरादरी सबकी अलग-अलग है, लेकिन सामाजिक जिन्दगी सबकी एक है। सब एक-दूसरे को दादा-दादी, काका-काकी, भैया-भौजी कहते हैं। एक-दूसरे के सुख-दुख में शामिल होते हैं। यहाँ औरत-मर्द में कोई फ़र्क नहीं, सभी काम करते हैं, सभी का कमाई में बराबर का हिस्सा रहता है। इसीलिए कभी किसी बात पर मर्द अगर औरत को डांटता है, तो कभी औरत भी मर्द को डांटती दिखायी पड़ जाती है। यहां घर में कोई किसी के तावे नहीं रहता। गिरस्ती की चक्की में रात-दिन जुटे रहना ही उनका काम होता है, इसी चक्की का ही उनका सम्बन्ध होता है, इसी चक्की के इर्द-गिर्द जीवन का संगीत फूटता है, मुर्दे-बवतें नर्म-गर्म साँसें लेती हैं, सुख-चैन मुस्कराते हैं, दुख-विपदा रोते हैं, लड़ाई-झगड़े तेवर दिखाते हैं। वे खुलकर जिस तरह हँसते है, उसी तरह खुलकर रोते भी हैं। कही कोई दुराव-छिपाव, शर्म-लिहाज नहीं। सब सब को जानते हैं। किसी का कोई ऐसा छेद नहीं, जो सबको न मालूम हो। एकाध छेद हो, तो ढँका या छिपाया जाय, यहां तो छेद-ही-छेद हैं। अक्सर बच्चों को या कोई साधारण बात को भी लेकर यहाँ झगड़े उठ खड़े होते हैं। उस वक्त पूरी बस्ती का उघटा-पुरान लीजिए। औरतों का कूद-कूदकर लड़ना, गला फाड़-फाड़ कर

चिल्लाना, हाथ मटकाना, आँखें नचाना, बित्ता-बित्ता-भर जीभ निकाल-कर चिढ़ाना, और कभी-कभी हाथापायी पर भी आ जाना यहाँ का एक साधारण दृश्य होता है। यह सब होता है, अक्सर होता है, लेकिन कोई बात है कि किसी के मन पर मैल आ जाय। दो घड़ी के बाद फिर एक, तालाब के पानी की तरह सब शान्त।

इनके घर, घर के सामने के चबूतरे हमेशा साफ़-सुथरे और लिपे-पुते होते हैं, लेकिन पास की गली को गन्दा करने, उसमें कूड़े-कचरे का ढेर लगाने में सब का बराबर का हिस्सा होता है, इन गलियों की सफ़ाई सिर्फ आंधियाँ करती हैं और बरसात का पानी ही उन्हें धोता है।

इस बस्ती से करीब बीस बीघे पर, गाँव के दक्खिन ओर चमारों, दुसाधों और बँसफोरों की बस्ती चमरवटिया है। दो छवरें इसे गाँव से जोड़ती है। ये छवरें काफ़ी नीची हैं। इनके दोनों किनारों पर घूरों की क़तारें चली गयी हैं और बीच में पड़ा कूड़ा-कचरा बराबर सड़ता रहता है और हमेशा बदबू का वह भभका उठता रहता है कि नाक नहीं दी जाती। आँधी और बारिश भी इन छवरों को साफ़ करने में असमर्थ रहती हैं, बल्कि बरसात-भर तो उनमें पानी भी जमा होकर सड़ता रहता है।

इधर चमरवटिया हर गाँव के दक्खिन ओर ही होती है। इधर दक्खिनी हवा नहीं के बराबर बहती है। इसी लिए समाज के अछूतों और उनकी बस्ती की गन्दी हवा से गाँव की ऊँची जातियों की रक्षा के लिए चमरवटिया हर गाँव में दक्खिन की ओर ही बसायी जाती है।

चमरवटिया के एक कोने में एक ताड़ीखाना है, जहाँ ताड़ों के पत्तों और घंसों की झोंपड़ी में पासी का कुटुम्ब रहता है। जरूरत पड़ने पर पासी ऊँची जाति वालों के घर खुद ही ताड़ी पहुँचा देता है, लेकिन नीच जाति वाले वहीं आकर ताड़ी पीते हैं। एक ग़रीब बनिये ने वहाँ एक चिखने की छोटी-सी दुकान खोल रखी है, जिसमें चने की कुछ चरपरी चीजें बिकती हैं। यहाँ शाम को रोज पीनेवालों में जरूर कोई-न-

कोई टंटा उठ खड़ा होता है। पैसा पास हो, तो चमरवटिया के सब औरत-मर्द ताड़ी पियें। लेकिन पासी से पूछा जाय, तो वह बतायगा कि दुकान चमरवटिया वालों से नहीं, गाँव के महाजनों के जवान लड़कों और उस राह जाने वाले राहगीरों से चलती है।

चमार और दुसाध अपने खानदानी पेशे, मरे जानवरों की खाल से चमरौधे जूते बनाने और सूअर पालने, के साथ जमींदार से लगान पर खेत लेकर थोड़ी-बहुत खेती भी करते हैं। चमारों की औरतें बच्चा जनाने और सौर कमाने का काम करती हैं। ब्राह्मणों की तरह गाँव के घरों की जजमानी इनमें भी बँटी हुई है। पुश्तों से यह जजमानी चली आ रही है। जिस चमार के हिस्से जो घर पड़ा है, उसका मरा जानवर उसे ही मिलता है और उस घर की सौर उसी चमार की औरत कमाती है। इस सेवा के बदले साल में एक बार उसे जौरा मिलता है। इस जौरे की कीमत पैसों में आँकी जाय, तो आठ आने से अधिक न होगी। तर-त्योहारों और शादी-ब्याह पर नेग भी मिलता है। बँसफोर बाँस की दौरी, बेना, झपोला आदि बनाकर गाँव में या बाजार में बेचते हैं और गदहे पालते हैं। इन गदहों पर वे किराये पर घूरों की खाद खेतों में पहुँचाते हैं। ये जमींदार और बड़े महाजनों की टट्टियाँ भी कमाते हैं। जरूरत पड़ने पर ये सब जमींदार के यहाँ बेगार भी करते हैं।

खास गाँव में क्षत्री, बनिये, कोइरी, तेली, ब्राह्मण और आठ-दस मुसलमानों के घर हैं। क्षत्री, कोइरी और मुसलमान खेती करते हैं। इनमें कुछ के पास अपनी काश्तकारी है, अधिकतर लगान पर ही खेत लेते हैं और इनकी हालत भी मरों की ही तरह है। बनिये और तेली दुकानदारी और लेन-देन का काम करते हैं। तीन घर ब्राह्मणों के हैं। ये सिर्फ़ जजमानी करते हैं। गाँव में बड़े सरकार की हवेली और शिवप्रसाद की कोठी दूर से ही नजर आती हैं, और ऐसी लगती हैं, जैसे मिट्टी की टूटी-फूटी सैकड़ों कब्रों के बीच दो पत्थर के ऊँचे स्मारक खड़े हों।

*

जेठ में किसानों के घर में कुछ अनाज होता है। एक-दो बजे दिन तक जोताई करने के बाद उन्हें फ़ुरसत मिल जाती है। इसीलिए हर टोले में शाम होते ही अखाड़े जाग उठते हैं। चमरवटिया का अखाड़ा अलग, भटोलिया का अखाड़ा अलग, और गाँव के तीन अखाड़े अलग। गाँव के सभी जवान किसान और लड़के अखाड़ों में पहुँच जाते हैं, और लंगोट कसकर कसरत करते हैं और कुश्ती लड़ते हैं। अखाड़ों में जोड़ छूटते हैं, तो गाँव के चारों ओर ताल ठोकने की आवाजें गूँजने लगती हैं। अखाड़ों पर टिमकी बजती है, और फर्रो (मर्दों का करताल के साथ नाच) और बिरहे की तानें लहराती है। बरसात शुरू होने तक, जब तक किसानों के घर में अनाज रहता है, और फ़ुरसत होती है, शाम के ये मनोरंजन, खेल-तमाशे चलते रहते हैं।

लेकिन आज शाम से ही सन्नाटा छाया हुआ था। अचानक का यह सन्नाटा बड़ा ही खौफ़नाक था, लगता था, जैसे किसी राक्षस ने अचानक गाँव का गला ही दबा दिया हो। न अखाड़ों का शोर, न तालों की आवाज, न टिमकी की टिम-टिम, न करतालों की झनकार, न बिरहों की तानें। एक दहशत की चादर ओढे जैसे सारा गाँव खामोश पड़ा हो।

चतुरी की माँ ने जो रूखा-सूखा, खाकर दो लोटा पानी पिया। बेंगा ने खटोली लाकर सहन में बिछाकर कहा—अब लेट रह।

चतुरी की माँ बिल्कुल लस्त हो गयी थी। वह लेट गयी। पास ही बेंगा बैठा रहा। बड़ी देर तक दोनों खामोश रहे, जाने क्या-क्या सोचते रहे।

नगेसर की औरत हुक्की लाकर बेंगा के हाथ में थमाती हुई बोली—खाया कुछ काकी ने ?

—हाँ। वह तुम्हारी छिपुली रखी है, लेती जाओ। नगेसर

—हाँ,—और वह छिपुली उठाकर चली गयी।

बेंगा ठेहुने पर नारियल रख, सिर झुकाकर, हुक्की पुड़पुड़ाने लगा। देर-देर तक वह छेद पर यों ही मुँह रखे रहता और फिर ऐसे पुड़ कर देता, जैसे रह-रहकर उसे होश आ जाता हो, कि उसके हाथ में हुक्की भी है।

बहुत देर के बाद हुक्की से मुँह हटाकर वह बोला—चतुरी की माई।

—का हऽ ?—धीमे से वह बोली।

हुक्की पर पुड़ करके उसने कहा—चतुरी की माई, सारी जिनगी बेकार चली गयी।—और उसने एक लम्बी साँस छोड़ दी।

वह कुछ न बोली।

—पेंगा ठीक कहता था,—वह डूबा-डूबा-सा बोलता गया—मगर मैंने उसकी बात न मानी।....मेरे ही सबब से पेंगा की जिनगी खराब हुई।....मेरी अपनी भी जिनगी खराब हुई।....और चतुरिया को भी मैं ही ले डूबा।....वह अब कभी मुझसे आँख मिलाकर बात नहीं करता। कभी पियार से काका नहीं कहता। हमेसा जैसे एक गुस्से, एक नफरत में भुनता रहता है।....

—ऐसे तो मैंने नहीं देखा,—चतुरी की माँ बोली।

—लेकिन मुझे तो ऐसा ही लगता है,—हुक्की में पुड़ करके सिर झुकाये ही बेंगा बोला—सायद मेरे दिल में ही एक चोर बस गया है।....मैं ही उससे आँख नहीं मिला पाता। जब-तब उसे डाँट देता हूँ, गाली बक देता हूँ।....फिर भी वह कुछ कहता नहीं, चतुरी की माई। आँखें झुकाकर सामने से हट जाता है और मुझे ही दोसी बनाकर छोड़ देता है।....मुझे लालसा ही रह गयी, चतुरी की माई, कि कभी वह भी मुझसे लड़ता-झगड़ता, जैसे एक जवान बेटा अपने बूढ़े बाप से लड़ता-झगड़ता है, कभी वह भी मुझे डाँटता-फटकारता कि यह जमींदार की गुलामी मैं किसलिए कर रहा हूँ, कभी वह भी मुझे समझाता-बुझाता कि मैं का करूँ, कैसे रहूँ ? आखिर वह पढ़ा-लिखा है, समझदार है। लोग उसकी समझ-बूझ की तारीफ करते हैं, तो मुझे

कितनी खुसी होती है। वह सारी दुनिया को समझाता फिरता है, मुझे कुछ काहे नहीं समझाता, चतुरी की माई, काहे ?—और उसकी आवाज भर्रा गयी।

—तुमसे वह डरता है, चतुरी के काका,—चतुरी की माँ बोली।

—मुझ-जैसे नालायक बूढ़े से डरता है वह ? तुम भी मुझसे मन-चरचा कर रही हो, चतुरी की माई ?—रोनी-सी आवाज में बेंगा बोला।

—मनचरचा नहीं करती। उसकी कही बात ही कह रही हूँ। सच चतुरी के काका, वह तुमसे बहुत डरता है। तुम उसके बाप हो न !

—जो जमींदारों, महाजनों और सिपाहियों को सरे आम गाली देता चलता है, मुझ बूढे बाप से डरता है ? मुझे नरक में न डालो, चतुरी की माई !

—तुम ही तो उसे डाँटते-फटकारते रहते हो।

—मुँह की ही बात तू देख रही है न। मेरे दिल की भी तू अगर कुछ जानती ! साम को चरकर जैसे गाय अपने बछड़े के लिए हुँकड़ती आती है न, उसी तरह मेरा दिल चौबीसों घण्टा हुँकड़ता रहता है। कभी तो जी में आता है, चतुरी की माई, कि उसे पकड़कर कलेजे से लगा लूँ और गाय की तरह ही उसे चूमूँ, चाटूँ....लेकिन हिम्मत नहीं पड़ती, चतुरी की माई, मुझे डर लगता है।

—काहे ?

कई बार बेंगा ने हुक्की से पुड़-पुड़ की। फिर जैसे तड़पकर बोला—मैं उसका बाप होने लायक नहीं, चतुरी की माई !—और जोर-जोर से वह हुक्की पुड़पुड़ाने लगा, जैसे उसे लगा हो कि यह कैसी बात उसके मुँह से निकल गयी।

फिर बड़ी देर तक खामोशी छायी रही। बीच-बीच में कभी हुक्की पुड़ से बज उठती।

—इस गुलामी ने मुझे बाप भी न रहने दिया, चतुरी की माई,—आखिर बेंगा बोलने पर मजबूर हुआ—मुझे हर छन ऐसा ही लगता है कि मैं चतुरी का बाप नहीं।....ओह, इस गुलामी के सबब से मुझे

जमींदार का कैसा-कैसा काम नहीं करना पड़ता ! चतुरी की माई, मेरा दोनों लोक नसा गया।....चतुरिया को जब मालूम होगा कि उसका बाप जमींदार के लिए....नहीं, चतुरी की माई, मेरा मर जाना अच्छा.... लेकिन अब अब....चतुरी की माई, मैं अपने बेटे का बाप नहीं, दुश्मन हूँ....जो कुछ भी उसे पियारा है, उस सबका मैं दुसमन हूँ।...मेरा मर जाना ही....

—ई सब का बकने लगे ? . जरा जाकर देखो, रमेसर के यहाँ से अभी कोई लौटा कि नहीं।

—तू नहीं समझेगी, चतुरी की माई, नहीं समझेगी !—और उसने हुक्की से चिलम उतार उलट दी और उसी पर हुक्की टिकाकर उठने ही वाला था कि पीछे एक गोजी धरती पर धप से बज उठी। इस गोजी की आवाज़ बेंगा पहचानता था। वह सहमकर पलटा।

सौदागर कह रहा था—चल, बड़े सरकार ने बुलाया है।

—चतुरी की माई की तबीयत खराब है, पहलवान। मैं सुबह....

—मैं कुछ नहीं जानता, चलकर जो कहना है, बड़े सरकार से कह ! मैं तो बड़े सरकार के हुकुम का बन्दा हूँ।—और उसने गोजी के सिर पर अपनी ठुड्डी टिका दी !

—चतुरी की माई,—बेंगा बोला।

लेकिन चतुरी की माँ ने करवट बदल ली।

—*पहलवान, तुम चाहो, तो....—गिड़गिड़ाकर बेंगा बोला।*

—मैंने कहा न, मैं बड़े सरकार के हुकुम का बन्दा हूँ !

बेंगा उठकर बोला—अच्छा, चलो।—और उसने आगे बढ़कर नगेसर की औरत को पुकारकर कहा—जरा खियाल रखना। सरकार ने बुला भेजा है।

—ऐसा भी का, काका,—लेकिन तभी सौदागर को देखकर नगेसर की औरत बोली—अच्छा, जाव।

उस वक्त बेंगा वैसे ही सौदागर के पीछे-पीछे जा रहा था, जैसे किसी बैल को कसाई खींचता ले जाता है।

*

सुबह ने अभी आँखें भी न खोली थीं कि गाँव की गलियों में बूटों की आवाज़ें गूंज उठीं। आँखें खुलीं, तो रात की आशंका सामने थी।

बेंगा रात-भर सोया न था। सुबह थाने जाने की बात थी। लेकिन इस वक्त तो सबको अपनी-अपनी पड़ी थी। कोई साथ जानेवाला न मिला। दो घड़ी की छुट्टी लेकर बेंगा अकेले चल पड़ा। चतुरी की माँ ने उसकी अंगौछी मे थोड़ा चबेना और एक पिड़िया गुड़ बाँध दिया और ताकीद कर दी कि चतुरी को वह अपने सामने खिला दे। जाने उसके लाल को रात कुछ खाने को मिला या नहीं।

थाने के करीब बाग़ के पास बेंगा पहुँचा, तो उसे पुलीसवालों ने रोक दिया। बूढ़ों को आगे जाने की मनाही थी। वहाँ बेंगा की ही तरह सैकड़ों बूढे-बुढ़ियाँ खड़े थे। बात होने पर मालूम हुआ कि वे सब एक ही विपत्ति के मारे थे। सबके लड़कों को सिपाही पकड़ लाये थे। सब उदास थे और उनकी मलिन आँखें बाग़ में अपने लालों को ढूंढ रही थीं। बेगा का माथा ठनका कि कहीं चतुरी को भी तो भरती के लिए उन्होंने नहीं पकड़ा है?

बाग़ में तीन रावटियाँ पड़ी थीं। चारों ओर लाल और नीली पगड़ियाँ दिखायी पड़ रही थी। पुलीसवाले चारों ओर से भेड़ों की तरह घेरे हुए जवानों को लाते थे, उन्हे कतार में खड़ा करते थे और नाम-पता लिखकर ट्रक में भर देते थे। ट्रक बाग़ के बाहर आती, तो उसके अन्दर से झाँकती हुई डरी आँखें दिखायी पड़तीं और काका, चाचा, माई, भैया के करुण चीत्कार सुनायी पड़ते। कई बूढ़े-बूढ़ियाँ ट्रक के पीछे नाम ले-लेकर चीखते हुए दौड़ पड़ते, लेकिन ट्रक उनकी आंखो में धूल झोंककर आगे निकल जाती।

मेले में खोये हुए बच्चे की तरह मन-ही-मन बिलबिलाता हुआ बेंगा बाग़ के बाहर चक्कर लगाता हुआ अन्दर; अपने चतुरी को वैसे ही ढूंढ रहा था, जैसे बच्चा अपने माँ-बाप को। जो भी जान-पहचान का मिल जाता, उसी से पूछता—चतुरी कहीं दिखाई पड़ा?—चतुरी को

पहचाननेवाली वहाँ सैकड़ों आँखें थी। जब किसी ने भी हाँ में जवाब न दिया, तो उसे पूरा शक हो गया कि चतुरी को भी ट्रक में भरकर कहीं भेज दिया गया।

जिधर से रावटियाँ बिल्कुल नजदीक पड़ती थीं, बेंगा खिसकता-खिसकता उधर ही जाकर खड़ा हो देखने लगा। उसे अचानक नीली पगड़ी बाँधे अपने गाँव का चौकीदार नजर आ गया। बेंगा खड़ा-खड़ा इन्तजार करने लगा कि वह आये, तो उससे पूछे। उसे तो सब मालूम होगा।

रावटी के पास ही तीन कड़ाइयाँ चढ़ी हुई थीं और दन-दन पूड़ियाँ उतर रही थीं। और थोड़ी ही दूरी पर खड़ी भीड़ में चग की थाप पर ऊँची आवाज में कस्बे का मशहूर गवैया गा रहा था—

बन जा रे रंगरूट
याँ तू पहने फटी लीथड़ी
वाँ पहनेगा बूट
याँ तू पहने फटे चीथड़े
वाँ पहनेगा सूट
बन जा रे रंगरूट....

बड़ी देर के बाद एक बार चौकीदार से बेंगा की आँखें मिलीं, तो उसने इशारा करके बुलाया। चौकीदार इधर-उधर से कतराता, आँखें बचाता, बड़ी देर में बेंगा के पास आया और चलता हुआ ही, बिना बेंगा को कुछ पूछने का मौका दिये, बता गया कि चतुरी वगैरा का तो रात ही जिले को चालान हो गया।

मुंदरी का माथा चतुरी के बारे में सुनकर रात से ही गरम था। वैसी कोई बात होती है, तो उसे दुख कम और गुस्सा ज्यादा आता है, उसकी आँखों से आँसू नहीं झरते, लुत्तियाँ छिटकती हैं। यह कमजोर आदमियों के अन्धे गुस्से या पुआल की तरह भक से जलकर राख हो जानेवाला नहीं होता, खुद का खून जलानेवाला, दौरे की तरह बेकाबू और बेबस करनेवाला नहीं होता। यह गुस्सा उस आग की तरह होता है, जो भूसे के ढेर में अन्दर-ही-अन्दर बिना धुआँ दिये जलती रहती है, जिसे उटकेरने से ही पता चलता है कि कितनी आग जाने कब से बनी पड़ी है। मुंदरी के दिल और दिमाग को उटकेरनेवाली कोई बात हो जाती, तभी पता चलता कि उसके अन्दर कितनी आग ढँकी हुई पड़ी थी। अन्दर-ही-अन्दर हमेशा जलती रहनेवाली इस आग को हवा उस नफ़रत से मिलती थी, जो मुंदरी के अन्दर शुरू से ही पैदा हुई थी और जो उसकी उम्र के साथ-साथ ही गर्भ के बच्चे की तरह उसका खून पीकर पली थी, बढ़ी थी।

ऐसे अवसरों पर, वह खामोश हो अपने कमरे में जा बैठती और रेल की पटरियों की तरह सीधे उसका दिमाग अपने जीवन के छोड़े हुए स्टेशनों की तरफ चल पड़ता। वह एक-एक स्टेशन पर रुकती, वहाँ के अपने क़याम के बारे में सोचती और एक-एक बात वैसे ही याद करती, जैसे कोई लड़का अपने सबक दुहराया करता है। वह एक सबक भी भूलना न चाहती थी। ये सबक़ ही उसकी नफरत की जान थे, उसके गुस्से की ताक़त थे। और यह नफरत, यह गुस्सा ही उसकी जिन्दगी थे, जैसे माँ के लिये उसका बच्चा होता है। यह नफ़रत, यह गुस्सा न होते, तो मुंदरी मुंदरी न होती।

मुंदरी को अच्छी तरह याद था कि होश सँभालने के बाद वह

कितनी बार रोयी थी। पहली बार ताल्लुकेदार का थप्पड़ खाकर, दूसरी बार अपनी माँ से बिछुड़कर और तीसरी बार........

*

बड़े सरकार के यहाँ आने के करीब चार महीने बाद की बात है। एक दिन सुबह एक हाथ में जलपान की तश्तरी और दूसरे में दूध का गिलास लिये मुँदरी दीवानखाने पहुँची, तो रोज की जगह बड़े सरकार को न देख, दरवाजे पर सिर झुकाये, अनमने-से खड़े बेंगा से पूछा—बडे सरकार कहाँ हैं ?

सिर झुकाये ही बेंगा का शरीर काँप-सा गया। उसके मुँह से कोई लकार न निकली।

मुँदरी ने आँखें मलकाकर कहा—बोलते काहे नहीं ? उनके लिए जलपान लायी हूँ।

बेंगा ने काँपते हुए स्वर से कहा—अ-अन-दर हैं। तुम्हे वहीं...

—अन्दर तो नहीं हैं,—मुँदरी ने कहा।

बेंगा की जीभ ऐंठ-सी रही थी। बड़े सरकार ने उससे जो कहने को कहा था, जहाँ उसे पहुँचा देने को कहा था, उससे कहते या करते न बन रहा था। और मुँदरी को आज तक यह न मालूम था कि जिस दीवानखाने से वह परिचित है, उसके अन्दर भी एक दुनिया बसी है। एक दिन मुँदरी को उस दुनिया से परिचित कराने का काम बेंगा को ही करना पडेगा, उसे कहाँ मालूम था ? इस वक्त बेंगा की हालत 'भई गति साँप छुँछूदर केरी' वाली हो रही थी। वह मन-ही-मन मना रहा था कि मुँदरी बिना उससे कुछ पूछे ही वापस चली जाय, तो कितना अच्छा हो।

लेकिन भोली मुँदरी यह-सब क्या जाने ? वह फिर बोल पड़ी—का हुआ है तुम्हे ? बताते काहे नाहीं ?

बेंगा के काँपते पाँव उठे, तो उसकी कौन-सी रग चिटख गयी, किसी को क्या मालूम ? आँख मूँदे-सा ही उसने बढ़कर काँपते हाथ से आलमारी की तरह दिखायी देनेवाले दरवाजे को खोल दिया।

मुंदरी ने झांककर कहा—अरे, इसके अन्दर भी कोठी है ! मुझे तो मालूम ही न था !

लेकिन तब तक बेंगा उसकी बात सुनने के लिए वहां खड़ा न था।

चकित हिरनी की तरह मुंदरी ने पांव बढ़ाया। संगमरमर के चिकने फर्श पर उसके पांव थमे। सामने खूब बड़ा हरी-हरी दूबों का आंगन था। आगन के चारों ओर ओसारो से लगकर चौड़ी-चौड़ी फूलों की क्यारियों की कतारें थीं। रंग-बिरंग के खूबसूरत फूल सूरज की पहली किरणों को मुंह उठाकर चूम रहे थे। आंगन के बीच मे एक गोल सगमरमर का चबूतरा था। उसके चारों ओर भी पतली-पतली फूलों की क्यारियां थी। उसी चबूतरे मे चारों ओर ओसारों तक लाल-लाल, पतली-पतली रविशें गयी थी, जिनके दोनो ओर फूलों के गमले सजे थे। ओसारों के किनारे-किनारे फूलों की क्यारियों के गोट बनाते-से गमलों की कतार थी। आंगन से ओसारों पर चढ़ने की चारो सीढ़ियों पर भी दोनों ओर गमले रखे हुए थे। आंगन के पच्छिम और उत्तर के कोने में हवेली के हाते की ही तरह का एक हाथ-पानी-कल लगा हुआ था। दीवानखाने की ओर सिर्फ़ ओसारा था, लेकिन बाक़ी तीन ओर कमरे थे। दीवारों पर बराबर-बराबर दूरी पर लटकी हुई छोटी-बड़ी हरी-हरी चिकें बता रही थी कि उनके पीछे दरवाजे और खिड़कियां हैं।

मुंदरी को ताज्जुब हो रहा था कि ऐसी खूबसूरत जगह पर भी ऐसा सन्नाटा क्यो छाया हुआ है ? एक चिड़िया भी यहां कहीं इस सुहाने वक्त क्यों नही बोलती है ? वह सोचने लगी, दो महीने यहां आने को हुए, मुझे तो इस जगह का पता ही नही था, यहां इतने सारे कमरे हैं, मैं किस कमरे में बड़े सरकार को ढूंढूं ?

उसने एक बार इधर-उधर देखा। फिर हल्के कदमो से ज़रा सहमी-सहमी बायीं तरफ़ के बरामदे की ओर बढी। न चाहते हुए भी उसकी पायलें झुन-झुन बज उठीं। तभी आवाज आयी—मुंदरी ! इधर-इधर !

मुंदरी ने आंखें उठाकर देखा। पच्छिम के बीच की एक बड़ी चिक

उठी थी और उसके पीछे बड़े सरकार हाथ उठाये खड़े थे। मुँदरी उधर ही तेज़ी से चढ़ी।

बड़े सरकार एक बड़ी किश्तीनुमा आरामकुर्सी पर टाँग लटकाये जरा झूलते-झूलते-से बैठे मुस्कराये जा रहे थे। उनके सामने की छोटी मेज पर जलपान की तश्तरी और दूध का गिलास रखकर, जरा हटकर खड़ी हो, मुस्कराती हुई सोने की नन्हीं-नन्हीं घंटियों के-से स्वर में मुँदरी बोली—यह जगह तो मैंने देखी ही न थी!—और उसने एक उड़ती-सी नजर चारों ओर डाली। कमरा बहुत बड़ा था और खूब सजा हुआ था।

—यह जगह देखना सबको नसीब नहीं होता, मुँदरी,—मानीखेज नजरों से उसकी ओर देखते हुए बड़े सरकार ने कहा।

—काहे?—फैली हुई आँखों से अपने दायीं ओर जरा दूर एक झालरदार चाँदनी के नीचे पड़े हुए बड़े पलंग की ओर, जिसपर रेशमी चादर पड़ी थी और कितने ही गोल, चौकोर, लम्बे मखमली तकिये सजाकर रखे हुए थे, देखते हुए मुँदरी ने कहा।

—मेरा यह पलंग तुझे कुछ नहीं बता रहा है?—भेद-भरी मुस्कराहट के साथ बड़े सरकार बोले।

मुँदरी का सिर 'ना' में हिलने ही वाला था कि उसकी निगाहें छत के नीचे दीवारों पर कतार में टँगी बड़ी-बड़ी तस्वीरों पर जा पड़ीं और सिर बीच में ही झुक गया। वह नंगी तस्वीरें देखकर उसका मन घिन से भर गया और दिमाग़ में इस जगह की असलियत उभर आयी। वह अपने पर काबू पा धीमे से हँस पड़ी। लगा, जैसे चाँदी की लटकी एक मोटी जंजीर पर किसी ने एक हल्की चोट की हो।

—तो समझ में आ गया? यह मेरा ऐशगाह है। यहाँ उसी की रसाई होती है, जिसे मैं उस पलंग की जीनत बनाना चाहता हूँ। आज तुझे दिखा देना जरूरी हो गया। करीब एक महीना हुआ, पुजारी ने तेरे बारे में एक बात बतायी थी। उस वक्त तो मैं टाल गया। सोचा, तू तो घर की है, जल्दी क्या है। लेकिन रानीजी ने रात तेरे बारे में जो

बात कही, उसे सुनकर अब देर करना ठीक नहीं लगा। तूने उनसे कुछ कहने के लिए कहा था ?—आँखें उठाकर बड़े सरकार बोले।

—जी,—सिर झुकाकर मुंदरी बोली।

—यह क्या पागलपन सूझी है तुझे ? मेरे रहते तेरी नज़र उस पर उठी ही कैसे ?

—मैं अपनी अवकात समझती हूँ, बड़े सरकार।

—तू कुछ नहीं समझती ! तू मेरी ससुराल की तोहफ़ा है। इसके पहले कि तुझ पर किसी की आँखें उठें, उन आँखों को मैं फोड़वा दूँगा ! तेरी जगह यह है, मेरे नौकर-चाकरों की झोंपड़ी नहीं। ऐसी बात फिर कभी ज़बान पर न लाना, वर्ना किसी को भी गोली से उड़ाते मुझे ज़रा भी देर नहीं लगती। ..तुझे ही देखकर तो ज़रा सब्र होता है, वर्ना तेरी उन सुखण्डी रानीजी में क्या रखा है। हड्डी न चिचोड़ना, उनके पास सोना। क्यों री, यह बेहोशी की बीमारी उन्हें वहाँ भी होती थी ?

धक-धक करते कलेजे पर काबू पा किसी तरह मुंदरी बोली—जी, नहीं।

—यह मैं नहीं मान सकता ! मुझे धोखा दिया गया है ! ठीक बता !

—ठीक ही कह रही हूँ, बड़े सरकार। वहाँ तो वह बिल्कुल ही अच्छी थीं। यहाँ आते ही उन पर इस तरह का दौरा पड़ने लगा। जान बख्सें, तो एक बात कहूँ ?

—कह।

—मैं तो जानूं कि सरकार ही ने कुछ कर दिया है,—कहकर मुंदरी ने होंठ काटा।

बड़े सरकार हँस पड़े। बोले—आज जाकर तूने मजे की एक बात की है। तेरे रिश्ते की मैं कदर करता हूँ। आखिर तू मेरी साली ही तो लगेगी। लेकिन तुझे तो सब मालूम है। सच कहता हूँ, जैसे ही मैं तेरी रानीजी की ओर हाथ बढ़ाता हूँ, जाने उन्हें क्या हो जाता है कि वह

कांपने लगती हैं और दूसरे ही छन उनके दांत लग जाते हैं, बदन बर्फ़ की तरह ठण्डा हो जाता है। तू तो सब जानती ही है। मैं तो भर पाया।...अब वे सारे अरमान मैं तुझसे ही पूरा करूँगा।....उधर वे बकसे देख रही है न। उनमें तरह-तरह की पोशाकें रखी हैं, दिन को तू लौंडी भले ही रहे, रात को तो मैं तुझे रानी बनाकर ही छोड़ूंगा। भगवान् ने तुझे सूरत भी क्या दी है! सच कहता हूँ, तू ज़रा अच्छे कपड़े पहनकर, बन-ठनकर रहे, तो तेरी रानीजी भी तेरे सामने पानी भरें।—कहकर बड़े सरकार उठकर मुंदरी ओर बढ़े, तो मुंदरी भय से कांप उठी। ऐसा भय उसने जीवन में पहले कभी भी अनुभव न किया था। उसका शरीर सीधा खड़ा था, पर उसके अन्दर मौत की सनसनाहट दौड़ रही थी। ऐसे मौके उसके जीवन में पहले भी कई बार आये थे, और उन्हें उसने जैसे मुँह से फूंक मारकर उड़ा दिया था! लेकिन आज...आज उसे लगा कि एक भयंकर राक्षस अपने खूंख़ार पंजे उसकी ओर बढ़ाये आ रहा है और उन पंजों को मोड़ने की ताक़त उसमें नहीं है। मुंदरी की आँखें कांपकर मुंद गयीं। बड़े सरकार की ऊँगलियां उसके हाथ पर पड़ीं, कि तभी जाने कैसी बिजली कौंधी कि मुंदरी ज़ोर से ठहाका लगा उठी। लगा, जैसे किसी मदमस्त हथिनी ने ज़ोर लगाकर अपने पाँवों में बँधी हुई लोहे की मोटी-मोटी कई जंजीरों को एक झटके मे तोड़ दिया हो।

बड़े सरकार ने सहमकर अपना हाथ ऐसे हटा लिया, जैसे वह बिच्छू के डंक पर पड़ गया हो। आँखें झपकाते हुए वह बोले—तू इस तरह क्यों हँसती है?

सँभलकर मुंदरी बोली—मेरा यह सुभाव हो गया है।....आप जल-पान कर लीजिए। रानी माँ और रानीजी की पूजा को देर हो रही है।

बड़े सरकार ने एक बार आँखें उठाकर उसकी अंगारों की तरह लाल आँखों और अलावों की तरह गालों की ओर देखा और चुपचाप बैठकर तर हलुए में चम्मच घुसेड़ दिया।

थोड़ी देर तक ख़ामोशी छायी रही। लेकिन वह ख़ामोशी भी जैसे

दो जबानों मे कहीं ज्यादा बोल रही थी। उसे बड़े सरकार भी कई कानों से सुन रहे थे और मुंदरी भी।

बडे सरकार ने जब दूध का गिलास उठाया, तो मुंदरी ने सिर झुकाकर कहा—जान बखसें, तो एक बात और कहूँ ?

बड़े सरकार ने होंठों से गिलास लगाये हुए ही कहा—कह।

—मैं तो सरकार की जिनगी-भर की लौंडी हूँ ही। सरकार के हुकुम के बाहर कैसे जा सकती हूँ ?—मुंदरी ने एक बार पलकें उठाकर बड़े सरकार को देखा, फिर झुकाकर आगे कहा—पेगा से सादी हो जाने के बाद भी तो मैं आपकी ही रहूँगी। आप उससे मेरी सादी करा दीजिए ! बड़ी मेहरबानी होगी !

जादू का असर सहसा टूट गया। बड़े सरकार ने रोब में आकर कहा—दूसरे के मारे शिकार पर शेर मुँह नहीं मारता !

—सेर के लिए सिकारों की का कमी है ? वह तो राजा होता है। एक सिकार छोड़ भी दे, तो....

—कहीं राजा की तबीयत उसी पर आ जाय, तो ?—हँसकर बड़े सरकार बोले—चल, बरतन उठा।

मुंदरी झुककर बरतन उठाने लगी, तो बड़े सरकार ने धीमे से कहा—आज रात को मै हवेली में नहीं सोऊँगा। तुझे भी मेरे साथ यहीं सोना होगा।

बरतन उठाकर, मुँह सुखाकर मुंदरी बोली—अभी नहीं, सरकार से बड़ा डर लगता है।

—काहे ?—खुश होकर बड़े सरकार बोले।

—सरकार के छूते ही रानीजी जो बेहोस हो जाती हैं। उन्हें सँभालने तो मैं आ जाती हूँ। यहाँ मुझे सँभालने कौन आयगा ? मैं अभी कितनी छोटी हूँ !

बड़े सरकार विजयी की तरह हँस पड़े। दाँतों में होंठ लिये मुंदरी छम-छम करती दरवाजे के बाहर हो गयी।

*

मुंदरी सब काम बदस्तूर किये जा रही थी, लेकिन उसके दिमाग़ में एक तूफ़ान चल रहा था। मां की वह कही हुई बातें आज उसके कानों में गूंज रही थी—देख-सुनकर किसी भी जवान से जरूर बियाह कर लेना। बेटी, यह बात हमेसा याद रखना कि लौंडी से एक बेसवा की जिनगी कहीं अच्छी होती है...मैं वही तो करने जा रही हूँ। यह खुस-नसीबी ही तो है कि मेरे मन-लायक एक जवान मिल गया है। माई ने ही तो कहा था कि कुंवरि से कहकर मैं जिससे मन चाहे बियाह कर लूं। लेकिन रानीजी से कहकर मैं कैसी गलती कर बैठी ! ओफ़ ! नाहक मैंने रानीजी से यह बात कही। क्यों न खुद ही कोई तरकीब निकाली ? अब तो बात बिल्कुल बिगड़ गयी। यह जालिम हरगिज नहीं मानेगा। अब का होगा ? मैं भी का अपनी माई की ही तरह....नहीं,. नहीं ! अभी बखत है। मैं अब भी कुछ कर सकती हूँ, अब मुझे ही सब करना होगा। किसी से भी किसी मदद की उम्मीद रखना बेकार है। मांद में घिरकर खूंख़ार भेड़िये से हमदर्दी की उम्मीद करने से बढ़कर पागलपन और का हो सकता है !

मुंदरी को आज रानीजी पर भी बड़ा गुस्सा आया। वह काहे सुख-ण्डी हो गयी ? काहे नहीं तन्दुरुस्त रहकर उसने बड़े सरकार का मन मोह लिया ? बड़ा सरकार उस पर लट्टू हो जाता, तो उसकी नज़र काहे को मुझ पर उठती ? या फिर वह रानीजी की बात ही काहे टालता ? तब तो वह तुरन्त मेरा बियाह करा देता।

भोली मुंदरी ! उसे क्या मालूम कि भेड़िया मुहब्बत करने के लिए शिकार को अपनी मांद में नहीं लाता, भूख मिटाने के लिए लाता है, और यह भूख उसे रोज़ लगती है, और उसे रोज़ एक नया शिकार चाहिए।

*

मुंदरी फूल तोड़कर फूलडाली भर चुकी, तो हाथ में झाड़ू लिये मन्दिर के ओसारे में खड़े पेंगा के पास आयी। पेंगा ने रोज़ की तरह मुस्कराकर मुंदरी की ओर देखा, लेकिन मुंदरी आज कोशिश करके भी

मुस्करा न सकी। वह आँखें झुकाये हुए पाँवों को देख रही थी और अँगूठों से पास वाली उँगलियों को रगड़ रही थी।

मुँह लटकाकर पेंगा बोला—आज तेरा मुखड़ा कुम्हलाया लगता है। कोई बात हुई का ?

—हाँ,—वैसे ही आँख नीचे किये मुँदरी बोली—आज रात को बगीचे में मैं आऊँगी। तुम से बहुत जरूरी बातें करनी हैं। इन्तिजार करना।—कहकर वह जाने के लिए मुड़ गयी।

—सुनो तो,—शंकित होकर आँखें झपकाता हुआ पेंगा बोला—अभी कुछ नहीं बता सकती ? मेरा मन धक-धक कर रहा है।...मेरी ओर से कोई अड़चन नहीं है। मैंने भैया से पूछ लिया है। तुमने रानो-जी से कहा था ?

—हाँ, उसी के बारे में तो बताना है। रात को मेरा इन्तिजार करना। पूजा को देर हो रही है।—और वह चल पड़ी।

पेंगा देखता रहा। पायलों के घुंघरू में आज जैसे जंग लग गया हो। कोई कह सकता है कि यह मुँदरी जा रही है। पेंगा चिन्तित हो उठा। ऐसी का बात हो गयी ? कोई गम्भीर बात ही मालूम होती है। नहीं तो इस तरह उदास होने वाली मुँदरी नहीं। आज पहली ही बार तो वह उदास दिखायी दी है। हमेसा हँसते रहने वाले मुखड़े को भला कोई मामूली पीडा उदास कर सकती है ?....और आज, कैसी अजीब बात है ! रात में वह मुझसे मिलने बगीचे में आयगी ! आज तक कभी भी तो वह बगीचे में नहीं आयी है और...अभी उसी दिन की तो बात है, जरा-सा मैंने हाथ बढ़ाया, तो किस तरह छिटक कर दूर जा खड़ी हुई और वोली—हैं-हैं ! यह का करते हो ? देवता के सामने ही एक कुँवारी लड़की को हाथ लगाते डर नहीं लगता ?—और कैसे आँख नचाती हुई और गुनगुनाती हुई भाग खड़ी हुई—एक दिन होइबे तोहार, बलमु, तनि धीरज धरऽ...लेकिन वह बगीचे में आयगी कैसे ? मन्दिर के सहन में रात को कितने लोग सोते हैं और वह पुजारी...वह तो खार खाये हुए बैठा ही है। कहीं कुछ...

—अरे, तू ऐसे क्यों खड़ा है ? अभी तक बुहारी भी नहीं हुई ?

पेंगा सुनकर चौंक उठा। सामने खड़े पुजारी को देखकर कहा—हुई जाती है। बस सीढ़ी ही बाकी है।—और ज़ोर-ज़ोर से वह झाड़ू चलाने लगा।

टोकरी में बुहारी और सूखे हुए फूल-पत्ते भरकर पेंगा बग़ीचे में चला गया और दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लिया, तो पुजारी ने डोल का पानी पाँवों पर उँडेल कर, सीढ़ी पर रखी हुई खड़ाऊँ पहनी और खट-खट करते मन्दिर में जा, शिवलिंग के ऊपर लटके घंटे का लोढ़ा पकड़ कर ज़ोर-ज़ोर से बजाने लगे।

जिस तरह साइरेन की आवाज़ सुनकर लोग भाग-भाग कर छिप जाते हैं, उसी तरह मन्दिर के इस घंटे की आवाज़ सुनकर नौकर-चाकर भाग-भाग कर फाटक से बाहर हो जाते हैं। चौकीदार यह देखकर कि मैदान ख़ाली हो गया है, पुराने बड़े फाटक को ठेलकर बाहर से बन्द कर लेता है। तब आगे-आगे मुँदरी दोनों हाथों में पूजा का सामान लिये और उसके पीछे-पीछे रानी माँ और रानीजी हवेली से निकलकर धीरे-धीरे चलकर मन्दिर में प्रवेश करती हैं।

पुजारी ओसारे में बैठकर रानी माँ के इच्छानुसार पाठ करते रहते हैं और रानी माँ और रानीजी घूम-घूमकर सभी देवी-देवताओं पर मुँदरी के हाथों से फल-फूल, दूध-अक्षत ले-लेकर चढाती हैं। आख़ीर में जब पूजा समाप्त कर वे ओसारे में आती हैं, तो पुजारी उठकर पहले रानी माँ को, फिर रानीजी को और मुँदरी को चरणामृत आचमनी से पाँच-पाँच बार निकालकर देते हैं। रानी माँ और रानीजी चरणामृत को होंठों से छूकर माथे से लगाती हैं। मुँदरी भी पहले वैसा ही करती थी, लेकिन जिस दिन उसे पुजारी के पुजारीपन की असलियत मालूम हो गयी, उस दिन से उसे पुजारी के साथ-साथ उसके हाथ से मिले चरणामृत से भी नफ़रत हो गयी। इसलिए वह दिखाने को चरणामृत ले तो लेती थी, मगर उसे पीती न थी, वह उसे आँख बचाकर फेंक देती थी। पुजारी देखकर भी अनदेखा कर जाते थे। उन्हें मुँदरी से आँख मिलाने की

ना कोई आवरण अभी तक उन्हें न मिला
फिर कभी हिम्मत न हुई । ते या मुंदरी की आँखें ढँक देते ।
था, जिससे वह अपना नंगाप वैसा न किया । आज उसने पुजारी को
लेकिन आज मुंदरी ने भक्ति से चरणामृत पान किया और माथे
जान-बूझकर दिखाकर, बड़ी बचे-खुचे पूजा के सामानों से स्वयं पूजा
से भी लगाया । आज उसने नती भी देवी-देवताओं से की । आज सच-
भी की ओर जाने क्या-क्या वि गो । आज वह बड़ी ही धर्म-भीरु हो गयी
मुच वह बहुत ही बदली-सी ल के प्रताप से सचमुच ही उसकी मनोकामना
थी । कौन जाने, देवी-देवताओं
पूरी हो जाय । और रानीजी पुजारी के पाँव छू चुकीं,
चलने के पहले रानी माँ ो आज मुंदरी ने भी उनके पाँव छुए ।
और वह आशीर्वाद दे चुके, त आज सूरज पश्चिम में कैसे उग गया !
पुजारी को आश्चर्य हुआ कि र्दन शर्म से झुक गयी । वह किस मुँह से
लेकिन दूसरे ही क्षण उनकी ग पाठ पर जा बैठे ।
उसे आशीर्वाद देते ? वह झट ो को आशीर्वाद नहीं दिये ? आज कितने
—पुजारीजी, आपने मुंदर छुए, जाने इसके मन में क्या आया ।
दिनों बाद तो इसने आपके पाँव
-- रानी माँ ने कहा । ठुड्डी छिपी मुस्कराहट से जरा चौड़ी हो
घूँघट के नीचे रानीजी की
गयी । मुंदरी ने मुँह घुमा लिया प्रयास के बाद कहा—रानी माँ को जो
पुजारी ने सूखे गले से बड़े प्रजा के लिए शामिल नहीं ? रानी
आशीर्वाद मैंने दिये, उनमें क्या सुख बँधे हैं ।—और वह फिर पाठ पर
माँ के मुख से ही तो सब के सु
झुक गये । बढ़ गयीं । मुंदरी लपककर उनके आगे
रानी माँ मुस्कराकर आगे
हो गयी । पड़ी थी । क्या करे, क्या न करे ? वह
मुंदरी आज गहरे सोच में कहा था, सब ठीक-ठीक हो जायगा ।
सो सोच रही थी कि जैसा माँ ने किस्मत का फ़ैसला उसकी क़िस्मत का
उसे क्या मालूम था कि उसकी

—वाह, चौबीसो घटे तो मैं उसके साथ रहती हूँ ! तू देखकर भी न देखे, तो इसमें मेरा का दोस ?

महराजिन का व्यंग मुंदरी अब कुछ-कुछ समझ गयी। फिर भी बोली—जरा मुझे भी तो दिखा !

—आओ,—कहकर महराजिन ने चौके के अन्दर जाकर चूल्हे की ओर हाथ उठाकर कहा—यह रहा मेरा दूल्हा !—कहकर वह हँस पड़ी। फिर दूसरे ही क्षण जाने उसे क्या हुआ कि बड़े-बड़े लोर टपकाती वह बोली—बहिन, इतने दिन तुझे आये हो गये, फिर भी यहाँ का रंग-ढंग तूने नहीं जाना ?...जब मैं सतरह साल की थी, एक दिन मेरा गरीब बाप मुझे यहाँ छोड़ गया। बड़े सरकार को रसोई में मदद करने के लिए एक की जरूरत थी। उस समय एक अधेड़ औरत चौके का काम सँभाल रही थी। दो साल हुए, वह गंगा नहान गयी और फिर नहीं लौटी। बडे सरकार ने मेरे गरीब बाप से कहा था कि वह मेरा बियाह अपने खरचे से करा देंगे। लेकिन, बहिन, वह सब तो कहने की बात थी। एक रात बड़े सरकार ने मुझे दीवानखाने में बुलाया और जबरन मुझे नास दिया। मैं का करती ? उस दिन मेरे मुँह से भी अपने माँ-बाप के लिए वही बातें निकली थीं, जो आज तेरे मुँह से मैंने सुनी हैं। लेकिन, बहिन, इसमें उनका का दोस था। दोस तो उस गरीबी का था, जिसके कारन वह मुझे यहाँ छोड़ने पर मजबूर हुए थे। दो साल के बाद बहुत दौड़-धूप करके मेरे लिए एक बर खोजकर मेरा बाप बड़े सरकार को बताने आया। लेकिन उस समय मेरे पेट में बच्चा था। बड़े सरकार ने कुछ रुपया देकर मेरे बाप से मुझे खरीद लिया। तब से यही चूल्हा है और मैं हूँ।

—और तेरा बच्चा ?

—मेरा बच्चा ! यहाँ सब ऐस के दोस्त हैं, बच्चे के नहीं। मुझे दारू और दवाइयाँ पिला-खिलाकर मेरा गरभ गिरा दिया गया।

—फिर ?

—फिर का ? एक कहानी खतम हो गयी, एक जिनगी खतम हो

गयी। पुराने सामान की तरह मुझे कबाड़खाने में फेंक दिया गया। अब करूँ, तो खाऊँ, नहीं तो अपना रास्ता देखूँ, वह रास्ता, जिसके आगे-पीछे, बायें-दायें ऊँची-ऊँची, काली-काली दीवारें खड़ी हैं, किसी भी तरफ बढ़ूँ तो सिर टकराकर जान दे देने के सिवा कोई चारा नहीं। यहाँ जितनी औरतों को तू देख रही है....बहिन, सच बताना, तू भी दीवानखाना देख आयी का? आज इस तरह तुझे उदास देखकर, मुझे उस दिन की अपनी उदासी याद आ गयी।—कहकर वह आँचल से लोर पोंछने लगी।

मुँदरी के रोंगटे खड़े हो गये। वह हाथों से तश्तरियाँ उठाती हुई बोली—हाँ, बहिन, देख तो आयी आज, लेकिन अभी वह नौबत नहीं आयी। वैसा कुछ हुआ होता, तो अपना काला मुँह दिखाने के लिए तेरे सामने खड़ी न रहती।

महराजिन विवशता की हँसी हँसकर बोली—ऐसा ही मैंने भी सोचा था, बहिन। सायद सभी ऐसा ही सोचती हों। लेकिन जब मुँह काला हो जाता है,....अच्छा, एक बात और बतायगी?

—जलपान दे आऊँ,—मुँदरी अब उसकी एक बात भी न सुनना चाहती थी, जैसे उसकी हर बात से उसे डर लग रहा हो। वह जाने लगी।

उसके सामने आकर खड़ी हो महराजिन बोली—सच बताना, पेंगा से का सच ही तुम्हारी राह-रसम है?

मुँदरी चीख-सी पड़ी—तुझे कैसे मालूम?

महराजिन सर्वज्ञ की तरह हँसकर बोली—बड़े घरों में ऐसी कोई बात छिपी नहीं रहती, बहिन। पुजारी ने एक दिन मुझसे तेरे और पेंगा के बारे में बताया था।

—पुजारी?—आँखें फैलाकर मुँदरी बोली।

—हाँ, पुजारी से इधर मेरी भी राह-रसम हो गयी है। यहाँ हमारी हालत सीढ़ियों से गिरने की तरह है, ऊपर की सीढ़ी से नीचे की सीढ़ी तक, सीढ़ी-दर-सीढ़ी। सबसे ऊपर बड़े सरकार और सबसे नीचे नौकर-

बड़े सरकार से कह दी थी।....तेरा ब्याह मैं करा दूँगी, मुंदरी।

—खाक करा देंगी!—अब जाकर तुनककर मुंदरी बोली।

—क्यों, ऐसा क्यों कहती है? इसमें भला क्या अड़चन हो सकती है? तू किसी बड़े बाप की बेटी नहीं कि तुझे खान्दान की इज्जत के नाम पर कुरबान होना पड़े। तू तो लौंडी है, चाहे तू जिससे शादी करे, इसमें भला किसी को क्या दिलचस्पी या उज्र हो सकता है?'

—हो सकता है कह रही हैं? आप रानीजी हैं, लौंडी का हाल क्या जानें? नाक चढाकर मुंदरी बोली—आप जलपान कीजिए, देर हो रही है। कहीं खराई-वराई न हो जाय।

—तू उसकी फिक्र न कर, रोज तो मेरा खाना-पीना तू देख ही रही है। इस देह से मुझे अब कोई मामता न रही। एक बार रंजन से मिलने-भर के लिए जी रही हूँ। उसके बाद मरना ही तो बाकी रह जायगा। मुंदरी, रंजन आयगा न?—आँखों में लालसा भरकर रानीजी बोलीं।

—मैं का जानूँ? मेरी मोहब्बत तो खुद ही आज जल रही है। मुझे आज किसी बात का होस नहीं है, रानीजी!—निढाल होकर मुंदरी बोली।

—ऐसा क्यों कह रही है? मैंने कहा न, मैं तेरा ब्याह जरूर करा दूँगी। तू चिन्ता मत कर।

—आप कुछ नहीं समझती, रानीजी!—सिर हिलाकर भरे दिल से मुंदरी ने कहा—आज मैं किसी बाप की बेटी होती, और वह अपनी इज्जत के लिए मुझे कुरबान कर देता, तो भी मुझे उतना दुख न होता, जितना आज अपने इस लौंडीपन पर होता है। मैं गुलाम हूँ, रानीजी, और एक गुलाम को तो उसका मालिक अपने मजे के लिए एक बकरे की तरह हलाल कर देता है। अब मेरे भी हलाल होने का समय आ गया है। छुरी पजायी जा रही है!—कहकर मुंदरी ने आँखें फेर लीं।

रानीजी सन्नाटे में आ गयीं। वह आवेश में आकर बोलीं—

नहीं, ऐसा मैं नहीं होने दूंगी ! तू मेरी लौंडी है, तेरी मालकिन मैं हूं ! मेरे रहते तुझे कोई हाथ भी नहीं लगा सकता ! मैं तेरा ब्याह कराके रहूंगी ! मैं जानती हूं कि मोहब्बत की पीर क्या होती है। नहीं, नहीं, मुंदरी, किसी और का तेरे ऊपर कोई हक़ नहीं ! तू मेरी है, मैं तेरी मालिकिन हूं और तेरे बारे में जो मैं चाहूंगी, वही होगा...

—लेकिन आपका भी तो कोई मालिक है !—विवशता-भरी आंखों से जैसे दूर कुछ देखती हुई मुंदरी बोली।

आवेश में कुछ न समझकर रानीजी बोलीं—क्या मतलब ?

—मालिक का अपनी दासी की लौंडी पर भी वही हक पहुंचता है। सब चीजों के साथ ससुराल की मैं भी एक तोहफ़ा हूं, अभी यह बड़े सरकार के मुंह से सुन चुकी हूं। आप बहुत भोली हैं, रानीजी। आप कुछ नहीं समझतीं। यहां आपकी हालत जो है, मैं समझ चुकी हूं। आप कुछ भी अपने मन का न कर सकती हैं, न करा सकती हैं। मुझे माफ कर दें। आप बड़े सरकार से अब कुछ भी मेरे बारे मे न कहें, नहीं तो बात और भी बिगड़ जायगी। मुझे तो यह बात आपसे भी कहने का अफसोस हो रहा है। आप मेरी चिन्ता न करें। मैं उतनी भोली नहीं। मैं खुद अब कोई राह निकालूंगी। आप चुप ही रहें।....लाइए, रंजन बाबू की चिट्ठी तैयार हो, तो डाकखाने भेजवा दूं। और आप जलपान कर लीजिए।

निर्जीव-से हाथों से रानीजी ने तकिये के नीचे से लिफ़ाफ़ा निकाल-कर मुंदरी के हाथ में थमा दिया।

*

मुंदरी दिन-भर व्याकुल रही। यह सही है कि वह शिकार के कम्पे की जद में आ गयी थी, लेकिन यह भी सही है कि उसने उस कम्पे को देख लिया था। अब यह उसपर मुनहसर था कि चट उड़कर जान बचा ले, या ज़रा भी देर करके फंस जाय और हमेशा के लिए पंख नुचवा ले। मुंदरी किसी भी हालत में फंसना न चाहती थी, वह बचना चाहती थी और बचने के लिए पर तौल रही थी और अपने डैनों में

धाकत भर रही थी। वह अपनी माँ की बातें सुन चुकी थी, महराजिन की कहानी सुन चुकी थी। वह उनकी जिन्दगी हरगिज-हरगिज जीना न चाहती थी। और उस जिन्दगी से बचने की हर मुमकिन कोशिश कर गुजरना चाहती थी।

उसने कई बार उदासी की चादर उतार फेंकी, कई बार पहले ही की तरह मुस्कराने और हँसने की कोशिश की; लेकिन मन था कि गहरे सोच में डूब-डूब जाता। इसी सोच के डर से वह एक छन को भी अपने कमरे में न बैठी। वह बदस्तूर काम करती रही, बल्कि दूसरों के कामों में हाथ भी बँटाती रही, उनसे बात करती रही, हँसी-दिल्लगी करती रही, जैसे न कोई बात ही हुई हो, न होनेवाली हो।

शाम हुई और ज्यों-ज्यों रात बीतती गयी, उसके दिल की धड़कन बढ़ती गयी। और जब अपने को सँभालना मुश्किल हो गया, तो वह रानीजी के पास सिर-दर्द का बहाना करके जा बैठी।

रानीजी ने जनकिया और जलेसरी को बुलाकर बताया कि मुँदरी का सिर दर्द कर रहा है, आज उसका भी काम तुम्हीं लोगों को करना पड़ेगा।

वक्त पर बड़े सरकार को अपने कमरे की ओर जाते देखकर मुँदरी की जान में जान आयी। बड़ी बला तो टल गयी।

रानीजी ने कहा — आज मैं यहीं सोऊँगी। तू भी यहीं सो रहना।

—नहीं, रानीजी,—घबराकर मुँदरी बोली—मेरा सिर तो अब ठीक होता लग रहा है। आप मेहरबानी करके बड़े सरकार के पास ही सोयें। नहीं तो वह सोचेंगे कि मालिकिन और लौंडी की तबीयत एक ही साथ खराब हुई, का बात है?

—*मैं तो तंग आ गयी हूँ*, मुँदरी। रोज-रोज की यह साँसत नहीं सही जाती। इससे तो अच्छा है कि मैं मर ही जाऊँ।

—ऐसा नहीं कहते। मुझे पक्का बिसवास है, एक दिन रंजन बाबू जरूर आयेंगे।....मैं आपकी थाली ला दूँ।—कहकर वह उठने लगी।

—नहीं, तू बैठ, जनकिया ला रही होगी। तू भी आज यहीं खा ले

न !—रानीजी ने स्नेह से कहा।

—नहीं, मेरा जी बिल्कुल नहीं करता,—मुँह बिगाड़कर मुँदरी बोली।

—तो मुझे कौन भूख लगती है ?

जनकिया ने थाली ला तिपाई पर रख दी। मुँदरी चिलमची लाकर हाथ धोने के लिए पानी गिराने लगी।

हाथ धोते हुए रानीजी ने पूछा—महराजिन रानी माँ को भोजन करा चुकी ?

—हाँ।

—बड़े सरकार की थाली अभी नही गयी ?

—जलेसरी लेकर आ रही है।

—बादल घिरे हैं क्या ?

—हाँ। रात-बिरात बरसेगा।

तभी जलेसरी थाली लिये जाती हुई दिखायी दी।

बड़े सरकार ने उसे देखते ही पूछा—मुँदरी क्या कर रही है कि....

—उसका सिर पिरा रहा है, बड़े सरकार,—तिपाई पर थाली रखती हुई जलेसरी बोली—कभी-कभी हमारे हाथ का लाया खा लेने में कोई हर्ज है, बड़े सरकार ?—और वह होंठ दबाकर मुस्करायी।

—नहीं, नहीं। तुम लोग तो घराऊँ कपड़े की तरह हो। घराऊँ कपड़े ही तो वक्त-बेवक्त काम आते हैं।—कहकर बड़े सरकार भी मुस्कराये।

—अरे, अब हमें कौन पूछता है ? नइयों के आगे हमारी का कदर है ?—हाथ धुलाती हुई मटककर जलेसरी बोली।

—कहाँ है वह ?—सरकार अपनी बात पर आये।

—रानीजी के पास बैठी है और कहाँ जायेगी ? दोनों हर घड़ी तो सटकर खुसुर-पुसुर किया करती हैं।—लापरवाही से जलेसरी ने कहा।

—मैके के कुत्ते-बिल्ली भी प्यारे होते हैं। सच ही उसके सिर में दर्द है या....

—यह तो आप ही जाकर पूछें !

—तुम-सब किस मर्ज की दवा हो ? उसे अब तैयार करो।—कौर उठाते हुए बड़े सरकार बोले।

—रानीजी से डर लगता है। वह उसे बहुत मानती हैं।

—तो क्या हुआ ? उनसे डरने की कोई जरूरत नहीं। यहाँ मेरी हुकूमत चलती है कि उनकी ?...मुँदरी पर तुम लोग जरा नजर रखो। अब वह पाँव निकालने लगी है। कहीं बेहाथ हुई, तो शामत तुम्हीं लोगों की आयगी।

*

पहर पर ठहरा। नौकर-चाकरों के खाते-पीते बेरात हो जाती है।

अपने कमरे में चिराग गुल कर खटोले पर चुपचाप पड़ी मुँदरी सबके सो जाने का इन्तजार कर रही थी। बड़ी मुश्किल और बेकली से एक-एक छन कट रहा था। और सबके ऊपर इस बात की दहशत थी कि जाने क्या हो। उसे हर हालत में हर बात के लिए तैयार रहना था। अब वक्त आ गया था, कि वह दिन-भर के मन में उठे विचारों, योजनाओं, चालों और सम्भावनाओं को समेटे और एक रास्ता तय कर ले, जिस पर चलने में कम-से-कम खतरा हो और ज्यादा-से-ज्यादा कामयाबी की उम्मीद हो। वह एक-एक बात को निकिया-निकियाकर जाँच रही थी।

बूँदा-बाँदी शुरू हो गयी थी। सामने का आँगन भीगकर और भी काला दिखायी दे रहा था। सब नौकरानियाँ अपने-अपने कमरे में चली गयी थीं। यह भी अच्छा ही हुआ। बूँदा-बाँदी पर मुँदरी मन-ही-मन खुश हुई।

धीरे-धीरे सन्नाटा छा गया। बस, हल्की-हल्की बूँदों की टिपिर-टिपिर आवाज आ रही थी। मुँदरी का मन अब रास्ते की जाँच करने लगा, आँगन, गलियारा, हवेली का ओसारा, दालान....लेकिन दालान की बगल में ओसारे में सोयी पड़ी वह बुढ़िया—यह रानी माँ वहीं चौबीसों घटे काहे पड़ी रहती है ? कभी देखो तो चौकी पर बैठी माला जपती

रहती है और कभी पलंग पर लेटकर जाने का-का सोचती रहती है। ऊपर-नीचे इतने सारे कमरे हैं, वह किसी कमरे में काहे नहीं रहती? खामखाह के लिए रास्ता घेरे पड़ी रहती है, जैसे चौबीसों घंटे चौकीदारी करती रहती हो। और यह कैसी अजीब आदत है उसकी, जरा भी किसी के आने-जाने की आहट मिली कि झट टोक देती है, कौन? जाने रात में भी उसे नींद आती है या नहीं? वह इतनी चुप और उदास काहे रहती है? सायद जिनगी से उदास हो जाने पर आदमी का यही हाल होता है, इस दुनिया की सारी दिलचस्पी खतम हो जाती है, उसे बस आकबत की चिन्ता रह जाती है, वह पूजा-पाठ में लवलीन हो जाता है कि दुनिया में जो हुआ, सो तो हुआ, अब आकबत तो बन जाय, सरग तो मिल जाय। दालान के पास अड्डा जमाने के पीछे भी सायद यही भेद हो कि अब हमें हवेली से का मतलब, हवेली का सारा मोह, ममता छोड़कर हवेली से बिदा लेकर अब हम दालान में आ बैठे हैं और अब हमें हवेली के भीतर की जिनगी से कोई मतलब नहीं, अब हमें दालान के बाहर की जिनगी की फिकिर है, जहाँ मौत के बाद हमें चले जाना है।....रानी माँ सायद इसी चिन्ता में रात-दिन घुलती रहती है। उसे इस हालत में देखकर कितनी दया उमड़ पड़ती है!...एक दिन वह इस हवेली की रानी होगी, इसकी हुकूमत चलती होगी। और आज? आज जैसे अपनी जगह उसने समझ ली है। फिर भी, इस हालत में भी वह कितनी भली, सुन्दर और दयालु लगती है! सफेद साड़ी और सफेद झूले में उसकी गोरी पतली, लम्बी देह कैसी देवी की तरह खबसूरत लगती है कि उसके सामने सरधा से आप सिर झुक जाता है। उसकी पतली-पतली कलाइयों में मोटे-मोटे सोने के कंगन कितने ढीले हो गये है! फिर भी वह उन्हें पहने रहती है, जैसे वही अब उसके रानी रहने की सनद रह गये हों।....अरे, वह सब मैं का सोचने लगी? हाँ, कहीं वह मुझे टोक दे, तो? तो....तो देखा जायगा, वह बहुत भली है। फिर बाहर का दरवाजा बहुत धीरे-धीरे खोलना होगा। फिर सहन पार करके...सहन में तो

कोई न होगा न ? इस बूंदा-बांदी मे ? पेंगा दीवानखाने के ओसारे में थककर गहरी नींद सो गया होगा। मन्दिर का दरवाजा तो खुला ही रहता है। इस बूंदा-बांदी में कोई आंगन में न होगा। सब मन्दिर के ओसारे में सो रहे होंगे। और वह पुजारी, वह बड़ा हरामी है, दाल न गली, तो बड़े सरकार से लाई लगा दी और महराजिन से....और मैंने आज उसके पांव छुए....छिः ! का सोचता होगा ? सोचता होगा कि अब चढ़ी रन पर, खुसामद करने आयी है; माफी मांग रही है। बड़ा खुस होगा पापी। जाय जहन्नम में....हां, महराजिन को देखते जाना होगा, कहीं आज रात वह भी न गयी हो....फिर, फिर बगीचे का दरवाजा, वहां पेंगा खड़ा होगा।

सब ओर से सुचित होकर मुंदरी धीरे से उठी। फिर भी उसकी पायलें छुम्म से बज उठी। वह पायलें खोलने लगी। उन्हें खोलते वक्त उसे वैसे ही दुख हो रहा था, जैसे कोई अपने सगे को अलग कर रहा हो। उसकी हंसी के साथ-साथ उसकी ये पायलें भी उसकी साथिन और रक्षक थीं। इन पायलों के रहते वह कभी भी अपने को अकेली महसूस न करती थी, जब भी उसे अकेलापन महसूस होता, ये पायलें छुम्म-से बोलकर कहतीं, हम जो हैं तुम्हारे साथ। और जहां कहीं भी वह जाती, वह उसके साथ रहतीं, मुंदरी की ही तरह वे भी मशहूर हो गयी थीं। उनकी आवाजें सुनकर ही लोग समझ जाते थे कि मुंदरी आ रही है। और जब उसे अकेली पा कोई छेड़ता, तो विरोध की पहली आवाज ये पायलें ही उठाती थीं। और इनके छुम-छनन से भी लोग वैसे ही घबराते, जैसे उसकी हंसी से। उसकी हंसी की ही तरह ये पायलें भी सातों पर्दों के स्वर निकाल सकती थीं। रानीजी की ससुराल आते समय कुछ गहनों के साथ ये पायलें भी उसे मिली थीं।

पायलों को उतार कर मुंदरी ने आंचल में लपेटा और कमर में अच्छी तरह खोंस लिया। एक बार फिर उसने आहट ली। और धीरे से उठकर दरवाजे से एक-दो बार झांक कर सहन में निकल आयी। महराजिन के कमरे का दरवाजा भिड़ा हुआ था और किवाड़ों की दरार

से रोशनी झांक रही थी। वह बिल्ली के कदमों से उधर बढ़ गयी। साँस रोक कर, झांक कर देखा, तो महराजिन चोटी गूँथ रही थी। मुंदरी का कलेजा धक-से कर गया। अब ? लेकिन ज्यादा सोचने-समझने का वक्त न था। पाँव उठ चुके थे। पैंगा उसका इन्तिजार कर रहा होगा। अब इतना डर भी किस काम का ? ठठेरे-ठठेर बदलई नहीं होती। और कुछ हुआ भी, तो देखा जायगा। ओखली में सिर दिया, तो मूसलों का क्या डर ?

वह गलियारा पार करके, ओसारे-ओसारे दालान में पहुँच आहट लेने लगी कि रानी माँ जग तो नहीं रही। कि तभी आवाज आयी —कौन ?

मुंदरी चौंक कर पीछे हटी, लेकिन दूसरे क्षण सँभल कर उनके पास जाती धीमे से बोली—मैं मुंदरी हूँ। पाँव दबा दूँ ?

रानी माँ ने कहरते हुए, राम-राम का उच्चारण करते हुए कहा—आज तू ऊपर नहीं गयी ?

—आज मेरी छुट्टी है, रानी माँ,—पैताने बैठकर उनके पाँवों पर हाथ रखकर मुंदरी साँसों की आवाज में बोली—सोचा, आपके पाँव दाब दूँ। जरा पैर तो सीधा कीजिए।

पाँव फैलाकर रानी माँ जम्हुआई लेकर बोली—आदत बड़ी बुरी चीज है, मुंदरी। जब तक कोई पाँव न दबाये, आँख ही नहीं लगती। घर में इतनी सारी नौकरानियाँ हैं, लेकिन मेरी चिन्ता अब किसी को नहीं रहती।

—मुझे तो फुरसत ही नहीं मिलती, रानी माँ,—पाँव दबाती मुंदरी बोली।

—अब किसी को मेरा डर नहीं रहा। मेरे जमाने की जितनी लौंडियाँ थीं, जाने कहाँ सब मर-बिला गयीं। राजा साहब के साथ ही मेरी हुकूमत भी चली गयी। एक बहू भी आयी, तो रात-दिन बीमार ही पड़ी रहती है। उससे जरा कहना, मुंदरी, लौंडियों को डांट दे। बेटे से इसलिए नहीं कहती कि कहीं वह किसी को मार न

कहकर आह्-उह् करते उन्होंने करवट बदली।

मुंदरी ने जान-बूझकर साँस खींच ली। रानी माँ भी सोने की कोशिश करने लगी।

मुंदरी के हाथ पाँव दबा रहे थे और उसकी आँख गलियारे की ओर लगी थी। उसे डर था कि कहीं महराजिन उससे पहले ही न चली जाये और पुजारी मन्दिर का दरवाजा अन्दर से बन्द न कर ले।

थोड़ी ही देर में रानी माँ खर्राटे लेने लगीं। तब मुंदरी धीरे से उतरी। गलियारे की ओर एक बार फिर देखकर वह दालान में घुस गयी और किल्ले को धीरे-धीरे सरकाकर, दरवाजा खोलकर, बाहर आ गयी। तब अचानक ही उसे ख्याल आ गया कि क्यों न वह बाहर से दरवाजे की सिकड़ी चढ़ा दे। पेट में एक धुकधुकी क्यों रखे? उसने चौखट पर चढ़कर, उचककर ऊपर की सिकड़ी चढ़ा दी।

बाहर काला अँधेरा छाया हुआ था। जमीन चिपिर-चिपिर कर रही थी। फिर भी मुंदरी के पाँव इस तरह आगे बढ़ रहे थे, जैसे कोई पहाड़ी धारा छोटे-बड़े पत्थर के टुकड़ो और ढोंकों पर होकर या उन्हें ढकेलकर राह बनाती है।

मन्दिर का दरवाजा खुला हुआ था। मुंदरी ने झाँककर अन्दर देखा। फिर फुफुती को बायें हाथ से उठाकर, साँस रोककर, मन्दिर के ओसारे में हनुमान की मूर्ति की बगल में ताक पर जलते दीप की ओर देखती हुई बगीचे के दरवाजे की ओर बढ़ गयी।

पेंगा ने दरवाजा बन्द करते हुए सूखे गले से साँसों की ही आवाज में कहा—मुझे तो बड़ा डर लग रहा है। पुजारी अभी थोड़ी देर पहले तक ओसारे में टहल रहा था।

—उसे भी किसी का इन्तिजार है।....यहाँ और तो कोई नहीं है?

—नहीं, सब मंदिर के ओसारे में सोने चले गये हैं। यहाँ बहुत मच्छर लगते हैं। इधर आओ।

कोठार के दरवाजे पर ही पत्तों की चटाई पेंगा ने बिछा रखी थी। उसी पर बैठने को कहकर वह बोला—जल्दी बतलाओ, का बात है?

आज दिन-भर मेरा मन धुकुर-पुकुर करता रहा है।—और उसी के पास वह बैठ गया।

मुँदरी सिर झुकाकर सब बातें बता गयी।

थोड़ी देर के लिए दोनों सिर झुकाये खामोश बैठे रहे और चिन्ता-भरी साँसें लेते रहे।

आखिर मुँदरी ने सिर उठा, उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—बोलो, अब का होगा ?

सिर झुकाये ही पेंगा ने कहा—का बोलें, हम तो समझते थे कि तेरी रानीजी....

—मैं भी यही समझती थी। लेकिन अब किसी से कोई उम्मीद नहीं। अब हमें ही कुछ करना होगा।

—का किया जाय, तू ने कुछ सोचा है ? मेरी तो अकिल कुछ काम नहीं करती।

—आज किसी तरह कन्नी काटकर मैं बच गयी। लेकिन वह छोड़ेगा नहीं। हमें जल्दी, बलुक आज ही, अभी ही कुछ तै कर लेना है।

—का बताऊँ। भाग चलने के लिए तुझसे कहने की तो मेरी हिम्मत नहीं। उस दिन पुजारी....

—लेकिन अब उसके सिवा कोई चारा नहीं है। मैं तो तैयार होकर आयी हूँ।

—ओह ! तो तुमने सुबह ही काहे नहीं बताया ? मैं भी तैयार रहता।

—तुम्हारे तैयार होने की का बात है ? मेरे पास कुछ गहने हैं।

—लेकिन भागेंगे किधर से ?

—खेतवाला दरवाजा तो है।

उसे तो चौकीदार रात को बाहर से बन्द कर देता है। मालूम होता, तो उससे चाभी माँग लेता।...दीवार बहुत ऊँची

उसके ऊपर सटा-सटाकर भाले गड़े हुए हैं। जरा भी लग जाय, तो हाथ साफ़।

—मुझे का मालूम था कि खेतवाला दरवाजा भी बन्द हो जाता है। अब का करें?

—अब कल पर छोड़ो। मैं इन्तिजाम कर रखूँगा। एक ही दिन की तो बात है।

—लेकिन मुझे तो एक छन पर भी बिसवास नहीं है। जाने....

—अब ऐसे घबराने से काम न चलेगा।

—मुझे बड़ा डर लगता है। कहीं उसने पकड़ लिया, तो? तुम नहीं जानते वह कैसा है। वह तो आज ही....

—एक दिन और बचा लो। तुम बहुत होसियार हो....

—नहीं, नहीं, नहीं! मुझे बड़ा डर लगता है। आखिर औरत हूँ।

—तो फिर का किया जाय? तूने ही तो मुझे पहले नहीं बताया।

—चौकीदार फाटक नहीं खोल देगा?

—अरे, बाप रे! यह का कहती है? वह फाटक खोलेगा? उसकी बन्दूक की घोड़ी रात-भर चढ़ी रहती है। चाभी तो मैं बहाना करके माँगूँगा। कोई बैल बाहर खेत में छोड़ दूँगा। जब वह ताला बन्द करने आयगा, तो बैल की बात बताके चाभी उससे माँग लूँगा और कह दूँगा, बैल पकड़कर ताला बन्द करके चाभी दे दूँगा। अक्सर हम लोग ऐसा करते हैं। अब आज तू जा।—कहकर वह उठने लगा।

उसका हाथ पकड़कर बैठाती हुई मुँदरी बोली—कल पर मुझे भरोसा नहीं। मेरा मन कह रहा है, जाने का हो।

—तो फिर का करें? तू ही बता न!

थोड़ी देर तक मुँदरी खामोश रही। फिर अचानक उसका हाथ जोर से पकड़कर बोली—हम अभी बियाह करेंगे।

—अभी? का कहती है?

—हाँ!—और दूसरे क्षण मुँदरी ने उसे अपनी बाँहों में पागल तरह जकड़कर, किचकिचाकर अपने होंठ उसके होंठों पर दबाकर

कहा—जाने कल का हो। अब एक छन भी इन्तिजार में नहीं कर सकती। यह अरमान मन में लिये अब मैं न जी सकती हूं, न मर सकती हूं!

और वे एक-दूसरे की मजबूत बांहों में वैसे ही बंध गये, जैसे ब्याह के समय गठबंधन की गाँठ।

*

दूसरे दिन सचमुच वही हुआ, जिसका मुंदरी को डर था।

पेंगा की आंख रात एक छन को भी न लगी, वह इतना खुश था कि लगता था, जैसे सुहानी सुबह के आसमान में उड़ रहा हो। उसे अपने में एक ऐसी ताकत का अहसास हो रहा था, कि पहाड़ को भी मुट्ठी में पकड़कर मसल दे।

वह पड़ा-पड़ा मुस्कराता रहा, जाने क्या-क्या सोचता रहा और अहसास करता रहा। कभी-कभी उसे लगता था कि वह इतना पी गया है कि होश ही न रहे। और कभी-कभी उसे ऐसा लगता, जैसे आज पहली बार उसने अपने को जाना है, अपनी ताकतों को पहचाना है, अपनी आंखें खोली हैं। और कभी-कभी उसके जी में आता कि वह कृतज्ञता के चुम्बनों से मुंदरी के दोनों पांवों को भर दे, जिसने अपना सब-कुछ उस जैसे नाचीज पर न्योछावर करके उसे इस तरह बेदार कर दिया है। और कभी-कभी उसे अनुभव होता कि उसमें काम करने की अब ऐसी अद्भुत शक्ति आ गयी है कि मुंदरी को कभी कोई दुख न झेलना पड़ेगा। और कभी-कभी वह सीधे सोचता कि अपना जीवन वह मुंदरी पर कैसे न्योछावर कर दे। और कभी-कभी वह सपने बुनने में लग जाता, जब वह और मुंदरी कल यहां से कहीं दूर जा बसेंगे, तो वह क्या-क्या करेगा, कैसे मुंदरी को रखेगा....

और मुंदरी की रात भी करीब-करीब उसी तरह सपने बुनते कटी। उसने रात ही को वह लुग्गा जला दिया था और सुबह नहा-धोकर अपने चक्त पर टैट हो गयी थी। फुलडलिया लेकर वह अपने कमरे से निकली ही थी कि हाथ में चुनियाया हुआ लुग्गा लिये पानी-कल की ओ

हुई महराजिन मिल गयी। मटककर जरा तैश में वह बोली—रात तो तूने खूब छकाया न ?

मुँदरी ने तिरछी नजर से उसकी ओर देखा। बोली नहीं।

—बाहर से सिकड़ी काहे लगा गयी थी ?

—मुझे का मालूम था ?—तेवर चढ़ाकर मुँदरी बोली।

—अंडा सिखावे बच्चा के, बच्चा करे चें-चें !—हाथ चमकाकर महराजिन बोली—और कहीं मैं अन्दर से किल्ला ठोंक देती, तो ?

—तो का ? मुझे किसी का डर लगा है ?—झमककर मुँदरी बोली और आगे बढ़ गयी।

—सो तो आगे ही आयगा। जा, पुजारी तेरी राह तक रहा होगा।

पलटकर आँखें गिरोरकर मुँदरी बोली—का मतलब ?

—मुझे काहे को आँख दिखा रही है ? मैंने तो अपनी ओर से कुछ किया नहीं ?

—तूने ही उससे कहा होगा !

—का करती ? उसने अभी पूछा, रात काहे नहीं आयी, तो मैंने बता दिया। यह का किसी से छिपा है ?—और वह पानी-कल की ओर बढ़ गयी।

—अच्छा !—मुँदरी भी उसे घिराकर गलियारे में घुस गयी।

मन्दिर के ओसारे में पैंगा को न देख मुँदरी सकपका गयी। बगीचे के दरवाजे के पास जाकर एक चरवाहे से उसने पूछा—ऊ कहाँ है ? अभी तक सोया पड़ा है का ?

—नाहीं, दिसा-मैदान गया होगा।

मुँदरी कुछ समझकर बोली—तो तू ही जरा मन्दिर बुहार दे न।

—अरे, बिना झाड़ू लगाये ही चला गया, रोज तो झाड़ू लगाके जाता था। हाथ-पाँव धोकर आता हूँ।

मुँदरी फूल लोढ़ने लगी। तभी खटर-पटर की आवाज सुनायी पड़ी। मुँदरी ने देखा, दरवाजे से आता हुआ पुजारी उसकी ओर देख-कर मुस्करा रहा था। मुँदरी एक झटके से ऐसे घूमी कि पीठ की चोटी

छाती पर आ पट से बोल उठी और दाहिने पाँव की पायल जोर से छनक उठी।

पुजारीजी उसके पास आकर बोले—जाने के पहले जरा मुझसे मिल लेना।

पलटकर मुँदरी बोली—हम दोनों को यहीं रहना है, पुजारीजी! किसी से लाई लगाना अच्छा नहीं। आपको कुछ मालूम है, तो मुझे भी कुछ मालूम है। अच्छा यही है कि आप अपनी राह चलिए और मुझे अपनी राह चलने दीजिए!

हँसकर पुजारीजी बोले—तू तो नाहक बिगड़ रही है।...मैं तो यह कहना चाहता था कि मुझी से तुझे क्या बैर है? मैंने तो तेरा कुछ बिगाड़ा नहीं?

—जो आपने बिगाड़ा है, यह भगवान देखेगा। मुझे सब-कुछ मालूम हो गया है। सब धान बाईस पसेरी हो नहीं तुलता, पुजारीजी। आपको तनिको भगवान से डर हो, तो मुझपर तो मेहरबानी कीजिए ही। जाइए यहाँ से, कोई आ रहा है।

पुजारीजी हट गये।

फूल लोढ़कर मुँदरी चलने को हुई, तो जाने उसके मन में क्या आया कि वह मन्दिर की सीढ़ी के पास जा खड़ी हुई और मुस्करा कर सामने खड़े पुजारी से बोली—आज आपके भोग के लिए का लाऊँ?

पुजारीजी ने झाड़ू देते हुए चरवाहे की ओर कनखी से देखकर कहा—आज तो तेरे ही मन का भोग करने की इच्छा हो रही है!

*

बादलों की वजह से सरेशाम ही घना अन्धकार छा गया था। दीवानखाने के पीछे के ओसारे में बड़े सरकार टहल रहे थे। ओरियानी से लटकी लालटेन पर झुंड-के-झुंड पतंगे गिर रहे थे। बड़े सरकार का मुँह कुछ-कुछ तमतमाया हुआ था।

थोड़ी देर में सौदागर पैंदा को [illegible] लिये दाखिल [illegible] बोला—आ गया, बड़े सरकार!—और [illegible] टहुई से टिकाकर [illegible]

पर खड़ा हो गया।

पेंगा ने झुककर सलाम किया।

बड़े सरकार कड़क कर बोले—क्यों बे, तेरी शामत आयी है?

पेंगा सब समझ गया। बोला कुछ नहीं।

—हमारे घर की लौंडियों पर नजर उठाता है!—और बड़े सरकार ने बढ़कर जोर का एक थप्पड़ पेंगा की कनपटी पर जमा दिया। फिर तेवर बदल कर कहा—साले! आंख निकलवा लूंगा!

पेंगा सिर झुकाये, कनपटी सहलाता हुआ जैसे अदब से दो कदम पीछे हटा, पर दूसरे ही क्षण जैसे वहां अन्धकार में बिजली-सी चमक उठी। पेंगा ने पांव से सौदागर की गोजी को ठोकर मारी और वह झुककर सँभले-सँभले कि पेंगा फलांग लगाकर यह जा-वह जा।

पीछे से एक आवाज आयी—पकड़ो साले को!—लेकिन आज पेंगा को पकड़ लेना आसान न था। सौदागर की मुग्दर की तरह मोटी-मोटी जांघें दौड़ने के लिए न बनी थी। उसने फाटक के पास चौकीदार को हांक दी, लेकिन तब तक पेंगा बाहर होकर जाने अँधेरे में किधर गायब हो चुका था।

एक क्षण के लिए चारों ओर से आवाज उठी—क्या हुआ, क्या हुआ?—लेकिन दूसरे ही क्षण दीवानखाने के ओसारे में बड़े सरकार को खड़े देखकर सब शान्त हो गये। बड़े सरकार वहीं से चीखे—जहाँ भी मिले, पकड़ लाओ हरामखोर को!—उनकी भौंहें मारे गुस्से के फड़क रही थीं।

बेंगा सरकार की चिट्ठी लेकर थाने गया था। लौटकर सुना, तो सिर थाम कर बैठ गया।

मुँदरी को मालूम हुआ, तो वह रानीजी के पलंग की पाटी पर सिर पटक-पटक रोने लगी—रानीजी, उसे बचा लीजिए! मैं मर जाऊँगी, रानीजी, मैं मर जाऊँगी!

७

दरबार लगा हुआ था। क़हक़हे गूंज रहे थे। राजा भी खुश थे, दरबारी भी खुश थे। शिमला से लल्लनजी की चिट्ठी आयी थी। उसने लिखा था कि वह कमीशन में ले लिया गया। मसूरी जिस होटल में वह ठहरा था, उसी में एक कैप्टन भी ठहरे थे। उन्हीं के कहने से लल्लनजी तैयार हुआ था और उन्होंने ही अपने साथ उसे शिमला ले जाकर चटपट सब करा दिया। उसने अगले इतवार को आने को लिखा था। कस्बे में मोटर के वक्त सवारी भेजने की ताकीद की थी। कल सनीचर है, परसों इतवार।

शम्भू कह रहा था—दोहरी खुशी की बात है, बड़े सरकार! लल्लनजी ने एम० ए० किया, फिर ऐसी शानदार नौकरी भी मिल गयी। जलसा तो जरूर होना चाहिए।

पुजारीजी हुलसकर बोले—ठाकुरजी का छप्पनों प्रकार का भोग भी जरूर लगना चाहिए।

सौदागर बोला—और नाच भी जरूर होना चाहिए। बिना नाच के कोई मजा नहीं आता।

वैद्यजी ने कहा—और कंगलों को भोज भी देना चाहिए। परजा भी तो समझे कि राजा के यहाँ कोई खुशी की बात हुई है।

—सब होगा, भाई, सब होगा। लेकिन वक्त कम है।—बड़े सरकार पलथी मारकर बैठ गये और जाँघों पर हाथ रखकर बोले—जाने कितने दिन वह यहाँ ठहरेगा।

—आप इसकी फ़िक्र बिल्कुल न कीजिए, बड़े सरकार, हम सब यों कर लेंगे।—शम्भू ने चुटकी बजाते हुए कहा।

—तो अगर नाच करना है, तो लाडली को ही आना चाहिए।—बड़े सरकार बोले।

—लाडली ही आयगी, बड़े सरकार। मैं कल सुबह ही जाकर पक्का कर आऊँगा। हाँ, जलसा रखा किस दिन जाय?—शम्भू बोला।

—मङ्गल का दिन ठीक रहेगा। महाबीरजी का दिन है।—पुजारीजी बोले।

—ठीक। लेकिन तब तक सब इन्तजाम हो जाना चाहिए। झंडी-पताका, सर-शामियाना, बाजा-गाजा, खाना-पीना....हाँ, कंगलों को अगर भोज देना हो, तो एक दिन आगे-पीछे दिया जाय।—बड़े सरकार बोले।

—आगे नहीं, पीछे ही ठीक होगा। इसका इन्तज़ाम वैद्यजी को सौंप दिया जाय!—शम्भू बोला।

सब हँस पड़े।

—हाथी और बेगार लेकर तुम वक्त के पहले ही लल्लनजी को लाने चले जाना,—बड़े सरकार ने सौदागर की ओर देखकर कहा।

—ऐसे मौक़े पर कार का न होना खल जाता है। एक ले क्यों नहीं लेते, बड़े सरकार?—शम्भू ने कहा।

—कार के लिए सड़क चाहिए न। कितनी बार तो शिवप्रसाद बाबू से कहा, कि कस्बे से गाँव तक एक सड़क निकलवा दो, नाम रहेगा। लेकिन उन्हें अब गाँव से क्या मतलब? कस्बे में कोठी क्या बनवा ली, गाँव से हमेशा के लिए छुट्टी हो ले ली।—बड़े सरकार ने कहा।

—और क्या, वो चाहते तो क्या न बनवा सकते थे? रतसड़ के बाबू जब डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मेम्बर हुए, तो पहला काम उन्होंने अपने गाँव तक सड़क निकलवाने का किया था। शिवप्रसाद बाबू तो लखनऊ तक पहुँच गये हैं। वो क्या नहीं कर सकते। अरे, उनके एक इशारे-भर की तो देर थी। गाँव वाले उनका जस गाते। लेकिन यह भले-

मानस तो सब भूल गये। उन्होंने चुनाव के वक्त सड़क निकलवाने का वादा किया था, बड़े सरकार, याद है न ?—वैद्यजी ने कहा।

—वादे तो करने के लिए होते ही हैं,—सौदागर ने कहा—उन्होंने तो और भी जाने कितने वादे किये थे।

—बड़े सरकार, अब की चुनाव आये, तो आप भी जरूर उठिएगा !—पुजारीजी ने कहा।

—उठने को तो मैं पहले ही उठ सकता था,—बड़े सरकार ने लापरवाही से कहा—लेकिन अकेला आदमी ठहरा, क्या करूं। सोचा था, लल्लनजी यह-सब काम-धाम सँभाल लेंगे, तो जरा इधर-उधर का भी रंग देखूंगा। लेकिन अब वह कहाँ होने का ?

—का जरूरत है, बड़े सरकार। यह कांग्रेस वाले तो धोबी-चमार को भी उठाने लगे हैं। जिगिड़सर के राय साहब सरजू प्रसाद के खिलाफ पिछली बार एक धोबी को उठाया था कि नहीं ? अब इसमें कोई इज्जत की बात थोड़े ही रह गयी है। हमारे बड़े सरकार चाहें, तो अपने खर्चे से भी सड़क निकलवा सकते हैं।—सौदागर ने कहा।

—हाँ, यह भी ठीक ही है,—बड़े सरकार ने सिर हिलाकर कहा—लेकिन इसकी वैसे जरूरत ही क्या है ? लल्लनजी यहाँ रहते और उन्हें मोटर का शौक होता, तो यह क्या मुश्किल थी ?

—और क्या, हमारे सरकार को तो हाथी ही शोभा देता है। सच कहता हूँ, सरकार, यह कार-मोटर भी कोई सवारी है ! सवारी तो वह, जिससे द्वार की शोभा बढ़े।—पुजारीजी ने कहा।

—आप लोग क्या समझें इन बातों को ! यह सायंस का जमाना है। इतना वक्त किसी के पास कहाँ कि हाथी पर चढ़कर छै मील प्रति घंटा सफर करे ..

शम्भू को बात बीच में ही काटकर वैद्यजी बोल उठे—अरे भैया, यहाँ वक्त की किसे कमी है ? यहाँ तो वक्त काटना मुश्किल होता है। तुम क्या जानो हाथी की सवारी को ? जरा सोने-चाँदी के हौदे पर और झूमता हुआ हाथी चले और टन-टन घंटे बजें, तो फिर

इसकी शान ! उसके आगे तुम्हारी कार-मोटर तो बस पों-पों करके रह जाय। और भागती भी कैसे है, जैसे पकड़े जाने के डर से चोर। और धूल और बदबू की आँधी जो उड़ाती है, सो अलग। और कहीं रास्ते में कोई कल-पुर्जा ढीला हो गया, तो बोल सियावर रामचन्द्र की जय !

सब लोग जोर से हँस पड़े।

शम्भू का मुँह इतना-सा निकल आया। फिर भी अपनी बात रखने के लिए उसने कहा—बात, भाई, सड़क न होने की है। वर्ना आप लोग देखते, बड़े सरकार कार ज़रूर लाते।

—हाँ, हाँ !—बड़े सरकार बोले—एक कार भी ज़रूर लाकर छोड़ देते, तुम लोगों के लिए। लेकिन, भाई, मैं तो हाथी ही पर चढ़ना पसन्द करता हूँ। तुम लोग नयी रोशनी के नौजवान ठहरे, जो जी में आये करो, लेकिन हम लोग जब तक ज़िन्दा हैं, अपनी चलन कैसे छोड़ेंगे !

—सो तो है ही,—शम्भू ने कहकर सिर झुका लिया।

—बड़े सरकार, आज पान का एक दौर ही चलकर रह गया,—हे-हे करके पुजारीजी बोले।

—ओह ! अरे, बेंगवा !—बड़े सरकार ने आवाज़ दी—पान तो ला !

मरियल कुत्ते की तरह काँपता-डोलता बेंगा तश्तरी उठाकर चला, तो बड़े सरकार कड़ककर बोले—तेरे पैर में जान नहीं है क्या, बे ? दौड़कर जा !

—यह बिल्कुल बूढ़ा हो गया। इसे अब बदल डालिए, बड़े सरकार।—शम्भू ने कहा।

—बूढ़ा कुछ नहीं हुआ, पीठ मोटा गयी है। चतरिया के सबब से इसकी यह हालत हो गयी है, वर्ना यह बड़े-बड़े जवानों का अब भी कान काट सकता है। और दूसरी बात यह है कि हमारे यहाँ खास नौकरों को कभी निकाला नहीं जाता। जाने इसके खानदान के कितनों

की मिट्टी यहीं लग गयी। और एक बात यह भी है कि नये सिरे से किसी नौकर को काम सिखाना भी मामूली मुश्किल नहीं। पुराना नौकर पुराने चावल की तरह होता है। इसकी कदर तुम नौजवान लोग क्या जानो। पुराने ज़माने के नौकरों की बात ही और होती है। इस ज़माने के लोगों में वह पानी नहीं रहा।—बड़े सरकार बोले।

—आप बिल्कुल ठीक कहते हैं, बड़े सरकार,—पुजारीजी ने कहा—इस ज़माने के लोगों में अब वह सरधा-भक्ति भी नहीं रही। और तभी तो लोग अपनी दसा देखते हैं। रात-दिन खटते हैं, फिर भी कमाई में बरक्कत नहीं होती। बरक्कत हो कैसे? न धरम, न करम, न पूजा, न पाठ, न गऊ, न ब्राह्मण....यह गाँव तो कभी का उलट गया होता। वह तो बड़े सरकार के पुण्य की महिमा है कि ठहरा हुआ है।

—हमारा हर साल हजारों का मारा पड़ जाता है। अब लोगों में वह ईमानदारी भी नहीं रही।—शम्भू ने कहा—बाबूजी कहते हैं कि एक जमाना था, जब न बही थी, न रसीद। लोग कर्जा ले जाते थे, और आप ही मयसूद के अदा कर जाते थे। जब तक बाबूजी पीठ न ठोक देते थे, लोग अपने को नरक में समझते थे। और अब यह जमाना है कि लोग पक्के कागज पर लेन-देन करते हैं, फिर भी लोग हड़प जाने की चिन्ता में रहते हैं। कचहरी में लोग झूठा हलफ उठाते हैं। और तो और, अब महाबीर और चतुरिया-जैसे लोग भी पैदा हो गये हैं, जो किसानों को बरगलाते फिरते हैं कि महाजन का कर्जा मत अदा करो, असल से ज्यादा तो वे सूद ले लेते हैं। और यहाँ हाल यह है कि सूद तो दरकिनार, असल भी गप्प। अब तो जितना क़र्ज़ दो, उतना कचहरी के लिए रख छोड़ो, तब लेन-देन करो। बाबूजी तो कहते थे कि अब लेन-देन का काम बिल्कुल बन्द कर देंगे। अब वह भी कुछ जमींदारी खरीदने की सोच रहे हैं।

—जमींदारी चलाना तुम-जैसों का काम नहीं,—बड़े सरकार बोले—इसके लिए बड़ा कलेजा चाहिए। बनिया का जीव धर्म बराबर....

सब हँस पड़े।

बड़े सरकार बोले—बुरा न मानना, बेटा, जो जिसका सिंगार होता है, उसे ही सोहता है।...हाँ, जलसे में अफ़सरों को भी बुलाया जायगा। थाने से मैं सबको नवेद भेजवा दूँगा। सब इन्तज़ाम पक्का हो जाना चाहिए। किसी को भी किसी बात की शिकायत का मौक़ा न मिले।

—नहीं, बड़े सरकार, ऐसा कैसे हो सकता है? आप कोई फ़िकिर न कीजिए। जैसा हमेसा होता आया है, उसी सान से सब होगा। लोग याद रखेंगे कि बड़े सरकार के यहाँ कभी ऐसे सानदार जलसे का इन्तिजाम सिरफ दो दिन में हुआ था।—सौदागर ने मूँछों पर ताव देते हुए कहा।

बेंगा ने तख़त पर पान की तश्तरी रखते हुए कहा—अन्दर से बुलावा है, बड़े सरकार।

बड़े सरकार ने चार बीड़े पान मुँह में डालकर, ज़र्दे की डिबिया ठोंकते हुए, पाँव तख़त के नीचे लटका दिये। बेंगा झुककर जूते पहनाने लगा। तभी धरती पर बैठे हुए किसानों में से एक उठकर बोला—बड़े सरकार, हमारी भी एक अरज है। बड़े सरकार के यहाँ खुसी की बात हुई है। जलसा होने जा रहा है। भगवान करे, जलसा बड़े सरकार के यहाँ रोज-रोज हो। अब हमें भी कुछ हुकुम हो जाय, खेत तड़क रहे हैं। जोताई न हुई तो साल खराब जायगा।...

बड़े सरकार बोले—बस करो!—फिर सौदागर का नाम लेकर बोले—कारिन्दे से कहो, कल सब खेतों का बन्दोबस्त करा दे। साल में जो बाजार-भाव होगा, उसी के मुताबिक लगान लगाया जायगा। इस वक़्त कुछ तै करने की ज़रूरत नहीं।—कहकर वह उठने लगे।

तभी एक चौधरी खड़ा होकर बोला—और परती के बारे में भी कोई हुकुम हो जाय, बड़े सरकार। बरसात में ढोरों के खड़े होने को कहीं ज़मीन नहीं रह जायगी।

—फिलहाल उसे भी रोकवा दो। फिर देखा जायगा।—बड़े सरकार ने सौदागर से कहा और चल पड़े।

सौदागर बोला—राजा हो तो ऐसा ! मनसे, तो राज लुटा दे।...

लेकिन उसकी बात सुनने को वहाँ कोई न रुका। बड़े सरकार के उठते ही सब उठ गये।

*

हवेली में स्यापा-सा पड़ा था।

रानीजी नीचे न उतरी थीं। ऊपर की छत पर भी न निकली थीं। अपने कमरे में ही चुपचाप चित लेटी पड़ी थीं। उनकी बन्द आँखों से आँसुओं के धार बहे जा रहे थे। सभी नौकरानियाँ चुपचाप मुँह लटकाये चारों ओर से उन्हें घेरे हुए खड़ी थीं। किसी को कुछ बोलने की हिम्मत न हो रही थी। सुगिया और पटेसरी सिरहाने और पैताने सिर झुकाये खड़ी धीरे-धीरे पंखा झल रही थीं। मुनरी दरवाजे के पल्ले का सहारा लिये पलकें झुकाये खड़ी थी। बदमिया रह-रहकर खामोश निगाहों से उसकी ओर देख लेती थी। मुँदरी को मालूम था कि अब क्या होने-वाला है, इसलिए वह नीचे गुलाब-जल तैयार कर रही थी।

बड़े सरकार कमरे में आये, तो एक कुर्सी उठाकर बदमिया ने रानीजी के सिरहाने रख दी। बड़े सरकार गम्भीर बने-से बैठ गये। तभी हाथ में लोटा लटकाये मुँदरी आकर बोली—जाओ, तुम लोग अपना काम देखो।—और उसने लोटा एक ओर रखकर सुगिया के हाथ से पंखा ले लिया।

सब-की-सब चली गयीं, तो बड़े सरकार ने रानीजी के बाहु पर हाथ रखकर कहा—इस तरह रोने से अब क्या फायदा?

रानीजी ने दाँतों से होंठ काटे और फफक-फफक कर रो पड़ीं।

रूमाल से माथे का पसीना पोंछकर बड़े सरकार बोले—मुँदरी, छत पर छिड़काव हो गया हो, तो इन्हें बाहर ले चल। यहाँ तो बड़ी फफस है।—और वह उठकर खड़े हो गये।

—आप चलिए, मैं इन्हें लेकर आती हूँ। छत पर पलंग लगा दिये हैं।—मुँदरी ने कहा।

बड़े सरकार बाहर हो गये, तो मुँदरी झुककर रानीजी का [illegible]

तौलिये से पोंछती हुई बोली—अन्धे के आगे रोये, अपनो दीदा खोये! यह आप क्या कर रही हैं, रानीजी? उठिए, जो बात करनी हो, साफ-साफ कीजिए।

—क्या करूँ, मुँदरी!—रुँधे गले से रानीजी बोली—बड़े सरकार से कह दे कि वह बाहर जायें। इस वक्त मेरी तबीयत ठीक नहीं। मैं उनसे कोई बात न कर सकूँगी।

—अच्छा, अच्छा।

मुँदरी लपक कर बड़े सरकार से कह आयी और फिर बोली—जरा मुँह तो धो दूँ न आपका? इन आँसुओं को रोकिए, रानीजी। मुझसे देखा नहीं जाता!—और उसने रानीजी को उठाकर बैठा दिया और एक हाथ के चुल्लू में लोटे से पानी ले-ले उनका मुँह धोते हुए कहा—बचपन में माई एक कहानी सुनाया करती थी। उसमें एक रानी जंगल में घिर कर जब रोती थी, तो जंगल के पेड़ों के सब पत्ते झड़ जाते थे, चिड़ियाँ-चुरुंग सब रोने लगते थे। आप जब भी रोती हैं, मुझे उसी रानी की याद आ जाती है।

—मैं भी तो एक जंगल में ही घिरी हूँ, मुँदरी। भला वह रानी जंगल में क्योंकर पड़ गयी थी?

तौलिये से उनका मुँह पोंछती हुई मुँदरी बोली—उसे उसके राजा ने महल से निकाल दिया था। उसने अपने आदमियों को हुकुम दिया था कि वे उसे ले जाकर जंगल में छोड़ आयें।

—ऐसा क्यों? रानी से कोई बहुत बड़ा अपराध हुआ था क्या?

—हाँ, वह एक दरबारी से मोहब्बत करती थी। एक दिन राजा को यह बात मालूम हो गयी।

—ओह! तब तो वह रानी मेरी ही तरह थी।

—एक फरक तो है ही, बड़े सरकार ने आपको जंगल में नहीं भेजा।

—बल्कि महल को ही मेरे लिए जंगल बना दिया।

—वह भी इसलिए कि आपके नाम आपके पिताजी के दिये हुए एकावन गाँव हैं। और आपके लल्लनजी भी तो जल्दी ही पैदा हो गये।

—रानीजी, ऐसी गलती या धोखेबाजी करनेवाली मुँदरी नहीं। मेरी जीभ कटकर गिर जाय, जो ऐसी बात कभी मेरे मुँह से निकली हो !—अपने कान छूकर मुँदरी बोली।

—सो तो तुझपर मेरा विश्वास है। फिर तू कुछ सोचती-समझती है कि बड़े सरकार के मन में क्या है ? मुझे अपनी चिन्ता बिल्कुल नहीं, मुँदरी। मुझे तो वह जहर भी दे दें, तो खुश-खुश पी जाऊँ। लेकिन मेरे लाल को कहीं कुछ हुआ, तो मैं तो भुभुर में पड़ी मछली की तरह तड़पकर मर जाऊँगी !—रानीजी फिर रो पड़ीं।

—इस तरह रो-रोकर आप जान भी दे देंगी, तो का होगा ? छोटे सरकार आ रहे हैं न, उन्हें आप रोक लीजिएगा। आप न चाहें, तो वह कैसे जा सकते हैं ?

—वह ऐसा ही मेरे हाथ का होता, तो क्या कहना था। बिना मुझसे कुछ पूछे-आछे तब क्या वह फ़ौज में भर्ती हो जाता ? मैं तो जानूँ, उसके भी कान बड़े सरकार ने भर दिये हैं।—तूने मेरी बात का जवाब नहीं दिया।

—एक ही बात की संका मुझे सुरू से ही है। उस दिन रंजन बाबू का अचके में गायब हो जाना मेरी समझ में आज तक नहीं आया। आपसे कितना कहा था कि राजेन्दर बाबू को एक चिट्ठी लिख दीजिए, मैं किसी तरह उसे भेजवा दूँगी, लेकिन आपने लिखी ही नहीं।

—मैंने लिखना मुनासिब न समझा, मुँदरी। उस दिन बड़े सरकार की बदली नजरों को मैंने समझ लिया था। हाँ, तू भी तो कुछ पता न लगा सकी।

—मैंने सब कोसिस की थी, रानीजी ! लेकिन कुछ पता चले, तब तो। ले-दे के एक बैंगा ही से तो मैं कुछ पूछ सकती थी। उस बेचारे को मालूम होता, तो मुझे वह जरूर बता देता। लेकिन मुझे तो पूरा सक है कि....

मुँदरी का शक सोलहों आने सही था।

*

—कहीं ऐसा न होता, तो क्या मुझे भी बड़े सरकार निकाल देते ?

हँसकर मुँदरी बोली—यह समझना का इतना मुश्किल है ?

—मुँदरी ! कितनी बार कहा कि मेरे सामने तू इस तरह न हँसा कर !

—माफ कीजिए, रानीजी । आप कभी-कभी ऐसी भोलेपन की बात करती हैं कि मुझे हँसी आ ही जाती है...छत पर चलेंगी ? कपड़े बदलना हो, तो निकालूँ ।

—नहीं, लैम्प की बत्ती जरा मद्धिम कर दे । मुँदरी, आज तक मुझे एक बात मालूम न हुई । तुमसे भी कितनी ही बार पूछा, लेकिन तूने भी न बताया । आज बतायगी ?—कहकर रानीजी लेट गयीं ।

सिरहाने खड़ी हो, पंखा झलती हुई मुँदरी बोल—मालूम होगा, तो बताऊँगी काहे नहीं ।

—मुझे लगता है कि लल्लनजी को मुझसे दूर करने में बड़े सरकार का भी हाथ है । वह जानते हैं कि लल्लनजी में ही मेरे प्राण बसते हैं । फिर भी उन्होंने उसे रोका नहीं । मैं सालों से देखती हूँ कि जितनी ही मैं लल्लनजी को पास खींचने की कोशिश करती हूँ, बड़े सरकार उतनी ही उसे मुझसे दूर करने की कोशिश करते हैं । छुट्टियों में मैं कितना चाहती हूँ कि वह मेरे पास ही रहे, लेकिन बड़े सरकार कोई-न-कोई बहाना करके उसे यहाँ से टरका देते हैं, कभी पहाड़, तो कभी किसी रिश्तेदारी में, और कभी योंही किसी शहर सैर करने को । पढ़ाई खतम हुई, तो मैं सोचती थी कि अब वह मेरे ही पास रहेगा । लेकिन देखा तूने न, उसे लड़ाई पर भेज रहे हैं ।....और तूने ही तो बताया था कि इस खुशी में जलसा भी होने जा रहा है ।....मुँदरी, बड़े सरकार के मन में जरूर कोई बात है । उन्होंने मुझसे आज तक कुछ कहा नहीं, फिर भी मुझे कोई सन्देह नहीं कि वह यह जो कर रहे हैं, उसके पीछे जरूर कोई-न-कोई साजिश है । मुँदरी, सच बताना, कभी जाने या अनजाने में तेरे मुँह से कोई बात तो नहीं निकल गयी थी ?

सिवा किसी को भी कोई बात मालूम नहीं ।

कातिक का महीना था। इस साल बड़े सरकार पुराना हाथी बेंचने और नया खरीदने सोनपुर के मेले जाने वाले थे। हर चौथे-पाँचवे साल बड़े सरकार हाथी बदलने के लिए सोनपुर के मेले जाते थे। दर्जनों नौकर-चाकर साथ जाते, बोरियों खाने-पीने का सामान होता, अल्लम-बल्लम और लाव-लश्कर के साथ बड़ी शान से बड़े सरकार मेले को प्रयाण करते। हफ्तों पहले से हाथी को झावें से रगड़-रगड़ कर साफ़ किया जाता, खूब खिलाया-पिलाया जाता, फिर सिंगार किया जाता। गहनों, साजों और रंग-बिरंगे टीकों से हाथी दुलहिन की तरह सजाया जाता। पाँवों में मोटी-मोटी चाँदी की पायलें, गले में मोटी तिलड़ी, माथे पर बड़ी टिकलियों से बनाया गया बड़ा स्वस्तिक चिन्ह, सिर पर मुकुट, कानों में बड़े-बड़े बाले, माथे के नीचे सूँड़ पर रंगीन टीकों से बनाया गया लम्बा पान, दोनों पुट्ठों पर बड़े-बड़े चाँद, रेशम की मोटी-मोटी डोरी से लटके कमर के पास चमचमाते चाँदी के बड़े घण्टे, पीठ से पेट को ढँककर नीचे तक लटकता लाल मखमली कामदार झूल, झूल के ऊपर सोने-चाँदी का हौदा और हौदे पर पक्के काम की छतरी। जर्क-बर्क वर्दी में पीलवान आगे बैठता और राजसी पोशाक में बड़े सरकार हौदे पर। पीछे-पीछे अल्लम-बल्लम लिये एक पूरी लश्कर। बड़े सरकार जब प्रयाण करते, तो लोग खड़े-खड़े तमाशा देखते।

मेले में खूब बड़ी छोलदारी लगती। घर की तरह ही शान-शौकत और ऐश-आराम के सामान होते। हफ्तों में हाथी बिकता और हफ्तों में नया हाथी खरीदा जाता। फिर मेले की सैर होती। कुछ और भी शान-शौकत की चीज़ों की खरीद होती। तब जाकर लौटानी होती।

रानीजी को जब मालूम हुआ कि बड़े सरकार मेले जा रहे है, तो उन्होंने इसे अच्छा मौका जान रंजन को चिट्ठी दी कि वह तुरन्त उनसे मिलने आये। उन्होंने चिट्ठी में सब समझा कर लिख दिया कि मौका अच्छा है, यहाँ कोई भी न होगा, और वह उससे आसानी से

मिल सकेंगी। हो सके, तो राजेन्द्र भैया को भी वह साथ लायें।

रंजन इस चिट्ठी के इन्तजार में ही जिन्दा था।

राजेन्द्र ने कई चिट्ठियाँ अपनी माताजी और पिताजी को रंजन और पान की शादी के बारे में लिखी थी। उसने रंजन की हालत से भी उन्हें आगाह किया था और लिखा था कि यह शादी न हुई, तो नाहक उसके दोस्त की जान चली जायगी। वह पान के पीछे पागल है और जहाँ तक उसे मालूम है, पान भी उस पर जान देती है। रंजन खासे अच्छे जमींदार का लड़का है। पान को उसके साथ कोई तकलीफ़ न होगी। वे भरसक कोशिश करके यह शादी करवा दें।

राजेन्द्र के माता-पिता ने भी ताल्लुकेदारिन को चिट्ठी लिखी थी और समझाया कि अपनी लड़की कोई गलती कर जाय, तो उसे माफ़ कर देना चाहिए। अपना कोई अंग ऐबदार हो जाय, तो उसे काट कर कोई फेंकता है? यह उम्र ही गलतियों की होती है। वे जरा ठण्डे दिल से विचार करें और लड़की के सुख के लिए ही रंजन से उसका ब्याह कर दें। आखिर पान के लिए वर तो खोजना ही है। रंजन आप ही मिल गया है। बिरादरी का लड़का है। खासे अच्छे जमींदार का घराना है। आदि, आदि।

लेकिन ताल्लुकेदार को तो यह बात जड़ से ही असह्य थी कि कोई उनकी लड़की से या उनकी लड़की किसी से मोहब्बत करने की हिम्मत करे। यह मोहब्बत करनेवाला कोई राजकुमार भी होता, तो भी ताल्लुकेदार साहब वही करते, जो उन्होंने इस मामले में किया। यह बात ही उनकी समझ के बाहर और शान के खिलाफ़ थी कि कैसे उनकी लड़की ने किसी से आँख मिलायी या किसी ने उनकी लड़की की ओर देखा।

उन्होंने बड़े ही सख्त लफ्ज़ों में राजेन्द्र के माता-पिता को लिखा कि वे इस तरह की बात दुबारा न लिखें, वर्ना वे सभी रिश्ते क़ता कर लेंगे। और वह बड़े जोर-शोर से पान की शादी जल्दी-से-जल्द कहीं कर

देने की कोशिश में लग गये ।

यों वह इस सिद्धान्त को माननेवाले थे कि लड़का हमेशा अपने से छोटे घर में ब्याहो और लड़की अपने से बड़े घर में, क्योंकि ऐसा करने से ही बहू और बेटी अपने से अच्छा घर पाकर अधिक सुखी होती हैं। लेकिन पान की शादी की उन्हें ऐसी जल्दी पड़ी थी कि उन्होंने इस सिद्धान्त को ताक पर रख दिया। पहले ही खेवे में पुरोहित और नाऊ जब वरों को देखकर लौटे, तो उन्होंने पुरोहित से कहा—जो सबसे ज्यादा जँचा हो, उसी के बारे में बताइए।

पुरोहितजी काफ़ी दूर-दूर का चक्कर लगाकर आये थे। पहले छोटे-बड़े रजवाड़ों, फिर ताल्लुक़ेदारों और फिर बड़े-बड़े जमींदारों के दरवाजों की खाक छानी थी। वह पूरा विवरण देकर यह जताना चाहते थे कि उन्होंने कितनी मेहनत की है। लेकिन अब ताल्लुक़ेदार की बात सुनकर उनका उत्साह ठण्डा हो गया। फिर भी वह बोले—सरकार के खान्दान का मुझे ख्याल था। जोड़ के घरानों में ही देखना-खोजना मैंने मुनासिब समझा। जहाँ भी गया, आपके यहाँ सम्बन्ध करने को लोगों को मुँह बाये खड़ा देखा। लेकिन संजोग की बात कि पिछले लगन में ही बहुत-सारे लड़के उठ गये। जो बचे भी हैं, वे हमारी कुँवरि के जोड़-जुगत के नहीं जँचे। आपने ताकीद की थी कि जैसे भी हो, हमें लड़का खोजना ही है, इसलिए हम ऊपर से जरा नीचे उतरने को मजबूर हुए। सरकार के बराबर के तो नहीं हैं, फिर भी वैसे कोई छोटे भी नहीं हैं। द्वार पर हाथी झूमता है। सैकड़ों गाँवों की जमींदारी है। बड़ा दबदबा है। अपने कुल के अकेले ही दीपक हैं। आयु यही कोई चौबीस-पच्चीस, शरीर से सुन्दर और स्वस्थ। बड़ा ही रोबीला चेहरा है। सब ठीक-ठाक है। बस, जरा सरकार से दबकर हैं। लेकिन आप चाहें, तो कोई हरज भी नहीं। वैसे कुँवरि को कोई कष्ट न होगा। इतना तो मैं कह सकता हूँ। आगे आपकी खुशी। कुँवरि के ब्याह की बात है। सोच-समझकर ही कुछ करना चाहिए। पसन्द न हो, तो मैं तो हाजिर हूँ ही। बड़े घरानों में शादी-ब्याह यों चटपट कहीं नहीं

होता । हजारों बातों का ध्यान रखना पड़ता है । यों आपकी मर्जी ।

ताल्लुकेदार साहब कुछ सोच में पड़ गये । फिर ताल्लुकेदारिन से राय-बात कर देख लेने को तैयार हो गये । देख लेने में हर्ज ही क्या है ?

सो देखने गये, तो टप-तपाड़ा करके ही लौटे । बड़े सरकार उन्हें पसन्द आ गये । लगे हाथों टीके की रस्म भी कर दी और तिलक का दिन भी रोप आये ।

रंजन रोज राजेन्द्र से पूछता था कि उसके माता-पिता के यहाँ से कोई जवाब आया कि नहीं । और राजेन्द्र रोज कह देता कि अभी नहीं । शादी-ब्याह का मामला है । इतनी जल्दी कैसे कुछ हो सकता है । उसे सब्र से काम लेना चाहिए । राजेन्द्र के पास कब का जवाब आ गया था, लेकिन बताना वह ठीक न समझता था । उसका अब भी ख्याल था कि ज्यों-ज्यों वक्त गुजरता जायगा, रंजन की तबीयत सभलती जायगी । यों अचानक निराश हो जाने पर कहीं कुछ कर बैठना उसके लिए मुश्किल न होता ।

आखिर पान की एक बड़ी लम्बी, आंसुओं और आहों से भीगी चिट्ठी आयी । उसमें उसने अपनी शादी तै हो जाने की बात लिखी थी, और उससे जो-कुछ उसके दिल पर गुजरा था, उसका बड़े ही मार्मिक शब्दों में वर्णन किया था । लेकिन अन्त में उसने लिखा था कि चाहे जो हो, एक बार उससे मिलने के पहले वह हरगिज न मरेगी । मौका देखकर वह उसे जरूर बुलायेगी । उसने ताकीद की थी कि रंजन भी और कुछ के लिए नहीं तो उससे एक बार मिलने के लिए जरूर जिन्दा रहे । वह उसे बराबर चिट्ठी लिखेगी ।

यह चिट्ठी पढकर रंजन की जो हालत हुई, वह बयान के बाहर है । उसका जैसे खून ही सूख गया, होश ही गायब हो गये, दिल की धड़कन ही बन्द हो गयी । राजेन्द्र को अपनी मावाजी की चिट्ठी से पहले ही यह-सब मालूम हो गया था । वह जानता था कि रंजन को जब पता चलेगा, तो उसकी क्या हालत होगी । उसने तो यह भी कोशिश

और वह मुस्करा दिया।

वह मुस्कराहट देखकर राजेन्द्र का कलेजा धक-से कर गया। यह ऐसी मुस्कराहट थी, जो ऊपर से बिल्कुल मुर्दा थी; लेकिन जिसके पीछे जैसे कोई दृढ़, भीषण संकल्प हो, ऐसा संकल्प, जिसके अस्तित्व में आते ही जैसे सारी विषम परिस्थितियाँ ऐसे घुलकर, पिघलकर हमवार हो गयी हों, कि अब उनपर सिर्फ़ मुस्कराया ही जा सकता हो।

राजेन्द्र चीख-सा पड़ा—रंजन !

लेकिन रंजन मुस्कराहट कुछ और भी प्रगट कर, अप्रभावित-सा, मेज पर रखी हुई घड़ी की ओर देखकर बोला—दस बजने में दस ही मिनट रह गये है। कालेज चलना है न ? आज केमिस्ट्री का प्रैक्टिकल है।—और वह उठकर कपड़े बदलने लगा।

सहमा हुआ राजेन्द्र बोला—खाना नहीं खाना है ?

—अब वक्त कहाँ है, लेजर में देखा जायगा।

राजेन्द्र ने भी कपड़े बदले। दोनों ने किताबें उठायी। और अगल-बगल चुपचाप चल पड़े।

रास्ते में रंजन ने कहा—आज रात की गाड़ी से थोड़े दिन के लिए मैं घर चला जाऊँ, तो कैसा ?

उसकी ओर चोरी से देखते हुए होंठों में ही राजेन्द्र ने कहा—बहुत अच्छा। शायद वहाँ जाने से तबीयत बहल जाय।

—हाँ।

आज अजीब बात हो गयी है, रंजन राजेन्द्र बन गया है और राजेन्द्र रंजन।

—पान की शादी में तुम जाओगे न ?—रंजन बोला।

—नहीं।

—नहीं क्यों ? जरूर जाना, और मौका मिले, तो उससे कहना कि मैं उससे मिलने का इन्तजार जीवन के आखिरी क्षण तक करूँगा। अच्छा ?

—हाँ।

की थी कि उसके नाम आयी चिट्ठी भी उड़ा दे। लेकिन रंजन डाकमुंशी का घण्टों पहले ही से हास्टल के फाटक पर खड़े-खड़े इन्तजार करता रहता था। पान की चिट्ठी ही तो उसके जीवन का सहारा थी।

राजेन्द्र कमरे में आया। रंजन की ओर देखा, तो उसे लगा, जैसे बिल्कुल एक खण्डित मूर्ति की तरह वह सदियों से बैठा हो और सदियों तक बैठा रहेगा। खण्डित मूर्ति को कौन सँवार सकता है!

राजेन्द्र ने पूछा—पान की चिट्ठी आयी है?

रंजन चुप।

—बोलते काहे नहीं? क्या लिखा है?

रंजन चुप। उदास आँखों में गहरा सन्नाटा लिये जैसे वह सामने देख रहा हो, लेकिन उसे जैसे कुछ भी दीखायी न दे रहा हो।

—मुझे भी अब न बताओगे?—उसके कन्धे पर हाथ रखकर राजेन्द्र बोला।

रंजन चुप। जैसे अन्दर की आँधी के शोर में उसे कुछ भी सुनायी न दे रहा हो।

—अरे, कुछ तो बोलो!—उसके कन्धे हिलाकर सहमा-सा राजेन्द्र बोला।

रंजन चुप। जैसे, हम वहाँ है, जहाँ से हमको भी कुछ अपनी खबर नहीं होती।

—मैं पढ़कर देखूँ?—कहकर राजेन्द्र ने चिट्ठी छुई, तो वह उसके हाथ में ऐसे आ गयी, जैसे वह योंही रंजन की अँगुलियों में अटकी हुई हो, पकड़ी न गयी हो।

राजेन्द्र ने सरसरी नजर से पढ़कर एक ठण्डी साँस ली।

थोड़ी देर तक खमोशी छायी रही।

आखिर राजेन्द्र बोला—मेरा ख्याल है, तुम्हें पान से मिलने का इन्तजार करना चाहिए। उसने लिखा है, तो वह एक-न एक दिन जरूर मिलेगी। मिलने पर शायद कोई राह निकल आये।

इतनी देर बाद रंजन में एक हरकत हुई। धीरे से उसका सिर उठा

थोड़ी देर के बाद रंजन ने राजेन्द्र के पास आकर कहा—जरा तुम मेरी मदद करो। मैं तो सब भूल चुका हूँ।

—और भी इश्क करो,—हँसकर राजेन्द्र बोला—अपने साथ-साथ तुमने मेरा भी यह साल चौपट किया।

—मुझे बड़ा अफसोस है, दोस्त। अगर मुमकिन होता, तो अपनी बाकी सारी उम्र तुम्हें देकर तुम्हारा नुकसान पूरा कर देता।

—आज बड़ी दरयादिली दिखा रहे हो...

—हाँ, मैं राजा होता, तो आज अपना सारा राज तुम पर न्योछावर कर देता!...अच्छा, अब मैं चल रहा हूँ। धोबी के यहाँ से कपड़े मँगाने हैं।

—वाह! राज लुटाने वाले को धोबी के यहाँ पड़े कपड़ों की फिक्र! आज बड़ी अजीब-अजीब बातें तुम्हारे मुँह से सुन रहा हूँ!

—कुछ न समझे खुदा करे कोई। खैर, मैं तो चला।

—मैं भी चल रहा हूँ।

—क्यों? तुम अपना प्रेक्टिकल करो न।

—अब कल से ही इतमिनान से मन लगाऊँगा। चलो।

कमरे में आकर रजन बोला—एक बजे रात तक का प्रोग्राम बनाओ।

—तुम्हीं बनाओ,—कोट उतार कर, खूँटी पर टांगते हुए राजेन्द्र बोला—आज के शाहेवक्त तो तुम हो।

—लेकिन मैं चाहता हूँ कि तुम बनाओ।

—नहीं।

—तो एक टैक्सी मंगाओ। जहाँ चाहे, आज पटना में छै बजे तक घूमेंगे, फिर सिनेमा देखेंगे, फिर किसी शानदार होटल में खाना खायेंगे।

—उसके बाद?

—उसके बाद वापस आयेंगे और सामान लेकर स्टेशन

—अरे, तुम इस तरह हाँ-ना में क्यों बात कर रहे हो? क्या हुआ है तुम्हें?

—मुझे क्या होना है?

—अम्मी, रोज तो तुम मुझे कितना समझाते-बुझाते थे। आज ऐसे मौक़े पर भी तुम कैसे इतने खामोश हो?

—दर्द के ज़बान नहीं होती।

—ओ, तो आज तुम मेरा पार्ट अदा कर रहे हो!

—इश्क में हर शै उलटी नजर आती है।

—अच्छा, अब जो तुमने क़ायदे से बात न की, तो मार बैठूंगा!

—काश, तुम मार बैठते! काश, तुम कुछ भी अपनी तरह की करते रोते, चीखते, बाल नोचते, सिर पटकते!

रंजन जोर से हँस पड़ा—अम्मी, वह रंजन कोई और होगा!... वह किसी ने कहा है न, दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना, सो अब मैं बिलकुल ठीक हो गया हूँ। मुझे कोई गम नहीं, कोई भी नहीं! ....रात को मेरी गाड़ी एक बजे जाती है। चाहो, तो शाम को साथ-साथ सिनेमा देखेंगे। फिर किसी होटल में ठाटदार खाना खायेंगे। और फिर........फिर एड्यू, एड्यू, एड्यू! रेमेम्बर मी!

राजेन्द्र कुछ न बोला। उसे रंजन के एक-एक शब्द से डर लग रहा था।

प्रैक्टिकल के कमरे में दोनों की मेजें अगल-बगल थीं। रंजन जैसे बड़े मनोयोग से काम रहा था। लेकिन राजेन्द्र बहुत ही व्याकुल था। वह रंजन की हर हरकत को छिपे-छिपे देख रहा था। इस हालत में वह उससे एक क्षण को भी लापरवाह होना न चाहता था।

क़रीब बीस मिनट बाद राजेन्द्र ने देखा कि रंजन ने बड़ी सफ़ाई से पोटेसियम साइनाइड का एक टुकड़ा कागज में लपेटकर कोट की जेब में डाल लिया। राजेन्द्र ने अब जाकर आराम की एक साँस ली। अब उसे निश्चित रूप से मालूम हो गया कि रंजन किस संकल्प के कारण इस तरह अभिनय कर रहा था।

देंगे। वहां प्लेटफार्म पर घूमेंगे, गप्पें लड़ायेंगे, और फिर एड्यू, एड्यू, एड्यू! रेमेम्बर मी?

—ठीक है।—और राजेन्द्र ने नौकर को पुकारा।

नौकर आ गया, तो टेक्सी लाने को कहकर, राजेन्द्र ने रंजन से पूछा—उधर ही से धोबी के यहां भी जाने को कह दूँ?

रंजन ने खुद ही कह दिया।

—कौन-से कपड़े पहनें?—राजेन्द्र ने पूछा।

—जो चाहो।

—तुम क्या पहनोगे?

—जो कहो।

—पैंट, प्रिन्स कोट और साफ़ा।

—बिलकुल ठीक।

कपडे पहने गये। साफ़ा बांधने में एक ने दूसरे की मदद की।

*

ग्यारह बजे हास्टल के फाटक पर टैक्सी रुकी, तो राजेन्द्र ने कहा—यार, मैं तो बड़ा थक गया। अभी दो घण्टे बाक़ी हैं। थोड़ा आराम करके स्टेशन चला जाय, तो कैसा?

—तो फिर तुम आराम करो। मैं चला जाऊँगा।

—ऐसा भी हो सकता है?—फिर ड्राइवर से राजेन्द्र ने कहा—साढ़े बारह बजे आ जाना। रूम नं० एकतीस। [illegible] है।

—बहुत अच्छा, सरकार।

—रंजन, तुम माइलेज वग़ैरह नोट कर लो। तब तक मैं ताला खोलता हूँ।—और राजेन्द्र ने [illegible] में [illegible] खोला और अन्दर जा रंजन के कोट की जेब से [illegible] निकाल खिड़की से बाहर फेंक दी। रंजन कमरे में दाख़िल हुआ, तो राजेन्द्र अपने कोट के बटन खोल रहा था।

इन्तज़ार में नौकर [illegible] में बैठा था। [illegible]

राजेन्द्र ने मेज़ की ओर इशारा करके कहा—बिस्तर ठीक कर दो।

राजेन्द्र का बिस्तर ठीक कर जब नौकर रंजन का बिस्तर लगाने लगा, तो वह बोला—मेरा बिस्तर होलडाल में बँधना है।

—अभी लगा लेने दो। फिर मैं ठीक कर दूँगा। ज़रा तुम भी आराम कर लो। रात-भर जागना है।—राजेन्द्र बोला।

—जैसा चाहो।

बिस्तर लगाकर नौकर ने पूछा—और कोई हुकुम ?

—नहीं। अब तुम जाओ।—राजेन्द्र ने कहा।

नौकर जाने लगा, तो रंजन ने उसकी ओर एक पाँच रुपये का नोट बढ़ाकर कहा—आज मैं घर जा रहा हूँ। एक बजे की गाड़ी से।

नोट सिर से छुलाकर नौकर ने कहा—सलाम, हुज़ूर। जाते समय मुझे पुकार लीजिएगा। मैं सामान चढ़ा दूँगा। टेकसी लानी होगी न ?

—टैक्सीवाले को कह दिया है ! तुम जाओ।—राजेन्द्र ने कहा।

सोने के कपड़े पहन, घड़ी में अलार्म लगाकर, बिस्तर पर लम्बा होता राजेन्द्र बोला—तुम भी थोड़ा आराम कर लो।

—नहीं, लेटूँगा, तो नींद आ जायगी।

– तो क्या हुआ ? अलार्म लगा दिया है। फिर ड्राइवर तो आयगा ही। लेट जाओ। लेटे-लेटे ही बातें करेंगे।

पैंट पहने ही कमर का बटन खोलता रंजन जूते के साथ ही बिस्तर पर पड़ गया।

यह कमरा हास्टल के बिलकुल एक सिरे पर था। चार सीटवाले इस कमरे में विशेष अनुमति लेकर ये दो ही रहते थे, और चार की फ़ीस देते थे। इनका रोब कालेज के अध्यापकों, वार्डन और विद्यार्थियों, सब पर था। कोई भी किसी तरह का दखल इनके कामों में न देता था, और न कोई ख़ास सरोकार ही रखता था। दूसरे विद्यार्थियों को ये कोई भी लिफ्ट न देते थे। विद्यार्थियों को भी इनमें कोई दिलचस्पी न रह गयी थी, कुछ आत्मसम्मान के कारण, कुछ डाह के कारण। इन दो [illegible]ी दुनिया ही अलग-थलग थी। ये हाई स्कूल से ही गहरे दोस्त हो

गये थे। रंजन का राजेन्द्र की परिस्थिति से कोई मेल न था, फिर भी राजेन्द्र कभी भी यह बात दूसरों पर प्रकट न होने देता था। वह जितना चाहता, घर से रुपये मँगा सकता था। लोग यही समझते थे कि दोनों ही बड़े घरानों के हैं। ये दोनों साधारण तौर पर एक ही तरह के कपड़े पहनते थे। हमेशा साथ ही रहते थे। इनका नौकर और मेस भी अलग था।

राजेन्द्र ने जँभाई लेते हुए कहा—तो कब तक लौटोगे ?

—तुम जब कहो।

—मुझे ही कहना होता, तो मैं जाने ही न देता। अकेले बहुत बुरा लगेगा। कहो तो मैं भी चलूँ ?

—मैं बहुत जल्द आ जाऊँगा, तुम क्यों वक्त ख़राब करोगे।

—यह साल तो गया ही। मैं अकेले थोड़े ही इम्तहान में बैठूँगा। पार होंगे तो साथ, डूबेंगे तो साथ।

—मुझे बड़ा अफ़सोस है।

—तुम क्या कर सकते थे! ग़लती मेरी है। मैं क्या जानता था।

—जो हो गया, सोचना बेकार है। मैं तो कहूँगा कि तुम चाहो, तो अब भी तैयारी कर सकते हो।

जँभाई लेकर राजेन्द्र ने कहा—मुझे तो नींद आने लगी।

—तो तुम सो जाओ। मसहरी गिरा दूँ ?

—नहीं, रहने दो। थोड़ी ही देर में तो जागना है।

—लाइट बुझा दूँ ?

—नहीं, लैम्प को दूसरी ओर कर दो। क्या बताऊँ, बहुत थक गया हूँ।

—तुम थोड़ी देर आराम कर लो। चाहो, तो मैं चला जाऊँगा। क्यों रात को तकलीफ़ उठाओगे।—रंजन ने लैम्प दीवार की ओर करते हुए कहा।

राजेन्द्र ने कोई जवाब न दिया। गहरी साँस लेने लगा।

—राजेन्द्र,—रंजन धीमे से बोला।

कोई जवाब न मिला।

*

कमरे में ख़ामोशी छा गयी। बस, घड़ी की टिक-टिक और राजेन्द्र की साँसों की आवाज़ आ रही थी।

थोड़ी देर तक सन्नाटा काढ़े रहने के बाद रंजन धीरे-धीरे होंठों से सीटी बजाने लगा, जैसे बड़ी मौज में हो। लेकिन यह बहुत देर तक न चला। अचानक उसे लगा कि जो नशा आज उसपर छाया हुआ था, वह टूटने पर आ गया है। मौका पाकर उसका दिमाग जैसे आप ही कुछ और सोचने लगा हो: यह कमरा...राजेन्द्र...यह जिन्दगी...पान...वह चट उठकर टहलने लगा। जी में आया कि राजेन्द्र को जगा दे, लेकिन उसे देखकर वह ठिठक गया।....यह सो रहा है...इसे क्या मालूम कि...एड्यू, एड्यू, एड्यू! रेमेम्बर मी!... उसके जी में आया कि झुककर वह राजेन्द्र का मुख चूम ले और उसे सोता हुआ छोड़कर ही....अभी....तुरन्त....

उसने खूँटी पर टँगे अपने कोट की जेब में हाथ डालकर टटोला। कुछ न पाकर वह परेशान होकर सब जेबें देख गया। कहीं भी पुड़िया न मिली, तो उसकी देह सन्न-से कर गयी।...शायद राजेन्द्र को...वह दरवाजे की ओर लपका कि राजेन्द्र ने कूदकर हाँफते हुए उसका हाथ पकड़ लिया और बोला—यह नहीं हो सकता! मेरे रहते यह नहीं हो सकता! बाप रे! यह तुम क्या करने जा रहे थे!—और उसने दरवाजा बन्द करके सिटकनी लगा दी और रंजन को खींचकर बिस्तर पर बैठा दिया।

रंजन सूखी आँखों से एकटक बुत की तरह सामने देख रहा था। उसके दिल की धड़कन जैसे रुकी जा रही थी। वह ऐसे हाँफ रहा था, जैसे कमरे में हवा ही न हो। कानों में जैसे मौत की सनसनाहट दौड़ रही हो।

—मुझे मालूम हो गया था, सब मालूम हो गया था!—रंजन का ज़ोर से दबाता हुआ सूखे गले से, टूटे हुए शब्दों में राजेन्द्र बोला

तो रहेगा। और फिर अगर पान उससे एक बार मिल भी ले, तो उसके बाद क्या होगा? यह मिलने-जुलने का सिलसिला हमेशा तो कायम रखा नहीं जा सकता।

वह गाहे-बगाहे रंजन को समझाता—छोड़ो अब यह पागलपन। समझ लो कि जिन्दगी का एक बाब खतम हो गया। अब फिर-फिरकर उन्हीं वरकों को पलटने से फ़ायदा? उनमे अब एक लफ्ज भी जोड़ने की कोशिश करना बेकार है, यह मुमकिन ही नहीं। पान की शादी हो रही है। वह अपने नये घर जायगी। उसे अब आजाद कर देना ही बेहतर है। अब ऐसा करना चाहिए कि तुम्हें भूलकर वह अपना घर बसाये और सुख से रहे।—फिर वह बड़े घरो की बात चलाकर कहता—नाहक उसकी ससुरालवालो को कोई बात मालूम हो गयी, तो उसकी जिन्दगी भी तल्ख हो जायगी। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि वह अगर तुम्हें बुलाने की बेवकूफी भी करे, तो भी तुम्हें उसकी खातिर नहीं जाना चाहिए। तुम्हें अब और चीजो की ओर मन बँटाना चाहिए। रंजन, इस दुनिया में आदमी की जिन्दगी मे, हर हालत में कोई-न-कोई चीज ऐसी जरूर होती है, जिसके लिए वह जिन्दा रह सकता है। सिर्फ़ उसे देखने, समझने और पकड़ने की ख्वाहिश आदमी मे होनी चाहिए। यह दुनिया बहुत बड़ी है और जिन्दगी ऐसी कोई नाचीज नहीं कि उसे यों बरबाद कर दिया जाय......

लेकिन रंजन यह-सब समझने की परिस्थिति मे न था। जो तीर उसके दिल में चुभा था, उसे निकाल लेना उतना आसान न था। वह कहता—जिन्दगी का एक बाब नहीं, पूरी जिन्दगी ही मेरी खतम हो गयी।—और आँखों में आँसू भरकर वह बार-बार यह शेर पढता :

उम्र दराज माँगकर लाये थे चार दिन,
दो आरज़ू में कट गये, दो इन्तज़ार में।

और आह भरकर कहता—अब तो एक ही तमन्ना रह गयी, एक बार उससे मिलने की और फिर क़िस्मत में जो हो...

यह उम्र भी क्या होती है! इस उम्र की मोहब्बत भी क्या होती

है ! जैसे चाक पर नया-नया तैयार हुआ बर्तन धूप में रखने के लिए उतारते समय कहीं अनजान में ठेंस सा जाय ।

पान की शादी में राजेन्द्र की माताजी ने उसे बुलाया था । लेकिन रंजन के बहुत जिद करने के बावजूद वह न गया । उसे डर था कि उसकी ग़ैरहाजिरी में रंजन कुछ कर न बैठे । उसका डर ग़लत न था । शादी के दिन रंजन बहुत रोया, बहुत तड़पा ।

पान की चिट्ठियाँ बराबर आती रहीं । हर चिट्ठी आहों और आंसुओं से भीगी रहती । हर चिट्ठी में बड़े विस्तार से वह लिखती कि उसपर क्या गुजरती है । और अन्त में लिखती कि वह उसे कम-से-कम एक बार मिले बिना हरगिज नहीं मरने की । देखो, वह घड़ी कब आती है ।

दशहरे और दीवाली की छुट्टियों में राजेन्द्र ने बहुत कहा कि चलो, कहीं चला जाय, मेरे यहाँ या तुम्हारे यहाँ, या कहीं भी घूम-घाम आया जाय । लेकिन रंजन तैयार न हुआ । वह एक दिन के लिए भी वहाँ से हटने को तैयार न था । जाने कब पान का बुलावा आ जाय ।

दिन योंही इन्तजार में कटते गये ।

बड़ी रात गये बड़े सरकार ऊपर आये।

शाम से ही जो उमस छायी थी, दो घड़ी रात जाते-जाते ऐसी ज़ोर की आँधी आयी कि आसमान हिल गया। खिड़की, दरवाज़े, सब बन्द कर अन्दर बैठे रहनेवालों के भी दाँतों में धूल के कण किरकिरा रहे थे और उनके नाक-मुँह जैसे धूल से भर गये थे। चौपालों में किसान आँखें मूँदे गुटमुटाकर बैठे धूल में नहा रहे थे। उनके कानों में चारों ओर से सूँ-सूँ की और दूर के बागों में पेड़ों की डालियों के चररा-चरराकर टूटने की आवाज़ें आ रहीं थीं। कुओं पर लगे ढेकुलों के बाँसों में घुस-घुसकर हवा ज़ोर-ज़ोर की सीटियाँ बजा रही थी।

उस आँधी में भी माथे पर खोरी या डलिया या चंगेर लिये किसानों और मज़दूरों और गरीबों के लड़के और लड़कियाँ बागों की ओर टिकोरे बीनने भागे जा रहे थे। किसी बूढ़े को उनके जाने की आहट मिलती, तो वह टोकता—इस आँधी में जान देने कहाँ जा रहा है ?—लेकिन कोई भी उसका जवाब न देता। आँधी-पानी से डरनेवाले ये लड़के-लड़कियाँ नहीं होते। जितने ही ज्यादा टिकोरे बीनकर ये लायेंगे, उतनी ही शाबाशी अपने माँ-बाप से इन्हें मिलेगी। टिकोरों के दो-दो फाँक करके घाम में सुखाकर खटाई बनायी जायगी, जो साल-भर खर्च होगी। पके आम पर बाग के मालिक और अगोरिये का ही हक होता है, लेकिन आँधी-पानी में गिरे टिकोरों को जो चाहे, बीन ले जाय। इसी लिए ऐसे मौके पर बागों में लूट मच जाती है। सारा खतरा मोल लेकर ये लड़के-लड़कियाँ किस तरह टिकोरे बीनते हैं, यह देखने की ही चीज है। कभी-कभी तो एक ही टिकोरे पर

दो-दो हाथ एक ही साथ पड़ जाते हैं। फिर छीना-झपटी भी होती है और लड़ाई-झगड़ा भी।

आँधी जब काफ़ी देर तक रुकने में न आयी, तो हर चौपाल में क़रीब-क़रीब यही बात चलने लगी।

—आम की फ़सल बरबाद हो गयी।

—यह तो होता ही है। जिस साल कोई फसल हुमककर आती है, कोई-न-कोई गरहन जरूर लगता है। यह मैं हमेशा से देखता आ रहा हूँ।

—इस साल आम बच जाता, तो खाये खाया न जाता। घर-घर गँधा उठता।

—वह नौबत नहीं आने की, दादा। देखो, पकने के दिन आते-आते कितने डाल पर रह जाते हैं।

जिस साल कोई भी फसल अच्छी आती है, सब लोग खुश होते हैं, जिनके होती है, वह भी, जिनके नहीं होती, वह भी। लेकिन मन-ही-मन सब डरते भी रहते हैं, कि जाने कौन-कौन आफ़त आये इस साल। आम की अच्छी फ़सल आयी देखकर कोई भी यह भविष्यवाणी कर सकता है कि इस साल खूब आँधी-तूफान आयेंगे। अच्छी रब्बी आयी, तो पाले-पत्थर का डर सभी को लगा रहता है। गन्ने की अच्छी फ़सल पर लाही का हमला न होगा, यह कोई नहीं कह सकता। इसी तरह हर फ़सल के साथ कोई-न-कोई आफ़त जुड़ी रहती है। और देखने में आता है कि अधिकतर यह बात सच होती है।

उसी तरह फ़सल बरबाद जाने पर सबको दुख होता है। फ़सल से सीधे या टेढ़े तौर पर सबका सम्बन्ध होता है। गाँवों का आर्थिक ढाँचा बहुत कर फसलों पर ही निर्भर करता है। भिखारी भी कहता है—किसान के घर होगा, तभी तो हमें भीख मिलेगी।

एक घड़ी के बाद आँधी थमी, तो रुकी हुई जिन्दगी में

गति आयी। लोग धोती और गमछा झाड़ते हुए उठे और कुओं और पोखरे की ओर चल पड़े। किनकिनाते मुँह से बार-बार थूक रहे थे और आँधी और धूल को मोटी-मोटी गालियाँ भी दे रहे थे और रह-रहकर बातें करते, और गमछे से देह भी झाड़ लेते थे। हर पगडंडी पर बातें चल रही थीं :

—भाई, भाव-दर का टूट जाना अच्छा होता है। अपने को मालूम तो रहता है, का लेना-देना है।

—सो तो है, दादा। बाकी ए हालत में और का किया जा सकता था। वो मान गया, यही बहुत है। साल खराब हुआ जा रहा था।

—लड़ाई का जमाना है, भाव तो बढ़ेगा ही। फिर जाने फसल कैसी हो। ई सब तो देखेगा नहीं। वो तो भाव देखेगा और उसी हिसाब से लगान बढ़ा देगा। उसका कोई का बिगाड़ सकता है।

—ऐसी रहजनी नहीं आयी है। पैदावार का खियाल तो हर हालत में करना ही होगा। दस आदमी हैं न, सबका मुँह कोई थोड़े ही सी सकता है।

—उस समय तुम चलकर बहस करना, मैं देखूँगा! बेकार की बात है। वो जिद पर उतर आयगा, तो देना ही पड़ेगा। जिसकी लाठी, उसकी भैंस। नियाव-अनियाव कौन देखता है?

—दादा, जमाना कुछ-न-कुछ तो बदला ही है। जमींदार भी अब जैसा चाहे, नहीं कर सकता। उसको भी अब कुछ सोचना-समझना पड़ता है। इसी बात को देखो, काहे न अपनी बात पर अड़ा रहा? काहे खेत देने का हुकुम निकाल दिया।

—हमें तो उसमें भी उसकी कोई चाल ही नजर आती है।

—हो सकता है। लेकिन यह भी तो देखने ही की बात है। पहले वो जो चाहता था, अपनी ताकत से करा लेता था। अब उसे चाल चलनी पड़ती है। नहीं, दादा, अब वैसा जोर-जुलुम नहीं चलने का।

—का कहता है तू! एक चतुरिया ने जरा-सी आवाज उठायी,

तो देखा न। भाई, अपने मतलब की बात समझाने पर आदमी तुरन्त समझ लेता है, बाकी समझ लेना एक बात है, और समझ के मुताबिक काम करना दूसरी। कितने हैं, जो चतुरिया की तरह हिम्मत से काम ले सकते हैं। सबको अपनी-अपनी पड़ी रहती है, भैया। मौका पड़ने पर सब दुम दबाकर भाग खड़े होते हैं। नहीं तो, का सरे बाजार चतुरिया को पुलीस पकड़ ले जाती और लोग मुँह ताकते रहते? कल देखना तुम, कारिन्दा के यहाँ जब भीड़ लगेगी। हमीं में से कितने उसकी मुट्ठी गरम करके चढ़ा-ऊपरी करेंगे। बड़े सरकार का हुकुम हो जाने से ही मामिला खतम न समझो। अभी दो मगरमच्छ और भी तो है, पटवारी और कारिन्दा।

—काहे न आज रात को बिटोर करके हम लोग सलाह-मसवरा कर लें। इस तरह चढ़ा-ऊपरी करने से नुकसान हमारा और हमारे भाइयों का ही तो होगा।

—यह कोई नहीं समझता, भैया। अपने-अपने गरज के लोग बावला होते हैं। आज चतुरिया होता, तो कोई तरकीब जरूर निकालता।

—कहो, तो रमेसर को बुला लाऊँ। वह भी तो कुछ समझता-बूझता है। दादा, बात आयी है, तो चुप नहीं बैठना चाहिए।

—रमेसर पर भी तो सुना है, वरन्ट है। उससे भेंट होगी?

—देखो, उसके फिराक में मैं जा रहा हूँ। मिल गया, तो ले आऊँगा। तुम इधर तैयारी कराओ।

पोखरे पर बड़ी भीड़ लगी थी। पानी मुश्किल से कमर-भर रह गया था। हर साल गर्मी में इस पोखरे की हालत खराब हो जाती है। पानी इतना कम हो जाता है, कि बड़ी-बड़ी पुराठ मछलियाँ पानी गरम हो जाने के कारण मर-मरकर उतराने लगती हैं। पानी बदबू करने लगता है। फिर भी लोग क्या करें, कुएँ-इनार पर नहाने से ... नहीं होती।

यह पोखरा और इसके पास का मन्दिर बड़े सरकार के

बनवाये थे। उनका नाम आज भी लोग बड़े आदर से लेते हैं। उनके बनवाये कई इनार भी खेतों में हैं।

नगेसर कह रहा था—सबके जमींदार-महाजन गरीबपरवर होते थे। सान-सौकत, ऐस-आराम में पैसा उड़ाते थे, तो कुछ कीरत का काम भी कर जाते थे। और अबके हैं कि परजा के लिए नया कुछ का बनवायेंगे, बाप-दादा जो बनवा गये हैं, उसकी मरम्मत तक नहीं कराते। इसी पोखरे को देखो, घाट टूट गये, मिट्टी भर गयी, गरमी में सूखने-सूखने को हो जाता है। यह नहीं होता कि हजार-पान सौ खरच करके घाट ठीक करा दें, मिट्टी निकलवा दें। लोगों को नहाने-धोने का आराम हो और बाप-दादा की कीरत कायम रहे, नाम चले।

इसपर बूढ़े खेलावन ने कहा—वह जमाना गया। अब तो जो आये घर गोलक में। न धरम-करम की फिकिर, न भगवान का डर। पहले ऐसा नहीं था, भैया। भगवान किसी को देता था, तो वह कुछ धरम-कीरत जरूर कर जाता था। लोग उसका जस गाते थे। लेकिन अब तो जिसके पास जितना ही जियादा आता जाता है, वह उतना ही पिसाच होता जाता है और यही चाहता है कि सबका नोच-खसोटकर अपना ही घर भर ले।....बड़े सरकार को ही देखो, तीन तो खानेवाले परानी हैं, फिर भी जो मिलता है, उससे सबुर नहीं, लगान तिगुना करने जा रहे थे।

—लेकिन आज तो बड़े सरकार ने हुकुम दे दिया है।

—हां, हां, हुकुम दे दिया! अरे, किसी को तरसाकर, तड़पाकर दिया हो, तो का दिया? और फिर उसमें एक पख भी तो लगा दिया है। भैया, हमे तो बड़े आदमियो के ईमान पर, बात पर बिसवास नहीं रहा। जाने साल में का सिर पर पड़े। इससे तो अच्छा कि कोई दर-माव ही टूट जाता। मन में एक संका तो न बनी रहती।

नगेसर ने कहा—कहीं बिटुरकर राय-बात कर ली जाय, तो कैसा?

खेलावन ने कहा—तुम लोगो का खून जवान है। आगे बढ़कर कुछ करो। हम बूढ़ो से का पूछते हो। भुगतना तो तुम्हीं लोगों को है। हम

लोग तो जिनगी का नरम-गरम देख चुके।

जहां देखो, कोई भी बात शुरू होकर इसी बात पर आकर टूट रही थी।

*

खाने-पीने के बाद आधी रात के करीब गाँव के बाहर पूरब के बाग में बिटोर हुआ। सब सहमे हुए थे। फिर भी रमेसर के आने की खबर पाकर आ गये थे। वरन्ट रहते भी वह आ रहा है, तो वह कैसे न आयें ?

गिरी हुई डालें हटाकर लोग पत्तों पर बैठे हुए थे। जरा भी हिलने से सूखे पत्ते चरमरा उठते थे। कइयों के मुँह से लगी हुई बीड़ियाँ जुगनुओं की तरह अँधेरे में रह-रहकर जल-बुझ रही थीं। हुक्के-चिलम का इन्तजाम न होने के कारण बूढ़े भी माँग-माँगकर बीड़ी का ही कश ले रहे थे और खांस रहे थे और शिकायत कर रहे थे कि तुम लोग बीड़ी कैसे पीते हो, हुक्के की बात ही और है। कुछ लोग फुसफुसाकर बातें कर रहे थे। जितने मुँह उतनी बातें। सब अपनी-अपनी अकल लड़ा रहे थे।

रमेसर के आने में देर होने लगी, तो सभी रामपती से पूछने लगे —वह आयगा भी कि यों ही बिटोर कर लिया ?

रामपती ने कहा—देर-अबेर से आयगा जरूर। उसने अपने मुँह से कहा है।

—कहीं न आये, तो ?

—कोई अड़चन पड़ने से वह न भी आ सका, तो हमें खुद राय-बात कर लेनी चाहिए, उसने यह भी कहा है।

—कोई भी काम पाँच आदमियों की राय-बात से करना अच्छा होता है।—नगेसर ने कहा है।

—तो बात सुरू करो। अब तो बड़ी बेर हो गयी।

—थोड़ी देर तक और इन्तिजार कर लेना चाहिए।

तभी दक्खिन की ओर से कुछ लोगों के आने की आहट मिली और

गीना ने दौड़ते हुए आकर कहा—वो लोग आ गये हैं।

सब उठकर खड़े हो गये। रामपती और नगेसर आगे बढ़े आये। आगे-आगे दुवला-पतला, नाटा, साँवला, गाढ़े का कुरता-पैजामा पहने बीस साल का रमेसर और उसके पीछे-पीछे दस जवान कन्धे पर लट्ठ लिये आ पहुँचे। जुहार-उहार के बाद काम शुरू हुआ।

रमेसर ने कहा—रामपती से हमको यहाँ का सब हाल मालूम हो गया है। आप लोगों ने यह बिटोर करके बहुत अच्छा किया. दूसरे गाँवों में भी ऐसा ही हो रहा है। काम करने का यही सही तरीका है। जब भी गाँवदारी का कोई सवाल उठे, या किसी पर भी कोई जोर-जुलुम हो, तो हमें चाहिए कि हम मिल-जुलकर बैठें, उस सवाल पर बातें करें, बहस करें और खूब सोच-समझकर कोई कदम उठायें। गाँवदारी के मामिले से सबका बराबर का सम्बन्ध होता है, उसका बुरा-भला नतीजा सबको भुगतना पड़ता है। गाँवदारी या बिरादरी के मामिले पर हम लोग आसानी से इकट्ठा हो जाते हैं और मिल-जुलकर कोई-कोई काम भी करते हैं। यह बहुत अच्छा है। लेकिन किसी अपने भाई पर जब कोई मुसीबत आ पड़ती है, उसपर जमींदार, महाजन, पटवारी, कानूनगो या पुलीसवाले कोई जुलुम करते हैं, तो उसकी कोई मदद हम नहीं करते, उसके पच्छ में हम एकजूट होकर नहीं उठते। बलुक, मैं तो यहाँ तक भी कहना चाहता हूँ कि हममें से बहुत-से ऐसे हैं, जो अपने भाई का भी गला दबाने के लिए तैयार रहते हैं, खेतों पर चढ़ा-ऊपरी करते हैं, कारिन्दे, पटवारी और कानूनगो की मुट्ठी गरम करके, सलामी देकर अपने भाई का भी खेत हथिया लेते हैं, पुलीस के डर से भाग खड़े होते हैं, डाँड़-मेंड़ के लिए आपस मे सिर-फुड़ौवल करते है, अपने ही भाई का खेत काट लेने, उसके खेत में गोरू छोड़ देने मे भी नहीं हिचकते।....ये सब बहुत ही बुरी बातें हैं। ऐसा करते समय हम नहीं सोचते कि एक दिन वही मुसीबतें हम पर भी आ सकती हैं, बलुक जरूर आती हैं। ऐसा कोई है यहाँ, जो खड़ा होकर कह सकता है कि एक-न-एक दिन उसपर कोई ऐसी

मुसीबत न पड़ी हो, जिसपर जमींदार या कारिन्दा या पटवारी या कानूनगो या पुलीस ने जुलुम न ढोड़ा हो, जिसका खेत किसी अपने भाई ने चढ़ा-ऊपरी करके न हथिया लिया हो? यह तो, भइया, जुलुम का पहिया है, जो हमेशा घूमता रहता है, कभी हम चपेट में आ गये, तो कभी तुम। इससे का कोई कभी बच सकता है? हाँ, बचने का तरीका बस एक है। वो ये कि जितने मजलूम हैं, सब एकजूट होकर उठ खड़े हों और अपनी पूरी ताकत से उस पहिये को ही पकड़कर तोड़ डालें।

—भाइयो! तो पहली बात मैं यही कहना चाहता हूँ कि आप लोग आपस में एका कायम करें। अपने भाई का दुख-दर्द अपना दुख-दर्द समझें। किसी पर किसी भी तरह की मुसीबत पड़े, तो आप में से हर एक उसे अपनी ही मुसीबत समझकर उसकी पीठ पर हो जाय। दस-पाँच की लाठी एक आदमी का बोझ। फिर इतने आदमी किसी जालिम का मुकाबिला करने के लिए तैयार हो जायँ, तो कौन हमारा बाल बाँका कर सकता है? लेकिन यह कोई आसान काम नहीं है। इसके लिए हममें से हर एक को कुछ-न-कुछ कुरबानी करनी पड़ेगी, तकलीफ उठानी पड़ेगी, स्वारथ छोड़ना पड़ेगा, दिल को बड़ा करना पड़ेगा, खतरा मोल लेना पड़ेगा। लेकिन मैं सच कहता हूँ कि अगर आप पूरी गहराई से एके का मतलब समझ लें, उसकी ताकत को समझ लें, उससे होनेवाले फायदों को समझ लें, तो कोई भी खतरा आप हँसते-हँसते उठा सकते हैं। यह याद रखिए कि दुनिया में कोई बड़ा काम खतरा उठाये बिना नहीं होता, और मैं कहना चाहता हूँ कि हमारा एका आज हमारा सबसे बड़ा काम है, क्योंकि इसी एके से हम अपने दुसमनों को हरा सकते हैं, सभी जुलुम खतम कर सकते हैं। इसलिए, भाइयो, आप इसपर दिल से गौर करें, और जिससे जितना बन सके, इस एके के लिए करे।

—मुझे यह जानकर खुसी हुई कि आप लोगों को कल खेत मिल जायँगे। मुझे यह भी मालूम है कि किस सर्त पर खेत मिल रहे हैं। फिर

भी इसके बारे में जियादा सोचने-समझने का समय हमारे पास अब नहीं है। असाढ़ आ गया। अब जरा भी देर करना ठीक नहीं। आप खुसी से कल अपने-अपने खेतों पर हल चलाइए। समय आयगा, तो लगान के बारे में भी सोचा जायगा। उस समय भी अगर आप लोगों में एका रहेगा, तो मैं देखूँगा कि जमींदार कैसे बेमुनासिब लगान वसूल कर लेता है।

—मैं ये कह रहा हूँ, फिर भी आप ही लोगों की तरह मेरे मन में भी सका है कि साल पर जमींदार जरूर कोई-न-कोई तीन-पाँच करेगा। अब जमाना ही ऐसा आ गया है कि हर बड़े आदमी का सुभाव अजीब हो गया है। वह अजीब तरह सोचता है, अजीब-अजीब बिचार रखता है, अजीब-अजीब तिकड़मों से अपना काम निकालता है। उसके लिए झूठ बोलना, धोखा देना, मक्कारी करना जरा भी मुसकिल नहीं। उसके लिए झूठ-झूठ नहीं रह गया है। वह समझता है कि कुछ भी हो, उसका कोई का बिगाड़ सकता है। वह झूठ को भी सच और सच को झूठ कर सकता है।....लेकिन, भाइयो! यही बात ये भी बताती है कि उसके गिरने का समय आ गया है। झूठ की गाड़ी बहुत दिनों तक नहीं चलती। सचाई और नियाव के आगे उसे झुकना ही पड़ता है। सचाई और नियाव हमारे पच्छ में है।....हमे तो उसका मुनासिब लगान देने से कोई इनकार नहीं।

—हाँ, एक बात का हमें धियान रखना होगा। कारिन्दा और पटवारी अपनी तिकड़म से बाज न आयेंगे। वो हर तरह अपना उल्लू सीधा करने और हमें बेवकूफ बनाने की कोसिस करेंगे। वो आपस में हमें एक-दूसरे के खिलाफ खड़ा करेंगे। एक से लेकर दूसरे का गला काटेंगे, और दूसरे से लेकर तीसरे का। इसलिए आप लोगों से मैं कहना चाहता हूँ कि आप लोगों के नाम जो खेत हैं, उन्हीं से आप सबुर करें, सलामी या घूस देकर दूसरे भाई के खेत पर चढ़ा-ऊपरी न करें। आखिर आप-सबकी रोटी का सहारा तो खेत ही है। अगर होकर काम

रेंगे, तो यह गैरवाजिब सलामी और घूस तो आप तुरन्त ही खतम कर
कते हैं।

बालदेव खड़ा होकर बोला—बहुत-से खेत तो बनियों के नाम पहले
बन्दोबस्त कर दिये गये हैं। हमारा, जोखू का, बड़ाई का और भी
ई के खेत इसी तरह निकल गये हैं।

—हाँ, हाँ, हम का करें ?—बड़ाई बोला।

—यह हमको नहीं मालूम था। ऐसा अगर हुआ है, तब तो बुरा
हुआ है। बनिये खेत का करेंगे ?

—जहाँ मच्छर लगेंगे, घुआँ करेंगे !—झुंझलाकर जोखू बोला।

—दादा, तुमको गुस्सा कोई बेमुनासिब नहीं आ रहा है। मैं भी
किसान ही हूँ, जानता हूँ कि धरती निकल जाने से किसान का का हाल
होता है। मगर एक बात तो बताओ। यह खेत उनके नाम कैसे बन्दो-
बस्त हो गये ?

—लम्बी-लम्बी सलामी देकर, और कैसे ?—महंगू बोला।

—ये बनिये बहुत पैसेवाले हैं का, काका ?

—अरे, बहुत पैसेवाले न हों, तो भी हम उनका मुकाबिला का
खाके कर सकते हैं। सड़लो तेली तो एक अधेली।

—मुकाबिला करने-लायक होते, तो करते न, काका ?

—काहे न करता ? जीते-जी खेत हाथ से निकल जाते और मैं
मुँह ताकता रहता ?

—और तुम्हारे पास कुछ और पैसे होते, तो और भी खेत रिसवत
देकर लेते न, काका ?

—काहे न लेता ? किसान को का खेत से भी कभी सबुर होता है !

—तब उन बनियों को दोस देने का मुँह हमारे पास कहाँ है ?

थोड़ी देर के लिये खामोशी छा गयी। सब सिर झुकाये बैठे हुए
खुर्राट महंगू की ओर देख रहे थे।

अब अधेड़ बड़ाई बोला—दोस देने की बात यह है कि जिसका
जो काम हो, वो करे। हम तो दुकानदारी लगाने नहीं जाते !

—हाँ। तुम ठीक कहते हो, चाचा। लेकिन एक बात और बताओ। अपने पैसे के बल पर जिस गरीब किसान का खेत चढ़ा-ऊपरी करके तुम ले लेते, जब वह किसान तुमसे यही बात, जो तुमने अभी बनिये के बारे मे कही है, कहता, तो तुम का जवाब देते ?

फिर खामोशी छा गयी।

अब बूढ़े जोखू ने कहा—तुमसे बहस में हम पार नहीं पा सकते, बेटा। हममें इतनी अकल होती, तो काहे को तुम्हे यहाँ बुलाते ? अब तुम हमारे लिए कोई रास्ता निकालो। यह महंगू तो पागल हो गया है। खेत निकल गये, दो-दो बेटे पकड़कर लड़ाई पर भेज दिये गये, घर में दो-दो बहुएँ हैं, मेहरी बीमार पड़ी है।....

महंगू अचानक फूट-फूटकर रोने लगा। आस-पास बैठे हुए लोग उसे चुप कराने लगे, सहानुभूतिपूर्ण शब्दों में धीरज बँधाने लगे—चुप रहो, काका, कोई अकेले तुम ही पर यह बिपदा थोड़े पड़ी है।...मेरे भाई को भी तो पकड़े ले गये....मत रोओ, भैया, रोने से का होगा ? हम लोग हैं न। ..आरे, हाँ बिपदा पड़ी है, वो कटेगी न !....

महंगू आँखें पोंछकर सिसकने लगा।

रमेसर बोला—हमको बड़ा अफसोस है, काका। लेकिन का किया जाय और का कहा जाय। अकेले तुम्हारी ही हालत तो ऐसी नहीं है। इसी गाँव में तुम्हारे ही जैसे अनेक होंगे। हर गाँव का यही हाल है। सबको गुस्सा है, सबको दुख है। लेकिन रोने से तो कोई फायदा नहीं होगा। जो आ पड़ा है, उसे हिम्मत के साथ काटना है। तुम मेरे बाप के बरा-बर हो, मैं तुम्हें समझाऊँ भी, तो कैसे ?

—लेकिन एक बात जरूर कहूँगा। तुम्हे ठीक-ठीक समझना चाहिये कि इस दुख का कारन का है, किसने तुम्हें इस बिपदा में डाल दिया है ? इसके जवाब मे मैं कहूँगा कि ये जमीदार हैं, ये लड़ाई है, जिनके कारन आज हजारों पर इस तरह की बिपदा आ पड़ी है, वो बनिये नहीं, जिनपर तुम्हें गुस्सा है। काका, जरा गौर तो करो कि आज का हाल हो रहा है। कस्बे का वह बाजार, जिसमें बनियों की

छोटी-बड़ी सैकड़ों दुकानें चलती थीं, जिसमें चारों ओर गल्ला और दूसरे सामान भरे-भरे रहते थे, जहाँ हजारों की भीड़ होती थी, अब उसकी का हालत है। तुमने भी तो देखा होगा, काका, जैसे ताउन आने पर गाँव उजड़ जाते हैं, वैसे ही बाजार उजड़ गया है। दुकानदारों की दुकानें खाली हो गयी हैं। यह लड़ाई भी एक भयंकर ताऊन ही है, काका। यह लड़ाई न होती, तो तुम्हारे बेटे लड़ाई पर काहे भेज दिये जाते, उन बनियों की दुकानदारी बनी रहती, तो वो खेतों पर काहे को टूटते ? इस समय उनके पास कुछ पैसा है, अगले साल देखोगे कि वो भी तुम्हारी ही पाँत में आ जायेंगे। लोगों का यह ख़ियाल है कि खेतों की पैदावार की कीमत बढ़ जायगी, इस लिये सब लोग खेतों पर टूट रहे हैं। और हर जमींदार सलामी और लगान बढ़ाने की फिकिर में है। लोगों को यह मालूम नहीं कि जो रुपया पैदावार बेंचकर मिलेगा, उससे वो कितना सामान खरीद सकेंगे, उसकी खरीदने की ताकत कितनी घट जायगी। यह लड़ाई चलती रही, काका, तो तुम देखोगे कि कैसा महँगी, कहत और भुखमरी पड़ती है।

—तो, काका, बनियों पर का गुस्सा थूक दो। मैं जानता हूँ कि वो हल की मुठिया नहीं पकड़ सकते। वो तुम्ही में से किसी न-किसी को आधा-बटाई पर देंगे। अब मुझे कहना यह है कि जिनके खेत बनियों ने लिये हैं, उन्हें ही उन खेतों को बटाई पर लेने दिया जाय। कोई दूसरा किसान उनपर चढा-ऊपरी न करे। इस साल इसी तरह चलने दिया जाय। आगे देखा जायगा।

—और किसी को कुछ पूछना है ?

नगेसर ने कहा—हाँ, भाई. सब लोग इसी समय समझ-बूझ लो। आगे कोई गड़बड़ी नहीं होनी चाहिए।

फिर भी कोई कुछ न बोला, तो रमेसर ने सीधे सवाल किया—आप में से कोई चढा-ऊपरी अब नहीं करेगा न ?

"नहीं" की आवाज आयी।

—कारिन्दे को कोई घूस नहीं देगा न ?

—नहीं।

—तो अब मैं आगे बढ़ता हूँ। एक-दो बात मुझे अपनी भी कहनी है। मैंने पहले ही बताया था कि अपने किसी भाई पर कोई मुसीबत आ पड़े, तो हम-सबको जो बन सके, उसकी मदद करनी चाहिए। चतुरी और हमारे एकइस साथी और जेल में डाल दिये गये हैं। छै बाजार में गिरफ्तार हुए थे, बाकी अलग-अलग। सरकार बिना कोई मुकद्दमा चलाये उन्हे जब तक के लिये चाहे बन्द रखना चाहती है। आप जानते हैं, यह लड़ाई का जमाना है। सरकार ने वो-वो कानून बना लिये हैं, कि जिनके मातहत वो जो चाहे कर सकती है, छुट्टे साँढ का हाल है। और पुलीस को तो आप जानते ही है। पुलीस को किसी भी जुर्म या मुजरिम के बारे में सचाई मालूम करने की चिन्ता उतनी नहीं होती, जितनी कि तुरन्त किसी-न-किसी को पकड़कर उसपर झूठ-सच जुर्म आयद कर अपनी कारगुजारी दिखाने की होती है। जमींदारों के साथ साजिस कर पुलीस ने वही बात हमारे साथियो के साथ की है। वे हमारे जाँबाज बेहतरीन साथी हैं, इन कठिन दिनों में उनका हमारे बीच रहना जरूरी है। तो उनके लिये हमारा भी तो कोई फरज होता है। हम उनकी ओर से कचहरी में अरजी देना चाहते हैं। इसमें कुछ खर्च होगा। हमें इस खर्च का इन्तिजाम करना है। हम जानते हैं कि हम गरीब हैं, हमारे पास कुछ भी नहीं है। फिर भी अपने भाइयों के लिए हमें हर तकलीफ उठाकर जो भी बन पड़े, करना है। हम चाहते हैं कि इस काम को आप-सब अपने खाने-पीने की ही तरह जरूरी समझें और जिससे जितना बन पड़े, सेर-आध सेर अनाज, गुड़ या जो भी हो जरूर दे। यहाँ नगेसर, रामपती, नगीना वगैरा इस काम का बीड़ा उठायें।

—और हाँ, चतु[illegible] भी यह[illegible] किसी-न-किसी को आगे [illegible] [illegible] रहनी चाहिए। आप लोगों [illegible] चाहिए [illegible] हफ्ते में दो [illegible]

बड़े सरकार ऐशगाह की ओर जाते कहते गये—जल्दी नहाने का इन्तजाम कर।

लैम्प की मद्धिम हरी रोशनी में हर चीज पर जमी हुई गर्द की परत देखकर बेंगा होंठों में ही बुदबुदाया, बैठे-बैठाये एक काम और बढ़ गया। अब खिड़की-दरवाजे तो बन्द थे, ई इतनी गर्द साली यहाँ कैसे आ गयी!

वह झाड़न उठाने ही वाला था कि अन्दर से आवाज आयी—अबे, कहाँ रह गया?

बेंगा दरवाजा भेंडकर अन्दर भागा। ओरियानी से लटकी बड़ी लालटेन का शीशा गर्द और धुएँ से धुँधला हो गया था। बेंगा उसे साफ करने के लिए उतारने लगा, तो बड़े सरकार कड़ककर बोले—पहले नहाने का इन्तजाम कर!—और वह खाँसने लगे।

बेंगा दौड़कर उगालदान ला, उनके सामने खड़ा हो गया। बड़े सरकार ने जोर से खँखारा, गला धूल से जकड़ गया था। उन्होंने वहीं स्टूल पर उगालदान रखने का इशारा कर दिया।

—नहानघर में इन्तिजाम करें, बड़े सरकार?—जाते हुए बेंगा ने पूछा।

—नहीं, चबूतरे पर।

बेंगा ने छोटी चौकी ओसरे में से उठाकर आँगन के चबूतरे पर ला रखी। उसे अंगोछे से खूब झाड़-झाड़कर साफ़ किया। फिर दो बाल्टी में कल से पानी भरकर चौकी के पास रखा। और तेल, साबुन, तौलिया और लोटा हाथों में लिये बड़े सरकार से कहा—तैयार है, बड़े सरकार।

बड़े सरकार पैर लटकाकर चौकी पर बैठ गये। बेंगा ने जूते निकाल दूर चबूतरे के किनारे और खड़ाऊँ लाकर चौकी के नीचे रख दी। बड़े सरकार तब पलथी मारकर बैठ गये और दोनों हाथ ऊपर कर दिये। बेंगा कुरता, फिर बनियाइन निकालकर कमरे में रख आया।

और लौटकर बाल्टे से लोटे-लोटे पानी निकाल बड़े सरकार के सिर पर उँड़ेलकर उनकी देह मलने लगा।

—ज़रा ज़ोर लगाकर मल। तेरा तो ज़ोर ही न जाने कहाँ चला गया है।—हाथ फैलाते हुए बड़े सरकार बोले—अबे, आज-कल खाता नहीं क्या ?

—खाता काहे नहीं, बड़े सरकार,—जोर लगाते हुए बेगा बोला।

—तो फिर सब कहाँ चला जाता है ?

—अब का बताऊँ, बड़े सरकार।

—काम में भी, देखता हूँ, आज-कल तेरी तबीयत नहीं लगती ?

बेगा चुप रहा।

—बोलता काहे नहीं, बे ?

—का बताऊँ, बड़े सरकार, जब से चतुरिया......

बड़े सरकार हँस पड़े। बोले—वही तो मेरा भी खयाल था। लेकिन उसके लिए कोई क्या कर सकता है ? आदमी जैसा करता है, सामने आता है। तुझसे मैंने कहा था कि नहीं ?

—कहा था, बड़े सरकार।

—तो फिर तुमने उसे क्यों न रोका ? क्यों वह किसानों को बरगलाता फिरता था ?

—अब का बताऊँ, बड़े सरकार। मैंने तो उसे बहुत मना किया था। वह किसी के बहकावे में आ गया होगा, बड़े सरकार। अबकी सरकार उसे माफ कर देते, तो मैं जिनगी-भर सरकार का गुन गाता। पाँच में यही तो एक बचा है, बड़े सरकार। कितने बड़े-बड़े होकर मेरे तीन बेटे और एक बेटी मर गये। ले-देके एक यही तो रह गया है। जब से वह जेहल भेज दिया गया है, चतुरिया की माई ने दाना-पानी नहीं छुआ।

—अरे, तो इसमे हम क्या कर सकते हैं ? पुलोस का मामिला है।

—हम पुलीस को का जानें, बड़े सरकार। हमारे माई-बाप तो सरकार हैं। सब लोग यही कह रहे हैं कि अगर बड़े सरकार चाहें, तो

चतुरिया आज छूटकर आ जाय। अबकी मेहरबानी कर दीजिए, माई-बाप।

—और भी तो कुछ लोग कहते होंगे?

—और लोग कुछ नहीं कहते, बड़े सरकार। सब यही कहते हैं, बड़े सरकार की मेल-मुलाकात बड़े-बड़े अफसरों के साथ है। एक बार भी बड़े सरकार जबान हिला दें, तो कोई भी नाहीं नही कर सकता। बड़े सरकार के हाथ में बड़ा पावर है।

—लोग यह नहीं कहते कि हमने ही उसे पकड़वाया है?

—नाहीं, बड़े सरकार, झूठ काहे को कहूँ, यह बात कोई कैसे जबान पर ला सकता है? लोग जानते नही कि मैं किस दरबार का नौकर हूँ। पुस्तों से जिस दरबार का नामक हम खाते आये हैं, हम किसी की ऐसी बातों पर बिसवास कर सकते हैं? और अगर कोई कहे भी, तो का हुआ, हम तो बड़े सरकार को जानते हैं।

—जरा सिर में अच्छी तरह साबुन लगा। बहुत गर्द भर गयी है।

—बहुत अच्छा, बड़े सरकार।....छोटे सरकार की कामियाबी की खुसी में जलसा होने जा रहा है। बड़े सरकार कह रहे थे कि इसमें सभी अफसर भी आयेंगे। इसी मौके पर बड़े सरकार किसी से जरा कह देने की तकलीफ उठाते। हमारा और कौन है, बड़े सरकार!

—क्यों, शिवप्रसाद बाबू के यहाँ तो तुम गये थे।

—लोगों के कहने से गया था। बिपदा के मारे को होस नहीं रहता, बड़े सरकार। जो भी कुछ कह देता है, वही वह करने के लिए दौड़ता है। झूठ काहे को बोलूँ, बड़े सरकार से, गया था उनके पास। लेकिन सरकार तो जानते ही हैं, वो चतुरिया के जानलेवा दुसमन हो गये हैं। बिगड़कर बोले, जो चारों ओर मुझे बदनाम करता फिरता है, उसके लिए मैं कुछ नही कर सकता। बहुत हाथ-पाँव पकड़ा, बरसों की चतुरिया की सेवा का हवाला दिया, तो वो बोले, मैं चाहूँ भी तो का कुछ कर सकता हूँ? कांग्रेस का अब राज नहीं रहा। मैं तो

खुद ही जेल जाने की अब तैयारी कर रहा हूँ ।....यह-सब बहाना था, बड़े सरकार । मुझे बहुत अफसोस हुआ कि काहे मैं उनके पास गया । गैर कोई का मदद करेगा, बड़े सरकार ? जो भी हो, सरकार अपने हैं, गुस्सा हों वो, खुस हो तो, सरकार ही तो हमारे माई-बाप है । बड़े सरकार, मैं आपके पाँव छूकर कहता हूँ, सरकार उसे छोड़वा दें, तो जिस दिन वह आयगा, उसी दिन मैं उसका हाथ पकड़कर सरकार के पाँवों में उसे लाकर पटक दूँगा । सरकार की मरजी में जो आये, उसके साथ करें, जो चाहे अपने हाथ से उसे दण्ड दें । चाहें तो उसकी तिक्का-बोटी कर डालें । मैं कुछ न कहूँगा, बड़े सरकार । सरकार हमारे माई-बाप हैं, हम गलती करें, तो सरकार न सजा देंगे, तो कौन देगा ? अबकी बार उसे छुड़ा दें, माई-बाप !

—तेल नहीं लगेगा । देह पोंछ ।

बड़े सरकार का सिर, गर्दन, पीठ, पेट और बाँहें पुंछ गयीं, तो वह खड़े हो गये । बेंगा झुककर उनके पैर पोंछने लगा ।

—एक बात कर, तो शायद वह छूट जाय ।

—हुकुम करें, बड़े सरकार ।

—उससे लिखकर माफी मँगा दे ।

—यह मैं उससे कैसे करा सकता हूँ, बड़े सरकार ? उससे मेरी भेंट कैसे हो सकती है ? जिला जाऊँगा, तो कई दिन लग जायेंगे । सरकार की खिदमत कौन करेगा ? फिर वहाँ उससे भेंट हो, न हो ।

—मैं इसके बारे में सोचूँगा । ..कपड़े निकाला है ?

—अभी निकालता हूँ, सरकार ।

—यही तो कहा था, आजकल तेरा मन जाने कहाँ रहता है । चल, जल्दी कर !

बड़े सरकार धोती बाँध चुके, तो बेंगा ने उन्हें बनियाइन और कुर्ता पहनाया । बाल ठीक कर, मूँछ सँवारकर, बड़े सरकार कुर्सी पर बैठ गये, तो बेंगा ने इत्र की शीशी खोल, फाया बनाया और सरकार के कान में खोंस दिया । फिर रगड़-रगड़ कर उनके पाँव पोंछ जूते ला

पहना दिये । तब बड़े सरकार बाहर निकलते हुए बोले—पान ला ।

—बाहर बैठने का इन्तिज़ाम कर दूँ ?

—नहीं । पान जल्दी ला ।

बड़े सरकार बाहर आ सहन में टहलने लगे ।

थोड़ी देर के बाद कारिन्दा और पटवारी आ पहुँचे । अदब से सलाम करके वे एक ओर खड़े हो गये ।

टहलते हुए ही बड़े सरकार ने कहा—मंगल को जलसा है । सब इन्तज़ाम ठीक-ठीक होना चाहिए । सब आदमियों को कल ही हल्दी भेजवा दो, कुर्बजवार के रऊसान के लिए कल दावतनामा छपकर आ जायगा । उन्हें भी तुरन्त भेजने का इन्तज़ाम हो जाना चाहिए ।

—सब हो जायगा, बड़े सरकार । इस वक्त हम एक अरज लेकर आये थे ।—कारिन्दे ने कहा ।

—कहो ।

—सुना है, बड़े सरकार ने खेतों के बारे में हुकुम दे दिया ।

—हाँ, सब कारकुनान को हुक्म दे दो । पार साल जिसकी जोत में जो खेत था, उसे मिल जाय ।

—बड़े सरकार ने यह क्या किया ! थोड़े दिन और बड़े सरकार चुप रहते....

—अब यह सब बातें बेकार है । जो कह दिया कह दिया ।

—हज़ारों की सलामी...

—मेरे बेटे पर न्योछावर है । मालूम है, छोटे सरकार लड़ाई पर जा रहे हैं । इस वक्त मैं किसी की भी बददुआ लेना नहीं चाहता । मेरे हुक्म की तामील हो !

—अब सरकार से मैं क्या कहूँ ? हर साल खेतों की अदला-बदली ज़रूरी होती है ।

—इसके बारे में अब मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहता । मेरे जिस्म में अभी पुरखों के खून का कुछ असर बाकी है । बात मुँह से निकल गयी ।

—बड़े सरकार,—पटवारी बोला—हम गरीबों का भी कुछ खयाल है। यही बर-बन्दोबस्त का वक्त होता है, जब सरकार के तुफ़ैल में हमे भी चार पैसे मिल जाते हैं। आखिर हमारे भी बाल-बच्चे है। हमारा गुज़र कैसे होगा ? तनखाह तो, सरकार जानते ही हैं, हमें क्या मिलती है। शुरू साल ही खाली चला जायगा, तो हम बेचारे ही मर जायेंगे।

—अब तो मजबूरी है, मुंशीजी। आपकी आमदनी के हजार रास्ते हैं। गोजर का एक गोड टूट जाने से क्या होता है ?

—अब सरकार से मैं क्या दलील करूँ, सुना है, परती का बन्दोबस्त भी सरकार ने रुकवा दिया।

—हाँ, फिलहाल।

—लेकिन उसके लिए तो कितने हमारे पास रोज दौड़ रहे हैं, कई असामी कानूनगो साहब को सलामी भी दे चुके हैं।

—कानूनगो साहब से मैं बातें कर लूँगा।

—बड़े सरकार,—कारिन्दा बोला—एक बात और है।

—कहो।

—कुछ खेत बनियों के नाम बन्दोबस्त हो चुके हैं, उनका क्या होगा ?

—जो हो गये, हो गये।....मुंशीजी आप रात को ठहरेंगे ?

—कोई काम हो, बड़े सरकार, तो क्यों न ठहरूँगा ? क्या बतायें, इस साल हमें खासी अच्छी रकम की उम्मीद थी सरकार के इलाके में।

—मुंशीजी, किसी जमाने में हमारे पुरखे किसी मौके पर साल-साल-भर का लगान माफ कर देते थे। हमने तो महज सलामी ही माफ़ की है। छोड़िए उस बात को। कुछ तहसीली की कहिए।

—कोई खास बात नहीं है। बस, लड़ाई की गर्मागर्मी है। रोज नये-नये हुक्म जारी हो रहे हैं। सुना है, डिप्टी साहब दौरे पर आने वाले हैं। हर इलाके में लड़ाई में मदद पहुँचाने के लिए मातबर लोगों कमिटियाँ बनायी जायँगी।

—हम जलसे में सब अफ़सरों को बुला रहे हैं।

—तब तो सब बातें मालूम हो ही जायेंगी।

—अब भोजन करके यहीं सो रहिए।...बेंगवा!

बेंगा पान की तश्तरी लिये एक ओर खड़ा था। सामने आ उसने तश्तरी बढ़ा दी। बड़े सरकार पान के बीड़े उठाते हुए बोले—पुजारी जी से कह आ, मुंशीजी भी भोजन करेंगे।

—खटाई के लिए थोड़े आम...—पटवारी ने कहा।

—हाँ, हाँ, कल भेजवा देंगे। कानूनगो साहब के यहाँ भी अचार के लिए आम भेजवाने हैं, अच्छी याद दिलायी आपने।

*

आँधी के बाद सबने मिलकर पूरी हवेली की सफ़ाई की।

बदमिया जितनी खुश थी, सुनरी उतनी ही उदास। बदमिया की छोटी-छोटी, तेज आँखों में दबायी हुई खुशी खेल रही थी और सुनरी की बड़ी-बड़ी, स्याह आँखों मे दबायी हुई व्यथा चुपके-चुपके रो रही थी।

सबको सफ़ाई करने का हुक्म देकर, मुँदरी जब रानीजी के साथ नहानघर में चली गयी, तो बदमिया हाथ में झाड़ू लिये मटकती हुई सुनरी के कमरे में पहुँची। सुनरी अँधेरे में टेहुने पर ठुड्डी रखे हुए बैठी बिसूर रही थी। उसे आज सब बातें याद आ रही थीं। भोली सुनरी ने सबकी आँखें बचाकर अपना एक महल उठाया था। पिछले साल अचानक लल्लन ने सुनरी के अनजान में ही इस महल की नींव डाली थी। सुनरी उस वक्त सहम गयी थी, उसकी समझ में ही कुछ न आया था। लेकिन लल्लन जब चला गया, तो सुनरी के दिल को कुछ ऐसा हुआ कि उसकी समझ में सब आ गया। वह बार-बार आईने में अपने होंठ देखने लगी। ऐसा करते वक्त उसे एक अजीब-सा सुख मिलता, उसे हमेशा लगता कि अचानक पीछे से आकर लल्लन ने उसे दबोच लिया है और उसके सहमे होठों पर अपने अंगारे की तरह दहकते लाल होंठ रख दिये हैं और उसके होंठ छन्न-से जल गये हैं। उस दिन होंठ बड़ी देर तक

सैमाते रहे थे, वह बार-बार उन्हें दांतों से काटती रही थी। और जीभ से तर करती रही थी। उसे डर लगा था कि कहीं फफोले न पड़ जायें, कहीं जलने के दाग न पड़ जायें।

एक दिन सुबह सुनरी तिपाई पर जलपान रख रही थी, कि अचानक लल्लन ने पीछे से आकर उसे दबोच लिया था और उसके होंठ चूम लिये थे।

और उसके बाद जब देखो, लल्लन सुनरी को आवाज़ दे रहा है। सुनरी के कान में जब भी लल्लन की आवाज़ पहुँचती, उसका कलेजा धक-से कर जाता, जान सूख जाती। लेकिन छोटे सरकार की आवाज़ को अनसुनी करने की हिम्मत किसमें थी? उसे जाना ही पड़ता। दरवाजे पर खड़ी हो, घूंघट जरा खींच, वह सूखे स्वर में कहती—का हुकुम है, छोटे सरकार?

लल्लन मुस्कराता हुआ उसकी ओर देखता। फिर जरा रोब से कहता—अन्दर आओ, वहाँ खड़ी-खड़ी क्या पूछ रही हो?

सुनरी के पांव जैसे धरती में ठुंक गये हों। लेकिन छोटे सरकार का कोई भी हुक्म न मानने की हिम्मत किसमें थी? डरती हुई सुनरी दरवाज़े के अन्दर होती। सिर झुकाये लटपटाती जीभ से कहती—का हुकुम है?

—ज़रा इधर देखो,—हाथ की किताब बन्द कर लल्लन कहता।

सुनरी की गर्दन जैसे टूटकर लटक गयी हो। लेकिन फिर वही, छोटे सरकार का हुक्म! वह बड़ी कोशिश करके धीरे-धीरे गर्दन उधर घुमाती, भारी-भारी, बड़ी-बड़ी पलकें फर्श की ओर झुकाये, जैसे डर के मारे उनमें कोई जान न रह गयी हो, जैसे, एक पत्थर का बुत हो, जिसकी गढ़ी हुई झुकी पलकें कभी भी न उठ सकेंगी।

—आँखें खोलकर मेरी ओर देखो!—बन्द होंठों में मुस्कराता हुआ लल्लन बोलता।

नाच, बँदरिया, नाच! जरा मटकी मारके तो दिखा दे!...और बँदरिया सिर पर उठी मदारी की छड़ी की ओर सहमी हुई देखती है,

जैसे कमजोर पड़ जाती । फिर भी अपने को
पड़ता ही । हाथ लल्लन के पास होता, ठेहुने
र पीछे को झुका हुआ, दबा हुआ विद्रोह दिखाता
र भी पीछे को, जैसे शरीर का वही भाग सबसे

भी सबसे पहले उसी भाग पर जाता, जैसे वह
त जाय । वह सिरहाने की ओर खिसककर दूसरा
ी जाने क्या होता कि सुनरी का भय-विह्वल पीला
छुरी के नीचे पड़े हुए कबूतर की आँखों क
लाल होते वक्त 'वें' करके चीखने वाले बकरे क
े रक्तहीन-से फड़फड़ाते होंठ देखकर, उसक
पारा बिल्कुल नीचे ढलक जाता, सारा उत्साह
ानक ठंडी पड़ जाती । वह उसे छोड़ देता ।
ड़े हिरनी की तरह भाग जाती ।
ा । बहाना जब बहाने के लिए ही हो, तो इसक
र्ते, बार-बार दुहरायी जाती और फिर-फिर वह
बूतर की वह आँखें लल्लन का सारा मजा
वह आगे न बढ़ पाता ।
ग्या ने सुनरी से पूछा—आजकल तेरी बुलाह
का बात है, रे ?
—सुनरी योंही बोली ।
के लिए स्त्री की आँखों को धोखा देना मुश्किल है
भोली आँखें, भला क्या खाके बदमिया की ते
ढ़ा पातीं ? बदमिया ने एक छन उसकी ओर देख
हले तो मुझे भी कभी-कभी बुलाते थे । इधर
भी नहीं लेते । जब देखो, सुनरी !
करूँ ?
छन...

और पट से मटकी मार के दिखा देती है। दर्शक हँस पड़ते हैं। अद्भुत मनोरंजन!

यह अदृश्य तलवार सुनरी के सिर पर कहाँ लटक रही कि पट वह पलकें उठा देती। सुनरी ने जब से होश सँभाला था, लल्लन को देख रही थी। लेकिन इस परिस्थिति में जब उसकी पलकें उठतीं और एक नजर लल्लन पर पड़ती, तो डर के मारे उसकी जान ही निकल जाती। ....पलग पर अधलेटा वह लल्लन कहाँ?....यह तो कोई दैत्य के डील-डौल वाला आदमी है, परोसे-भर का कद, बाघ के बराबर चेहरा, भेड़िये की तरह आँखें, ऊँट के पाँवों की तरह बड़े-बड़े हाथ-पाँव!

उसका पीला पड़ा, गड़ा हुआ, निर्जीव-सा चेहरा देखकर लल्लन सौ मन का एक मन हो जाता। फिर भी वह हुक्म देता—जरा वो पीली वाली किताब तो उठाना।

पलंग के सिरहाने ही ऊँची आलमारी है। वहीं खड़े होकर किताब निकालनी पड़ेगी। कहीं छोटे सरकार हाथ बढ़ाकर पकड़ लें, तो? यह 'तो' उठने को तो उठ ही सकता है। मन के अन्दर सब स्वतन्त्र होते हैं। और कहीं जगह न पाकर गुलाम के मन में ही स्वतन्त्रता चुपके-चुपके सिमटी-सिकुड़ी बैठी रहती है और बाहर निकलने के अवसर की ताक में सिर धुना करती है। लेकिन इस 'तो' का जवाब तो बाहर की चीज है, इसके लिए हाथ-पाँव हिलाना पड़ता है, मुँह खोलना पड़ता है। ऐसा करने की शक्ति सुनरी ने तो यहाँ किसी मे नहीं देखी। तो, उसे आगे बढ़ना ही पड़ता। मन तभी दूसरा सवाल करता, यह सब बहाना, लिहाज किसलिए? मालिक का सीधे उसे अपने पास आने का हुकुम नहीं दे सकता, उसके साथ चाहे जैसा बेवहार नहीं कर सकता? फिर.......

सुनरी बदन चुराकर सहमी-सहमी आगे बढ़ती। हाथ उठाकर किताब उतारती। और बिना लल्लन की ओर देखे ही किताब उसकी ओर बढ़ा देती।

लल्लन किताब के बदले उसका हाथ पकड़कर खींचता। मन की

स्वतन्त्रता हाथ में आकर जैसे कमजोर पड़ जाती। फिर भी अपने को रोकने का असर कुछ तो पड़ता ही। हाथ लल्लन के पास होता, टेहुने पाटी से टिके और शरीर पीछे को झुका हुआ, दबा हुआ विद्रोह दिखाता और मुड़ा हुआ मुँह और भी पीछे को, जैसे शरीर का वही भाग सबसे अधिक मूल्यवान हो।

लल्लन का ध्यान भी सबसे पहले उसी भाग पर जाता, जैसे वह मिल जाय, तो सब मिल जाय। वह सिरहाने की ओर खिसककर दूसरा हाथ बढ़ाता, लेकिन तभी जाने क्या होता कि सुनरी का भय-विह्वल पीला, सूखा हुआ चेहरा, और छुरी के नीचे पड़े हुए कबूतर की आँखों की तरह वह आँखें, और हलाल होते वक्त 'बें' करके चीखने वाले बकरे की तरह वह चीख पड़ने को रक्तहीन-से फड़फड़ाते होंठ देखकर, उसका हाथ ढीला पड़ जाता, पारा बिल्कुल नीचे ढलक जाता, सारा उत्साह, सारी उत्तेजना ही अचानक ठंडी पड़ जाती। वह उसे छोड़ देता।

सुनरी जाल से छुटे हिरनी की तरह भाग जाती।

यह कई बार हुआ। बहाना जब बहाने के लिए ही हो, तो इसकी क्या कमी? वही हरकतें, बार-बार दुहरायी जातीं और फिर-फिर वही नतीजा भी होता। कबूतर की वह आँखें लल्लन का सारा मजा ही किरकिरा कर देतीं, वह आगे न बढ़ पाता।

एक दिन बदमिया ने सुनरी से पूछा—आजकल तेरी कुलबुल बहुत बढ गयी है। का बात है, रे?

—बात का है,—सुनरी योंही बोली।

किसी भी स्त्री के लिए स्त्री की आँखों को धोखा देना मुश्किल है। सुनरी की कच्ची भोली आँखें, भला क्या खाके बदमिया की अनुभवी आँखों को पढ़ा पातीं? बदमिया ने एक बार उसकी फिर बोली—हूँ! पहले तो मुझे भी कभी-कभी कुछ दिनों से मेरा नाम भी नहीं लेते। जब देखो, सुनरी!

—तो मैं का करूँ?

—मुझी से छुपकर...

—बदामो बहन, इस तरह की बात मुझसे न करो। छुअन-बधन अपने ही लिए रहने दो!—और सुनरी उठकर चल दी।

बदमिया होंठ दबाये उसको ओर देखती हुई सिर हिलाती रही।

अब बदमिया जरा आँख खोलके रहने लगी। उसे छोटे सरकार में काफ़ी दिनों से दिलचस्पी थी। डोरे डालने की तो खैर उसमें हिम्मत ही क्या होती, लेकिन अपनी ओर आकर्षित करने की वह जरूर कोशिश करती थी। डर के मारे वह खुलकर अपने हाथ न दिखा पाती। सुनरी की अवस्था में होती, तो शायद वह यह भी कर गुजरती। लेकिन वह अपनी स्थिति बखूबी जानती थी। उस स्थिति में खुल-खेलना बड़ा ही खतरनाक था। हाँ, अगर लल्लन पहल करता, तो वह जरूर उससे चार क़दम आगे बढ़ने में खुश होती। समरथ को नहिं दोस गुसाईं.... लेकिन बदमिया सो बिना छोटे सरकार की मंशा जाने वैसा न कर सकती थी। वह जो कर सकती थी, जिसका मतलब कुछ हो भी सकता था और नहीं भी, समझने वाले को समझना हो, तो समझें; काम बनने वाला होगा, तो इतने ही से बनेगा, न बनने वाला होगा, तो नहीं बनेगा। इसके आगे बदमिया कर ही क्या सकती थी।

वह दिलचस्पी जो थी, सो तो थी ही, अब एक दूसरी आग भी जलने लगी। पहले इस आग की लपटों को देखकर उसकी आँखें खुशी से चमक उठीं। लेकिन बाद में इसी आग की जलन को बरदाश्त कर सकना उसके लिए असम्भव हो गया।

बात यों हुई। कई बार लल्लन ने जब बदमिया को अपने कमरे के सामने चक्कर लगाते और चोरी से ताड़ते हुए देखा, तो वह उसकी मंशा समझ गया। वह उसे अच्छी तरह समझे हुए था। उसकी हर हरकत का मतलब भी उसे मालूम था। यों कभी-कभी उस पर उसे दया भी आती थी और सहानुभूति भी होती थी। लेकिन अब उसे गुस्सा आने लगा।

एक दिन लल्लन ने सुनरी से पूछा—यह बदमिया क्यों घुरियाये

रहती है ? जब भी तुम मेरे पास आती हो, उसे बार-बार इधर से आते-जाते देखता हूँ।

सुनरी यह जानती थी। बदमिया के बार-बार उधर से आने-जाने के कारण ही उसका डर आज-कल कुछ कम हो गया था। वह जानती थी कि छोटे सरकार ऐसे में कुछ करेंगे नहीं। वह सिर झुकाये हुए ही बोली—मुझसे भी वो पूछती थी कि छोटे सरकार बार-बार तुझे काहे को बुलाते हैं ?

—हूँ !—कहकर लल्लन पलंग से उठ खड़ा हुआ। सुनरी सहम-कर एक ओर हो गयी। लल्लन दरवाजे पर खड़ा हो इन्तजार करने लगा।

बदमिया कुछ गुनती हुई-सी उधर आ रही थी कि दरवाजे पर छोटे सरकार को देखकर पलटी। तभी लल्लन बोला—ए अम्मा ! जरा इधर तो सुनो !

छत फट जाती, तो बदमिया खुशी से पागल हो जाती। लेकिन वैसा क्या उसके चाहने से हो जाता। वह बहुत चाहकर भी वहीं गिरकर बेहोश होने की नक़ल भी न पसार सकी। बेहोशी का एक झोंका-सा आता जरूर नजर आया, लेकिन तभी फिर उसे सुनायी पड़ा—आती है कि मैं आऊँ ?

बदमिया ऐसे आगे बढ़ी, जैसे बड़े-बड़े ठोंरों वाली काली-काली असंख्य चिड़ियाँ उसे घेर कर ठोर-पर-ठोर मारे जा रही हों, किसी भी तरह उनके प्रहारों से बचा न जा सकता हो।

लाल-लाल आँखें निकाल कर लल्लन बोला—तेरे मुँह से एक भी लफ्ज़ सुनरी के बारे में निकला, तो जबान काटके फेंक दूँगा, समझी ? जा !

बदमिया भागी, तो सीढ़ी से लुढ़क पड़ी। कई दिन उसे हल्दी-गुड़ पीना पड़ा।

अब लल्लन अपने हाथों को रोक कुछ-कुछ बोलने लगा। उसने सोचा कि शायद बोलने, बातचीत करने से वह खुल जाय, परच जाय,

और धीरे-धीरे उसके मन का डर निकल जाय। तब शायद उसे अपने मंसूबे में आसानी से कामयाबी मिल सके। कभी वह पूछता, तू इस तरह डरती क्यों है? कभी कहता, इसमें डरने की क्या बात है? कभी पूछता, तुझे अच्छा नहीं लगता क्या?

लेकिन सुनरी कोई जवाब न देती। हाँ, कभी-कभी वह उसकी ओर उसके कहने से देख जरूर लेती। तब उसे वही दैत्य पलंग पर दिखायी पड़ता और वह सहम-सहम जाती।

लेकिन गर्मी की छुट्टियाँ खतम होते-होते उस दैत्य का डील-डौल घटने लगा और करीब था कि वह देखे-पहचाने छोटे सरकार के रूप-आकार में आ जाता, कि छुट्टियाँ ही खतम हो गयीं।

जाने के दिन ललन ने कहा—पूजा में आऊँगा। तब तक तू *अपने मन का डर निकाल डालना। एँ?...तू मुझे बहुत याद आयगी।* तू मुझे बहुत-बहुत अच्छी लगती है। बोल, तेरे लिए इलाहाबाद से क्या लाऊँगा?

सुनरी ने 'कुछ नहीं' में सिर हिला दिया।

—आज भी नहीं बोलेगी?—कहकर जाने किस तरह उसने देखा।

फिर भी वह कुछ न बोली, तो वह उसकी ओर हाथ बढ़ा, उसकी *ठुड्डी में उँगली लगा, चाहा कि चूम ले, लेकिन फिर वही भय-विह्वल,* पीला पड़ा चेहरा, रक्तहीन होंठ और कबूतर की तरह आँखें देखकर रह *गया और कमरे से बाहर जाते-जाते कह गया, बड़ी जालिम हो!*

काफी खेला-खाया युवक ललन भेड़िए की तरह शिकार पर मौका मिलते ही झपट पड़ने का कायल न था। बिल्ली की तरह खूब खेलकर, जी बहलाकर शिकार मारने में उसे मजा आता था। और फिर सुनरी तो उसके घर की मुर्गी है, कोई जङ्गल का परिन्दा थोड़े ही है कि पनखउ पड़ते ही फुर्र-से गायब। कोई जल्दी की बात [illegible]।

और धार के दूध की [illegible] इस दुनिया [illegible] आग-आँच

[illegible] मासूम, कच्ची [illegible] कै [illegible] की

तरह मौत का खेल न समझ मोहब्बत का खेल समझ बैठे, और उसमें मज़ा भी लेने लगे और अपनी खुशक़िस्मती भी समझने लगे, तो क्या आश्चर्य ?

*

बदमिया ने झाड़ू सुनरी की बग़ल में रखकर कहा—छोटे सरकार का कमरा तो तू ही साफ़ करेगी न ?

सुनरी ने सिर उठाया।

बादल कहीं छाये और बिजली कहीं चमके !

सुनरी ने बदमिया को एक छन देखकर कहा—बदामो बहन, मैंने तुम्हारा का बिगाड़ा है ?

—इसका हिसाब-किताब तो कभी-न-कभी होगा ही ! तुझे किसी पर घमण्ड है, तो मुझे भी किसी पर है। यह मालूम है न कि किसके चाहनेवाले की यहाँ हुकूमत चलती है ?—बदमिया ने झमककर कहा।

—मुझ बदनसीब को भला किसपर घमण्ड हो सकता है, बदामो बहन ?—मरे गले से सुनरी ने कहा—मेरा कोई चाहनेवाला नहीं। मेरी तक़दीर फूट गयी कि ऐसे बेदर्दी से मैं दिल लगा बैठी। वो बड़ा झूठा है, बदामो बहन।

—काहे ?—भौंहें सिकोड़कर बदमिया बोली।

—बड़े दिन की छुट्टी में उसने कहा था कि गर्मी की छुट्टी में आयगा और फिर कहीं न जायगा और फिर मुझसे बियाह...

बदमिया को ज़ोर से हँसी आ गयी। लेकिन फिर जो उसने सुनरी की ओर देखा और उसकी उठी हुई आँसुओं से लबालब दर्द-भरी आँखों पर नज़र पड़ी, तो एक छन को वह सन्नाटे में आ गयी। उसकी आँखें फैल गयीं, माथे पर बल पड़ गये और फिर अचानक जाने क्या हुआ कि वह उसके पास बैठ गयी और अपने आँचल से उसकी आँखें पोंछती हुई सहानुभूति-भरे स्वर में बोली—मुझे माफ़ कर देना, सुनरी ! ...मैं का जानती थी कि तू ऐसी बेवकूफ़ और पागल है।—और वह उठकर जाने लगी।

शरद जोशी

जन्म : 21 मई 1931, उज्जैन (म० प्र०)

शिक्षण : यहां वहां, पता नहीं कहां-कहां। अन्त में होलकर महाविद्यालय इन्दौर से बी०ए०।

—बदामो बहन !—सुनरी ने बड़े ही दर्द-भरे स्वर में पुकारा—जरा मेरे पास बैठो, कुछ बातें करो। मेरा मन जाने कैसा हो रहा है। मैं मर जाऊँगी, बदामो बहन !

—मरें तेरे दुसमन !—बदमिया उससे सटकर बैठ गयी और उसकी पीठ पर हाथ रखकर बोली—तूने पहले मुझे यह काहे नहीं बताया ? ओह !

—तू मुझपर इतना गुस्सा रहती थी कि कुछ कहने की मेरी हिम्मत ही न पड़ती थी।

—मैं तो समझती थी कि तू मुझसे चढ़ा-ऊपरी करके उसे फांस रही है। मुझे का मालूम था कि वह इस तरह सबुज बाग दिखाकर तुझे बेवकूफ बना रहा है।

—तो का सच ही वह झूठा है, बदामो बहन ?—जैसे सुनरी को अब भी विश्वास ही न हो रहा हो।

—वो आ रहा है, उसी से पूछना ! पागल !....और किसी से तो तू ने यह बात नहीं कही है न ?

—ना। तुम्हारे सिवा किसी को यह मालूम ही कहां है ?

—किसी से न कहना। सब हँसेंगी और तुझे पागल बतायेंगी। और कहीं मुंदरी फुआ को यह बात मालूम हो गयी, तब तो समझो, परलय ही मच जायगा। अरे, बाप रे, कैसी भोली है तू ! ई लोग हमा-सुमा से बियाह करेंगे ! ई लोग तो हमा-सुमा की जिनगी खराब करने के लिए पैदा होते हैं, पगली। और तू उससे दिल लगा बैठी !

—का करती, बदामो बहन। वो ऐसी मीठी-मीठी बातें करता है कि मेरी मन पानी-पानी हो जाता है। और धीरे-धीरे जाने मुझे का हो गया कि मैं उसके लिए तड़पने लगी। उसके बिना अब मुझे चैन ही नहीं। अब वो फौज में जा रहा है। मेरा का होगा ?

—यही, जो हम सबों का हुआ। ई लोगन के बदले पेड़-रूख से दिल लगाया जाय, तो अच्छा। तू यह पागलपन छोड़ दे। ये वो तिल नहीं, जिसमें तेल निकले !

—एक बात पूछूं, बदामो बहन ?

—पूछ ।

—ई बताओ कि तुम उसके पीछे काहे घुरियाये रहती थी ?

बदमिया हँस पड़ी । फिर बड़े ही मर्माहत स्वर में बोली—ई-सब अभी तुम नहीं समझोगी । एक बूढ़े ने मेरी जिनगी नास दी, पाँव-से-पाँव बाँधकर डाल रखा है । मेरे मन में का ई अरमान नहीं, कि किसी जवान से दो बातें करती ? जे बखत उसने मुझे अम्मा कहा, जानती है, मेरे दिल पर का गुजरी...जाने दे, सुनरी, ई-सब अभी तू नहीं समझेगी ।— और फिर अचानक गुस्से से सुर्ख होकर फट-सी पड़ी—मुझे वह अम्मा कहता है और उसे यह मालूम हो जाय कि जिसे वह जाल में फँसा रहा है, वो उसकी कौन होती है, तो ?

—का ?—मुँह फाड़कर सुनरी बोली ।

तभी नहानघर का दरवाज़ा खुला ।

बदमिया जल्दी में उठती हुई बोली—मुँदरी फ़ुआ कुछ सुन लेगी, तो जान ले लेगी । चल, तू भी कुछ काम कर ।—और उसका हाथ पकड़कर उठाने लगी ।

*

जब रात काफ़ी बीत गयी और बड़े सरकार ने पक्के तौर पर यह समझ लिया कि अब रानीजी सो गयी होंगी, तो वह हवेली की ओर चले । खाना उन्होंने मना कर दिया था । उन्हें ताज्जुब था कि आज रानीजी को दौरा नहीं आया । मालूम होता है कि किसी और चिन्ता में उनका मन बहक गया । बड़े सरकार ऊपर पहुँचे, तो रानीजी के सिरहाने बैठी पंखा हांक रही मुँदरी उठ खड़ी हुई । बड़े सरकार अपने पलंग की ओर बढ़े । पाँवपोश पर सिर धरे फ़र्श पर ही बदमिया सो गयी थी । बड़े सरकार ने हल्के से उसकी कमर में जूते से एक ठोकर मारी । बदमिया झट साँप तरह सजग होकर, उठ खड़ी हुई, उसकी चूड़ियाँ झन्न से बज उठीं ।

आँख मूँदे ही रानीजी थकी हुई आवाज में बोलीं—बड़े सरकार आ गये ?

मुंदरी ने जवाब दिया—जी, हाँ।

रानीजी उठ बैठीं। बड़े सरकार के जूते उतर गये, तो वह झट पलग पर मसलहतन लम्बे हो गये और साँस खींच ली। बदमिया पाँव दबाने लगी।

—बड़े सरकार,—रानीजी बोलीं।

—अभी तक आप सोयी नहीं ?—जम्हुआई लेते हुए बड़े सरकार बोले।

—नींद नहीं आती। आप ही का इन्तज़ार करती रही। कुछ बातें करनी हैं।

—मैं तो बेहद थक गया हूँ। आँखें ढँपी पड़ती हैं। आप भी सो जाइए। रात काफी गुज़र चुकी है। कल बातें करेंगे। आपकी तबीयत ख़राब हो जायगी।

—मेरी तबीयत की भली चलायी।...मैं यह जानना चाहती थी कि आपने लल्लनजी को फ़ौज में जाने की राय दी थी ?

—यह आप क्या कहती हैं ?—चौंकते हुए बड़े सरकार बोले—नहीं, नहीं, उसने खुद ही जो चाहा, किया है। उसने पहले लिखा था कि राय लेने आ रहा है। फिर जाने क्या हुआ कि कमीशन में आप ही शामिल हो गया। नहीं, नहीं, मुझसे वह राय लेता, तो क्या मैं उसे जाने देता। ऐसा शक आपको नहीं होना चाहिए।

—अब भी आप उसे रोक नहीं सकते ?

—क्यों नहीं, जरूर रोकूंगा, ज़रूर रोकूंगा! उसे आ तो जाने दीजिए। आप भी कोशिश कीजिएगा। मेरा ख़याल है, वह रुक जायगा। आप परेशान न हों। आराम से सो जाइए।

—फिर यह जलसा क्यों रचाया जा रहा है ?

—यह...वह....—ज़रा हँसकर बड़े सरकार बोले—लल्लनजी ने ० ए० पास किया है न, उसी की ख़ुशी में, लोगों की राय हुई और

उनके दोस्त शम्भू ने भी कहा, तो मैं तैयार हो गया। इसमें क्या बात है। एक ही तो लड़का है। अब आप आराम कीजिए। बदमिया, मलाई तो ले आ।

बदमिया ने तिपाई उठाकर उनके पास रख दी और मलाई की तश्तरी का ढक्कन उठाकर, गिलास का पानी उनके हाथ में थमा दिया।

कुल्ला करके वह चम्मच से मलाई खाने लगे, तो रानीजी बोलीं —आप मुझसे कोई बात छिपा तो नहीं रहे हैं ?

—अरे, राम-राम ! आप यह क्या कर रही हैं ? आपकी कसम, भला ऐसी क्या बात हो सकती है ?

—मेरी कसम तो आपके लिए दाल-भात का कौर है। मेरी कसम आर न खाया करें, मुझे बड़ी चिढ़ होती है इस बात से !

बड़े सरकार धीमे से हँस पड़े।

—मुझे लगता है कि आप ही लल्लनजी को दूर करना चाहते हैं। आप नहीं चाहते कि वह मेरे पास रहे !

—नहीं, नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है ?....बदमिया, पानी तो दे।

पानी पीकर वह लेट गये। बदमिया पांव दबाने लगी।

—मेरी बात का आपने जवाब नहीं दिया ? आप जानते हैं कि लल्लनजी ही मेरी जिन्दगी का सहारा है। आप उसे मुझसे दूर करके मुझे मार डालना चाहते हैं।

—वहम की कोई दवा नहीं है।

—यह वहम नहीं है, सही बात है, मेरा मन कहता है।

—क्यों ? आखिर इसकी कोई वजह भी तो होनी चाहिए ? मेरे देखने मे तो....

—वह तो आप जानें...

—आपकी क़स..माफ करें, मैं यह कैसे चाह सकता हूँ, कि वह कहीं भा जाय, फौज में जाने देने की बात तो दूर है। आखिर वह अकेले ही तो हमारे खानदान का चिराग़ है। जाने उसे यह क्या सूझी ! जरा

उसे आ जाने तो दीजिए। लेकिन आप मुझे रोकिए-टोकिएगा नहीं। आखिर मैं उसका बाप हूँ। मुझसे बिना कुछ पूछे-आछे जो जी में आये कर बैठने की उसे हिम्मत कैसे हुई, मैं देखूंगा! आप आराम से अब सो जाइए। कोई चिन्ता की बात नहीं।—और उन्होंने पीछे को करवट बदल ली।

आसमान हल्का और साफ़ हो गया। जैसे उसका बुखार उतर गया हो। हल्की-हल्की साफ़ हवा चल रही थी। ताक पर रखी लालटेन खामोश जल रही थी।

रानीजी योंही बोलीं—लेकिन मुझे सकून नहीं। लल्लनजी को भी मेरी कोई परवाह नहीं रही। वर्ना वह इस तरह मुँह मोड़ने की न सोचता। जाने उसके मन में क्या है? हाय, मैं कैसे जीऊँगी? गर्मी की छुट्टियों में वह बिना यहाँ आये पहाड़ चला गया। तभी मुझे खटका हुआ था....

जाने कोई भी उनकी बात सुन रहा था कि नहीं, बस, मुंदरो और अदमिया की चूड़ियाँ अलग-अलग स्वरों में झन्न-झन्न बज रही थीं।

रानीजी आप ही बड़बड़ाती-बड़बड़ाती खामोश चिन्तन में डूब गयीं। अन्तहीन, खामोश चिन्तन से बढ़कर नींद का कोई और दुश्मन नहीं।

६

बड़े सरकार की पूरी फ़ौज मोर्चे पर भिड़ गयी थी। सिपहसालार अपने-अपने मोर्चे पर भिडे हुए फ़ौजियों को हुक्म दे रहे थे। और बड़े सरकार दीवानखाने के ओसारे में तख़त पर बैठे ज़ोरों से पान चबा रहे थे और फ़र्शी गुड़गुड़ा रहे थे। उनकी चौड़ी पेशानी पर परेशानी की कुछ रेखाएँ दिखायी पड़ रही थीं, रह-रहकर किसी-न-किसी को बुलाकर वह पूछ लेते कि कितना काम हो गया, कितना बाक़ी है।

मन्दिर हेडक्वार्टर बना हुआ था। पीपल के पेड़-तले चबूतरे पर *बादामी कागज की नेवतेवाली पुरानी बही खोले हुए कारिन्दा बैठा* था। इस बही में उन-सबके नाम दर्ज थे, जिनसे किसी भी तरह की राह-रस्म बडे सरकार की थी। हर नाम के आगे वह चीज-बस्त भी दर्ज थी, जो बड़े सरकार के यहाँ कुछ पड़ने पर नेवते के रूप में उसके यहाँ से आयी थी। नाम नेवते का था, लेकिन बड़ी सख़्ती से यह बँधी हुई चीज-बस्त असामियों से वसूल की जाती थी। उससे ज्यादा हो जाय, तो शाबाश, लेकिन कम हो तो आफ़त। यह बँधेज एक तरह से इस्त-मरारी बन्दोबस्त की तरह था। इसमें कमी किसी प्रकार भी न हो सकती थी। हाँ, महाजनों और ज़मींदारों और रईसों की बात और थी। वे जितना चाहे, नेवते में भेजते थे और साथ ही यह उम्मीद भी रखते थे कि उनके यहाँ भी कुछ पड़ने पर बड़े सरकार के यहाँ से नेवते में उतना ही लौटेगा। असामियों के सामने तो लौटने का कोई सवाल ही न था।

नेवता देने वालों का ताँता बँधा हुआ था। कारिन्दा नाम देखता, नेवते की चीज-बस्त देखता, फिर लाये हुए नेवते को

करता। ठीक होने पर मन्दिर की ओर भेज देता। कम होने पर डाँट-कर कहता—तुम्हारे यहाँ से हमेशा इतना मिलता आया है। अबकी इतना ही क्यों? जाओ, जल्दी पूरा करके लाओ, वर्ना समझोगे!

इस समझने का मतलब हर असामी जानता था। यह बात बड़े सरकार तक पहुँचती थी, खेत तक निकाला जा सकता था, पिटाई भी हो सकती थी, गाली-गलौज की बात तो साधारण। सो भर-सक असामी यह नौबत न आने देते। जैसे भी होता, किसी से माँग-चुटकर, कर्ज-उधार लेकर भी इसे पूरा करते।

मन्दिर में कई कमरे नेवतों के सामान रखने के लिए खाली कर दिये गये थे। हर कमरे पर एक आदमी तैनात था। वह सामान लेकर अन्दर रख देता।

घी, दूध, दही के लिए एक कमरा, तरकारियों के लिए दूसरा, अनाज के लिए तीसरा, मर-मसालों के लिए चौथा, पत्तल-पुरवों के लिए पाँचवाँ आदि-आदि।

सबसे ज्यादा शोर दूध-दही वाले कमरे के सामने था। सब ताक़ीद कर रहे थे कि उनकी कहतरी कहीं टूट या गायब न हो जाय, जैसे दूध-दही से कहतरी ही ज्यादा कीमती हो। या शायद इसलिए हो कि दूध-दही तो गया ही, कहतरी तो वापस मिलनी है। या यह भी तो मशहूर है कि ग्वाला दूध-दही से भले ही बाज़ आये, लेकिन अपनी दूध-पिलाई कहतरी को वह जान के पीछे रखता है। हर कहतरी पर पहचान के लिए तरह-तरह के रङ्ग-बिरङ्गे निशान बने हुए थे और जिन पर निशान नहीं थे, उनकी गरदन में तरह-तरह की रस्सियाँ बँधी हुई थीं। फिर भी उन्हें डर था, कि कहतरी कहीं खो न जाय, अदला-बदला न हो जाय।

यह मोर्चा पुजारीजी सँभाले हुए थे।

बाग में वैदजी डटे हुए थे। सफाई हो चुकी थी। कस्बे से शामियाना अभी नहीं आया था। पच्छिम और उत्तर के कोने में बड़े-बड़े ... बन रहे थे। कस्बे से हलवाई आ गये थे। जरूरत के मुताबिक वे

चूल्हे बनवा रहे थे और सर-सामान का इन्तज़ाम कर रहे थे। मिठाइयाँ और नमकीन वगैरह अभी से बनना शुरू हो जायगा।

इनारे की जगत पर सौदागर पहलवान अपनी टुकड़ी को लिये बरतनों की सफ़ाई पर जुटा था। छोटे-बड़े सैकड़ों किस्म के बरतनों का ढेर लगा हुआ था।

दीवानख़ाने और ऐशगाह की सफ़ाई-सजावट बेंगा करा रहा था। यहाँ बड़े ही नाज़ुक और टुनुक चीज़ें थीं, चुने हुए होशियार आदमी इसलिए उसे मिले थे।

पटवारी कुछ जवानों के साथ सामान खरीदने कस्बे गया हुआ था।

सहन में बीसियों जवान और लड़के झंडी-पताका बनाने में लगे हुए थे।

शम्भू एक टुकड़ी लेकर ज़िले पर गया था। उसे ख़ास-ख़ास चीज़ें लानी थीं। उसे लाडली रंडी को भी पक्का करना था, अफ़सरों से मिलना था और स्टेशन पर लल्लनजी का स्वागत भी करना था और मुमकिन हो, तो उसी के साथ लौट आना भी था। शम्भू को हर काम में पूरी दिलचस्पी थी। लेकिन सच पूछा जाय, तो वह लल्लनजी से जल्द-से-जल्द मिलने को बेचैन था। वह उससे मिलते ही शकुन्तला माथुर के बारे में पूछना चाहता था, जिसके पीछे-पीछे लल्लनजी युनिवर्सिटी से सीधे मसूरी गया था और वहाँ से एक बार के अलावा किसी चिट्ठी मे उसका, बार-बार शम्भू के ताकीद करने पर भी, कोई ज़िक्र न किया था। लल्लनजी ने अचानक जो कमीशन में जाने को तय कर ली थी, उसके पीछे शायद, शम्भू को पूरा शक था, शकुन्तला का भी कोई हाथ हो। हो सकता है कि उस आफ़त की परकाला ने उसे ज़ुल दे दिया हो और वह बेटा एक सच्चे निराश प्रेमी की तरह शहादत का जाम उठा लेने को तैयार हो गये हों। जो भी हो, शम्भू सब बातें जानने को उतावला हो रहा था।

*

गोरी-चिट्टी, हर अंग से साँचे में ढली शकुन्तला माथुर

चमकीली, चंचल आँखें! वह आँखें क्या थीं, मानो उनमें लबालब पारा भरा हो, जो एक क्षण को भी स्थिर होना ही न जानती थीं। अव्वलन तो उनसे कोई आँख मिलाने की हिम्मत न करता और कहीं कोई जाने या अनजाने उनकी ज़द में आ गया, तो समझ लो गया! कितनों को उन्होंने शहीद बनाकर छोड़ा, यह किसी से भी मालूम हो सकता था।

शकुन्तला एक बहुत बड़े अफ़सर की लड़की थी। वह कार में युनिवर्सिटी आती थी। उसकी राह से विद्यार्थियों की भीड़ छँट जाती थी, जैसे वह कोई रानी हो। हुस्न की शान किसी को देखनी हो, तो वह शकुन्तला को चलते हुए देखे। वह एक बिजली थी, चमके तो आँखें चौंधिया जायें और चौंध से आदमी सँभले कि ग़ायब!

आँखें मिलाने की भले ही किसी में हिम्मत न हो, वह आँखें इतनी मशहूर हो चुकी थीं, कि उन्हें कम-से-कम एक बार देखे बिना कोई भी न रह सकता था। जैसे आगरा जाकर कोई ताज न देखे, वैसे ही युनिवर्सिटी में आकर कोई उसकी आँखें न देखे, यह कैसे मुमकिन था।

शम्भू और लल्लनजी ने भी वह आँखें कई बार देखी थीं। दो साल का उनका साथ रहा था। वह अपने पिता के लखनऊ से तबदला होने पर यहाँ आयी थी और एम० ए० के पहले साल में नाम लिखाया था। कितने ही विद्यार्थी तो उसी के कारण अपना विषय बदलकर इतिहास के दर्जे में आ गये थे। उनमें किसी की भी आशा पूरी न हुई थी, यह सच है। लेकिन एक आध्यात्मिक सुख और सन्तोष और गर्व तो उसके दर्जे में बैठने या उसके दर्जे के होने या छुपे-लुके आँख सेंकने से उन्हें मिलता ही था।

शम्भू बनिया था। हर चीज़ को सोच-समझकर, नाप-जोख कर ही ग्रहण करने की उसकी आदत बन गयी थी। कम-से-कम ऐसा ही वह कहता था। लेकिन बात जो दरअसल थी, वह उसके ठिगने क़द और छोटे-छोटे बालों और ऐसे छोटे से चेहरे की थी, जिसे विधाता ने कहीं इस तरह एक हल्की-सी ऐंठ दे दी थी कि कभी वह भौंहों पर

दिखायी दे जाती, तो कभी आंखों पर और कभी नाक पर, तो कभी होंठों पर और कभी ठुड्डी पर और कभी-कभी तो पूरे चेहरे पर वह इस तरह प्रकट हो जाती कि देखनेवाले आंख मूंद लें। उसके बाप बड़े ही दानिशमन्द आदमी थे। उन्होंने शुरू-शुरू में ही जिन्दगी के कुछ बहुत ही नायाब और बेशक़ीमत नुस्खे शम्भू की घुट्टी में पिला दिये थे। मसलन, उन्होने शम्भू से कहा था कि बेटा, अव्वलन तो बनिये के लडके को जियादा पढ़ने की जरूरत ही नहीं। फिर भी अगर तुम पढ़ना ही चाहते हो, तो जरूर पढ़ो। लेकिन इस बात का ख़ियाल तुम्हें बराबर रखना पड़ेगा कि पढ़ना खास काम है,' और सब बातें नहीं! रहो-सहो सादगी से, सादा खाओ और सादा पहनो। जैसे भी हो, कम-से-कम खर्च करो। कपड़े कम रखो, ताकि धुलाई का खर्च जियादा न हो। ठीक बात तो यह होगी कि तुम खुद अपने हाथ से अपने कपड़े साफ़ करो। धोबी का झंझट ही क्यों पाला जाय। अपने हाथ से काम करने की बात ही कुछ और होती है। इससे तबीयत साफ रहती है, सफाई की आदत पड़ती है, और देह में फुर्ती आती है। और हां, इन बालों को कभी भी बढ़ने न देना। यही सभी खुराफात की जड़ है। इन्ही से सौक़ सुरू होता है और फिर ऐसे बढ़ता जाता है, जिसका कही अन्त नहीं। और फिर छोटे-छोटे बाल रखने के फायदे भी बहुत हैं, सिर हल्का रहता है, दिमाग पर बोझ नहीं पड़ता, तेल का खर्च कम होता है, और कघी करने में वक्त जाया नहीं होता। सामान अपने पास कम-से-कम रखो। इससे चोरी जाने का कोई डर नही रहता। सफ़र में इतना ही सामान लेकर चलो कि कुली की जरूरत न पड़े। सिनेमा देखने से आंखें खराब हो जाती हैं और होटल में खाने से पेट। आदि-आदि।

और सबसे महत्वपूर्ण काम जो उन्होंने किया था, वह यह कि शम्भू का ब्याह तेरह साल की उम्र में ही खूब धूमधाम से कर दिया था। उसमें उन्हे इतना दहेज मिला था कि जवार में शोर मच गया था। शम्भू की पत्नी, लक्ष्मी, बहुत बड़े घर की बेटी थी, जवान थी और बहुत

ही सुन्दर थी। वह कुछ वैसा ही था, जैसे कौवे के गले में सुहारी। लक्ष्मी इतनी सलीकेदार थी कि अपना सारा सौन्दर्य और यौवन सदा भारी-भरकम, सुनहले जेवरों और कीमती कपड़ों और लम्बे घूंघट के ढांके रहती थी। सब उसके शील की प्रशंसा करते। उसने आते ही शम्भू को कुछ इस तरह दबोच लिया कि वह बेचारा जिंदगी-भर के लिए पिस-पिसाकर रह गया। और सबसे अधिक प्रशंसा की बात जो उसने की, वह यह कि दो साल गुजरते-गुजरते ही एक बेटा अपनी सास की गोद में डाल दिया। सब निहाल हो उठे।

सो, समझदार शम्भू को आफत की परकाला शकुन्तला माथुर में कोई खास दिलचस्पी न हो, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। फिर भी उसे लल्लनजी में तो दिलचस्पी थी। वह चाहता था कि कुँवारा, बड़े बाप का बेटा और रूप-गुण में लाखों में एक लल्लनजी जरूर शकुन्तला माथुर में दिलचस्पी ले। आप अगर पूछें कि इससे शम्भू को क्या लेना-देना था? तो जवाब में फिर वही आध्यात्मिक सुख, सन्तोष और गर्व की बात दुहरानी पड़ेगी।

लेकिन लल्लन का भी अपना एक जीवन-दर्शन था। गुलशन के फूलों में ही सैर करना उसे अच्छा लगता था, आसमान के चाँद-सितारों की ओर हाथ लपकाना उसके उसूलों के खिलाफ़ था। वह ऐसे फूलों को पसन्द करता था, जिन्हें जब चाहे देखे, जब चाहे तोड़कर सूँघे या कोट में लगा ले और जब मुरझा जायें, फेंक दे। वह कोई ऐसी इल्लत पालने के सख्त खिलाफ था, जो उसके गले पड़ जाय और जिन्दगी मुश्किल कर दे।

शम्भू ने जब उसे बहुत उकसाया, तो आखिर उसने कहा—तुम तो जानते ही हो, मैं ऐसे पचड़ों में नहीं पड़ता। पता नहीं, क्या समझती है वह अपने को!

—भाई, अपने को वह कुछ समझती है, तो इसमें कोई गलती नहीं करती। भगवान ने उसे वह चीज दी है कि अगर वह अपने को कुछ न समझती, तभी ताज्जुब होता।

—तो आखिर मैं भी तो कुछ हूँ ?

—क्यों नहीं, क्यों नहीं ! तभी तो कहता हूँ । लोहा ही लोहे को काटता है । सच कहता हूँ, यार, मुझसे उसकी अकड़ नहीं देखी जाती । अगर तुमने उसे सीधा न किया, तो समझ लो कुछ न किया ।

—मुझे भर्रे पर न चढ़ाओ, ऐसी गोलियाँ मैं नहीं खेलता । ऐसी अकड़-फूं को दूर ही से सलाम करता हूँ ।

—अब मैं तुमसे क्या कहूँ ।...लेकिन, यार, तुम्हें एक बात शायद मालूम नहीं ।

—उसे भी बता डालो ।

—क्या फ़ायदा ? जाने ही दो । जब तुम्हें ज़रा भी दिलचस्पी नहीं, तो बात करना ही बेकार है ।

—लेकिन तुम्हारी यह बात गलत है । तुम यह जानते हो, कि मैं हर हसीन चीज में दिलचस्पी रखता हूँ ।

—दिलचस्पियाँ भी कई तरह की होती हैं ।

—गिना डालो ।

—गिनाना क्या है । मैं तो तुम्हारी दिलचस्पी के बारे में कह रहा था । तुम्हारी दिलचस्पी बेहद आसानपसन्द है ।

—सो तो है ।

—फिर इसमें तारीफ़ की क्या बात है ?

—मैंने तारीफ़ चाही ही कब ?

—लेकिन मैं तो चाहता हूँ कि मेरा दोस्त कम-से-कम एक तो तारीफ़ का काम कर डाले । सच कहता हूँ, हीरो बन जाओगे ! और फिर यह उतनी मुश्किल नहीं, जितनी तुम समझते हो ।

—यह तुमसे किसने कहा कि मैं इसे मुश्किल समझता हूँ ?

—तुमसे तो, यार, बात करना ही मुश्किल है । आ भी हूँ, जा भी हूँ !

यही तो मेरी फिलासफ़ी है :

गुलशन-परस्त हूँ, मगर गुल ही नहीं अज़ीज़

कोटों से भी निबाह किये जा रहा हूँ मैं।

—खूब, बहुत खूब !

—हाँ, तुमने यह बात नहीं बतायी ?

—कौन-सी ?

—वही, जो शायद मुझे मालूम नहीं।

शम्भू हँस पड़ा। बोला—यार, तुम्हें समझना बहुत मुश्किल है। इतने दिनों से तुम्हारे साथ रहकर भी जब मैं न समझ सका, तो दूसरा क्या खाक समझेगा !

—बिल्कुल गलत ! मैं किसी के लिए कुछ समझने को रखता ही नहीं, मैं तो आईने की तरह हूँ :

—जिसमें जो चाहे अपना चेहरा देख ले और इस ग़लतफ़हमी में भी रहे कि वह आईने को देख रहा है !

—इतनी गहरी बातें न करो, वर्ना मेरे सिर में चक्कर आ जायगा।

तभी बगल के कमरे से राजेश की गलाफाड़ आवाज सुनायी दी :

जीने को जी रहे हैं हम तेरे बगैर भी मगर
जिन्दगी जिसको कह सकें वैसी तो जिन्दगी नहीं।

और पैर से ठोकर मार उसने भड़ाम से दरवाजा खोल दिया। शम्भू भी उसी की तरह गलाफाड़ आवाज में चीखा—किसके बग़ैर, भई, किसके बग़ैर ?

—वाह, बेटा ! इसकी भी खबर आपको नहीं !—और वह उसी आवाज़ में गा उठा :

तेरी प्रतिमा मन-मन्दिर में, तेरी माला युग कर में है...

—बस ! बस करो !—लल्लन बोल पड़ा।

—तो समझ गये ?

—बिल्लकुल, बिल्लकुल, दुष्यन्त महाराज !

—तो फिर लाओ एक सिग्रेट, उसी जालिम के नाम पर !—स्लीपिंग पेजामा को दोनों घुटनों पर हाथों से उठाता हुआ राजेश पलंग पर बैठ गया और सिग्रेट का एक कश खूब ज़ोर से खींचकर धुआँ

निकालता हुआ बोला—भाई, माफ़ करना, तुम लोग दरवाजा बन्द करके कोई प्राइवेट बात तो नहीं कर रहे थे ?

—जाओ, माफ़ किया !

—फिर तो मैं कुछ देर तक बैठ ही सकता हूँ ?

—देखो, पार्टनर, यह ग़लत बात है।

—जैसा नवाब साहब का हुक्म ! अच्छा, एक सिग्रेट और करम फ़रमाइए ! इंगलैंग ही तब तक हो आऊँ।

लल्लन ने डिब्बा बढ़ाया, तो एक के बदले दो सिग्रेट निकालकर राजेश फिर उसी आवाज में वह शेर गाता हुआ, दरवाजा बन्द करके चला गया।

—सर साले सब रहे हैं, लेकिन किसी में भी उसे छेड़ने की हिम्मत नहीं। एक तुम हो भी तो...—शंभू ने कहा।

—फिर वही बात ? हो साले तुम पूरे बनिये ! सीधी बात करना तो तुम्हारी कौम ने जाना ही नहीं !

—क्यों नहीं ! तभी तो कहा जाता है :

सबसे चतुर बनिया, ओहू से चतुर सोनार;

लासा-लुसी लगाय के ठगे जात भूमिहार।

—ज़रा बताओ, तो बेटा, हमने तुम्हें क्या ठगा है ?

—मैंने तुम्हारी बात थोड़े ही कही है। वह तो जब तुमने कौम की बात चलायी, तो...

—नहीं, नहीं, यह सब तुम्हें मुँह लगाने का नतीजा है !

—इसमें भी तो आपका बड़प्पन ही है, छोटे सरकार। मैं तो आपकी प्रजा हूँ।

—अबे, तू सीधी तरह से वह बात क्यों नहीं बताता ?

—हुक्म है, तो बताना ही पड़ेगा,—शम्भू ने गम्भीर होकर कहा—उसे मैंने कई बार चोरी-छुप्पे तुम्हारी ओर देखते हुए देखा है।

लल्लन ज़ोर से हँस पड़ा। फिर उसके सिर पर एक चपत लगाकर कहा—मेरे ही खेलाये और मुझे ही हाथ दिखा रहे हो, बेटे !

—नहीं, बिल्कुल सच कह रहा हूँ ! तुम्हारी क़सम !

—कसम तुम अपने खूसट बाप की खाव, जो सौ माँगते हो, तो पचास भेजता है। वह मर जाय तो तुम राहत की साँस लो !

—अब तुम न मानो, तो इसका कोई इलाज नहीं। लेकिन तुम जरा ख्याल रखो, तो खुद ही देख सकते हो कि मैं ठीक कह रहा हूँ कि नहीं।

तभी मेस के महाराज ने दरवाजे पर आकर कहा—बाबू साहब, आज आपके कितने मेहमान इस्पीसल खायेंगे ?

लल्लनजी मना ही करने वाला था कि शम्भू बोला—यार, आज तो मुझे तुम जरूर खिलाओ, कई इतवार बीत गये।

—तुम्हारे मेस में आज स्पेशल नहीं है क्या ?

—अरे, हमारे मेस में तो रोज ही स्पेशल होता है ! कभी-कभी मुँह का जायका भी तो बदलना चाहिए।

*

लल्लन सचमुच ही अब ध्यान रखने लगा, हो सकता है, शम्भू ने सच ही कहा हो। अंगूर खट्टे हैं, कहकर जिसे वह टाल चुका था, अगर वह आप ही उसके मुँह में आ टपके तो क्या मुजायका !

लेकिन ऐसा हुआ नहीं। शम्भू की बात महीनों में एक बार भी सच साबित न हुई, तो अंगूर और भी खट्टे हो गये। तब उसके जी में आया कि शम्भू को इतना पीटे, इतना पीटे कि बच्चू जिन्दगी-भर याद करें। लेकिन फिर यह सोचकर वह मन को दबा गया कि यह तो और भी बेइज्जती की बात हो जायगी।

और फिर इम्तहान क्या आये, सब इश्क-विश्क का बुखार ही उतर गया। पढ़ाई, पढाई और पढ़ाई ! इम्तहान में फेल होने से बढ़कर कोई बेइज्जती की बात विद्यार्थियों के लिए नहीं होती। आवारे-से-आवारे विद्यार्थी भी, बल्कि सबसे ज्यादा वही, इस वक्त पढ़ाई में जुट जाते हैं। वे चाहते हैं कि जैसे भी हो, पास हो जायँ और शान बघारें कि साल-भर मजे किये, फिर भी तो पास हो गये। कहीं दूसरों की तरह साल-

मर पड़े होते, तब तो रेकार्ड ब्रेक कर देते। यह एक ऐसी शान है, जो आवारा विद्यार्थियों के सिवा कोई दूसरा समझ नहीं सकता। इस वक्त सभी जोंक की तरह किताबों से चिपट जाते हैं। किसी और बात के लिए जैसे उन्हें फ़ुरसत ही नहीं रहती। बाथरूम के गाने बन्द हो जाते हैं। खाने-पीने में भी वक्त खराब करना अच्छा नहीं लगता। दूध, दही और फलवालों के लिए यह बेहतरीन मौसम होता है। दिमाग़ के टानिक भी आजकल खूब बिकते हैं। बिजली के पंखों की तो क़हत ही पड़ जाती है। दरवाज़ों और खिड़कियों पर पर्दे पड़ जाते हैं और हमेशा बन्द रहते हैं। सब-के-सब एक ऐसी तनहाई अख्तियार कर लेते हैं, जैसे किसी को किसी से कोई मतलब ही न हो। शाम के पिक्चरों की जगहें पार्क ले लेते हैं। पार्कों में, मेस में, जहाँ-कहीं भी शाम को किसी से मिलो, बात चलती है, कैसी चल रही है? कितना पढ़ चुके? बहुत-से हांकते हैं, मैं तो आजकल बीस-बीस घण्टा पढ़ता हूँ। यह तीसरी बार दुहरा रहा हूँ। बहुत-से कहते हैं, कहाँ भाई, अभी तो मेरा मन ही नहीं जम रहा है। अभी तो पहले ही गियर में गाड़ी चल रही है। बहुत-से गंभीर होकर खामोश रहना ही ठीक समझते हैं। और आवारे उदास होकर कहते हैं, यह बेड़ा तो भगवान ही लगायें, तो पार लगेगा। और वे फिर हर साथी से मदद माँगते हैं। रात-दिन एक किये रहने पर भी उन्हें विश्वास नहीं होता कि पास होंगे। फ़ेल हो जाने की ही बात वे सबसे कहते हैं। डींग वे नहीं हांकते। फेल की सम्भावना का सामना करने की वे अभी से तैयारी करने लगते हैं, ताकि सचमुच ही फेल हो जाने पर कोई यह तो न कहे कि इतनी मेहनत की, इतनी हांकी, फिर भी साला फेल हो गया। हां, अगर कहीं बटेर हाथ लग गयी, तब क्या कहने! हांकने का वही अवसर ठीक रहेगा और इसी अवसर को प्राप्त करने का प्रयत्न वे चोरी-चोरी, खूब मेहनत से, पूरी ताकत लगाकर करते हैं। जो भी हो, इस वक्त न पढ़ने से बढ़कर शर्म, पाप और अपराध की कोई बात विद्यार्थियों के लिए नहीं होती। बिजली की मीटर को एक मिनट का भी आराम नहीं। घड़ियाँ सदा आँखों के सामने।

छन-छन में दिन कटते हैं। अभी सुबह, अभी शाम। अरे, भाई, अब तो थोड़ा दिमाग़ को रेस्ट दो। फिर कितनी कहानियाँ कही जाती हैं : एक बड़ा ही घोट्टू लड़का था। कमबख्त रात-दिन पढ़ता था। कल इम्तहान, लेकिन उल्लू का पट्ठा आज भी रात को नहीं सोया। फिर जानते हो, एक्जामिनेशन-हाल में वह गया, तो क्या हुआ ? बेचारे को चक्कर आ गया। सब काग़ज़ कोरा ही रह गया।...और एक था बलियाटिक। इन्हें तो तुम जानते ही हो। साले साल-भर एक रफ्तार से पढ़ते है, किताबों की चटनी बनाकर चाट जाते हैं। फिर भी सब्र नहीं। इम्तहान की रात पर भी रहम नहीं करते। इसका नतीजा ? सब लड़के तो इम्तहान देने जा रहे हैं, और वो बेटा पड़ गये हैं १०५ डिगरी का बुखार लेकर।...सो, भाई, जो साल-भर की पढ़ाई से न होगा, वह कुछ घण्टों की पढ़ाई से क्या होगा ? वक्त नाजुक है। ज़रा बच-बचाकर रहो। कहीं कुछ हो गया, तो पूरा साल बरबाद।

अब डिवीजन की बातें चलती हैं।...बस, सतीश और राकेश का मुक़ाबिला है। देखो, कौन टाप करता है।...भई, तुम्हारा तो फर्स्ट क्लास रखा हुआ है।...पार्टनर, मेरा तो रायल डिवीजन भी आ जाय, तो धन्य मनाऊँ।...सुना, उस साले सर्वदा का ? कहता है, फर्स्ट डिवीजन की तैयारी न हुई, तो इम्तहान में ही नहीं बैठेगा।....

और अब कलमें साफ हो रही हैं, दो-दो, तीन-तीन। अच्छी-से-अच्छी स्याही। कपड़े दुरुस्त। सुबह का नाश्ता ? दही और बुँदियाँ। दही से दिमाग़ ठण्डा रहता है। कपड़े निकालकर रख लिये गये। टूथ-ब्रश और क्रीम अपनी जगह पर। थोड़ा इधर-उधर नोट के पन्ने उलट-लिये जायँ। फिर कील-काँटे से हर तरह दुरुस्त हो, ढेर-सा ठण्डा, बढ़िया, खुशबूदार तेल सिर में चुपड़कर, मिलाते हुए थोड़ी देर चहल-क़दमी।...अरे, भाई चन्दर, अब सो रहो। घड़ी में एलार्म लगाना न भूलना। तकिये के पास आईना तो रख लिया है न ?

सुबह एक खामोश भाग-दौड़। नहा-धोकर कपड़े पहन लिये। नोट उलटे-पलटे। दरवाज़ा बन्द कर कुछ नाखूनों और हथेलियों पर

और कुछ काग़ज के टुकडे भी जेब में रहें तो हर्ज नहीं।

इम्तहान का दौर। एक भारी बोझ रोज सिर पर लिये इम्तहान को जाना और उतारना, और फिर एक बोझ लिये लौटना। कैसे जल्दी यह बोझ हटे!

*

आज आखिरी पर्चा था। लड़के निकले, तो आज जैसे उन्हे भागने की जल्दी न हो। एम० ए० का फ़ाइनल खतम। युनिवर्सिटी छूट रही है। साथी छूट रहे हैं। भर आँख देख लिया जाय। मिल लिया जाय। इन आखिरी क्षणों में आँखें भरी-भरी-सी हैं, दिल भरे-भरे-से हैं। अचानक ही यह क्या हो गया? इस बिछुड़न का ख्याल ही किसे था?

सबसे मिल लो, सब से दो बातें कर लो। जाने कौन कहाँ जा पड़ेगा। फिर मिलना हो, न हो। आज कोई डर नही, कोई झिझक नही, कोई दुराव नही। सब अपने स्नेही हैं, साथी हैं। दिल पिघल रहे हैं, मन रो रहे हैं। सब मिल रहे है। लड़कियाँ भी, लड़के भी। आँखों में पानी की चमक है, होंठो पर उदास मुस्कानें हैं। कोई लड़का चाहता है, तो लड़की हाथ भी मिला लेती है। आखिरी बेलौस अरमान है। किसी का दिल इस अवसर पर तोड़ना मुश्किल है।

—हलो!

दो हाथ मिलते हैं।

—भई, आगे क्या इरादे हैं? एल० एल० बी० करोगे?

—कुछ कह नही सकता। जी तो जरूर करता है कि दो साल और यह गोल्डेन लाइफ गुजारा जाय, लेकिन...

—माफ करना, कामरेड, मैंने तुम्हे बहुत गालियाँ सुनायी हैं।

—अरे यार, तो मैंने ही तुम्हे कब छोडा?...

—कब जाओगे, पार्टनर?

—अभी रुपया नही आया। शायद दो-एक दिन रुकना पडे।....

—पिक्चर चलोगे? रेखा ने मेरी दावत क़बूल कर ली है।....

— दोस्त, हम तुम्हें स्टेशन पर सी-ऑफ़ करने आयेंगे। दस
ट्रेन है न ?

—हाँ, थैंक्स !....

— मैं तो आई० सी० एस० की तैयारी करूँगा। यहीं होस्टल
रहूँगा।....

—मेरा पता लिख लो। यार, चिट्ठी जरूर लिखना !...

—अपना रोल नम्बर जरा लिखा दो।....

—भाई, तुम तो यहीं रहोगे न, नतीजा निकलते ही मुझे तार देना
मेरे यहाँ तीन दिन के बाद अखबार पहुँचता है।....

—शादी में मुझे जरूर बुलाना।

—कोई नौकरी मिलने के पहले मैं शादी नहीं करने का।....

—मिस चटर्जी, भई, मुझे माफ़ कर देना। मैंने बड़ी बदतमीजि
की तुम्हारे साथ।

—कोई बात नहीं।....

सब भारी कदमों से चल रहे हैं। जो जहाँ तक जिसका साथ
सकता है, देता है। फिर हाथ जुड़ते हैं, हाथ मिलते है। चियर यू,
चियर यू !....गाड ब्लेस यू !....रेमेम्बर मी !....प्लीज ड्र राइट....विश
यू आल सक्सेस !....

लल्लनजी और शम्भू सबसे विदा लेकर मुँह लटकाये अपने होस्टल
की ओर चले जा रहे थे कि अचानक एक सुरीली आवाज पीछे से आयी
—मिस्टर लल्लन !

दोनों साथ ही मुड़े। दोनों की आँखें जैसे खुशी से पागल हो गयी।
यह शकुन्तला माथुर आ रही थी।

उसने कहा—मिस्टर लल्लन, ए फ्यू, मिनिट्स प्लीज ! एक्सक्यूज
मी, मिस्टर शम्भू !

शम्भू जरा हट गया। शकुन्तला पास आकर लल्लन की ओर मुस्क-
राती हुई आँखों से देखकर बोली—आप गर्मियाँ कहाँ बितायेंगे ?

लल्लनजी तो कुछ क्षणों के लिए अवाक् हो गया। बादलों का

कलेजा चीर देनेवाली बिजली क्या फूल की तरह मुस्करा भी सकती है ?

शकुन्तला ने ही दुपट्टे में हाथ उलझाकर कहा—मेरा हाथ तो दर्द करने लगा।...हम मसूरी जा रहे हैं। कल ही। आप भी वहीं आइए न ! बड़ा मजा आयगा। डैडी आपसे मिलकर बहुत खुश होंगे।

आसमान का चाँद किसी के दामन में आ जाय, तो उसका क्या हाल होगा ? बड़ी मुश्किल से, बिल्कुल सूखे गले से लल्लनजी बस इतना ही कह पाया—आऊँगा।

—यू मस्ट ! और अगर कोई खास अड़चन न हो, तो साथ ही चलिए ! कल रात की लखनऊवाली गाड़ी से हम जा रहे हैं।

—मैं कोशिश करूँगा।

—थैंक्यू ! नमस्ते !—और भागती हुई शकुन्तला जरा दूर खड़ी अपनी कार की ओर चली गयी।

तो शकुन्तला एक साधारण लड़की की तरह मुस्कराना भी जानती है !...और वह दुपट्टे में हाथ भी उलझाती है !...और दौड़-भाग भी कर सकती है !...लल्लनजी जैसे वहीं-का-वहीं गड़ा रह गया।

शम्भू ने होंठों पर जबान फेरते, लपककर पूछा—क्या कहा उसने ?

जवाब देने का होश अभी लल्लनजी को नहीं था।

उसका हाथ पकड़कर शम्भू बोला—बताओ न, यार ?

कार चली गयी।

—मालूम होता है, देयर इज समथिंग ऐट द बाटम !

—क्या कहा ?

—अमा, तुम तो, मालूम होता है, पहले ही तीर से....

—तेरे तीर नीमकश को....

—कोई मेरे दिल से पूछे,....अच्छा तो, फिर कहानी खतम हो गयी, या ?

—अभी तो शुरू ही नहीं हुई।

—बता, यार, क्या बातें हुई ?

—बताऊँ ?—पूरे होश में आकर लल्लनजी बोला। अब

से हँस पड़ने को उसका जी कर रहा था।

—बताओ!

—वह पूछ रही थी कि क्या मिस्टर शम्भू की शादी हो गयी है?

—सच!—शम्भू ने मुँह बा दिया।

—बिलकुल!

—तो तुमने क्या कहा?—उमड़ती हुई खुशी की आभा से उसका ऐंठा-सा चेहरा भी कितना भला लग रहा था!

—मैंने कहा, वह आप ही का इन्तज़ार कर रहे हैं।—गम्भीर होकर लल्लनजी ने कहा।

यह वह ठौर है, जहाँ हर आदमी को अपने बारे में गलतफ़हमी जरूर रहती है। मजनूँ की 'आँखों' और लैला के 'सौन्दर्य' का असर मानव-जाति पर शायद उनके पहले भी था और शायद प्रलय तक रहेगा।

—तो वह मुझसे क्यों न मिली?—पूरे चेहरे की ऐंठ अब उसके फड़कते हुए होंठों पर आ जमी।

अब लल्लनजी के लिए और सँभालना मुश्किल हो गया। वह बोला—कहा है कि मुँह धोकर मिलने आयगी।

शम्भू की हालत वही हुई, जो कोई खुशी का तराना गाते हुए रिकार्ड की अचानक उसमें सूई चुभ जाने पर हो। उसे गुस्सा भी न आया।

लल्लनजी एक ठहाका लगाकर बोला—मेढकी रा जुकाम पैदा अस्त!

शम्भू मुर्दे की तरह चुप। हवाई जहाज से कोई किसी को मजाक में गिरा दे, तो वह क्या करे?

लल्लनजी और शम्भू ने प्रोग्राम बनाया था कि आज वे तीनों शो सिनेमा देखेंगे, किसी होटल में खायेंगे, और दूसरे दिन शाम की ट्रेन से गाँव को रवाना हो जायेंगे। लेकिन कमरे में पहुँचकर शम्भू तुरन्त नौकर

 सामान बँधवाने लगा।

लल्लनजी ने उसे बहुत मनाने की कोशिश की, लेकिन वह न माना। ऐसा भी मजाक क्या? दोस्त का मतलब यह थोड़े ही होता है!

आखिर शाम को प्लेटफार्म पर लल्लनजी ने उसे सब बता दिया। और कहा—बेटा, गाँव जाकर तुमने किसी से भी कुछ कहा, तो समझ लेना!

ट्रेन छूटी, तो आखिर शम्भू से मुस्कराये बिना न रहा गया। उस वक्त वह ऐंठ उसकी आँखों में आ गयी थी।

*

सब सामान खरीदकर, अच्छी तरह बँधवाकर शम्भू ने मोटर पर रखा दिया और आदमियों को सहेजकर बैठा दिया। ड्राइवर को ताक़ीद कर दी कि छोटे सरकार आनेवाले हैं। शाम की गाड़ी से आयेंगे। आगे की दो सीटें वह रिजर्व रखे।

तब वह लाडली के यहाँ चला। दो बजे थे। लाडली अपने आराम-गाह में थी। अम्मी ने उसे जगाकर बताया, तो उसने शम्भू को वहीं बुला लिया। आदाब के बाद उसने कहा—कुर्सी पर क्यों बैठ रहे हैं? यहाँ पलंग पर ही तशरीफ़ लाइये न!—और वह कपड़े ठीक करती हुई एक ओर हो गयी।

शम्भू पलंग पर बैठ गया।

—यह बदहवासी क्यों छायी हुई है जनाब के चेहरे पर? खैरियत तो है?

—इस धूप-गर्द में किसके मिजाज ठिकाने रहते हैं?

—ऐसी क्या जरूरत आ पड़ी कि ऐसे मे निकल पड़े?

—पहले शर्बत पिलवाओ। जरा ठण्डा हो लूँ, तो बातें करूँ। ओफ़, मेरी तो जान ही निकल गयी!

—शरबत पियेंगे कि शरबत?—लाडली के लहजे से ही एक लफ्ज के दो मानी साफ़ थे।

—नहीं, शरबत ही। बर्फ़ जरा ज्यादा हो।

—मुँह धो डालिए न।

यह 'मुँह' की बात हमेशा शम्भू को परेशान कर देती है। उसका वश चलता, तो वह इस शब्द को ही कोश से निकाल फेंकता!

रूमाल से मुँह पोंछता हुआ शम्भू बोला—नहीं, बड़ी जल्दी है। अभी कलक्टर साहब और दूसरे अफ़सरों से मिलने भी जाना है। शाम को लौटना भी है।

—तो मुँह धोने में क्या ऐसी देर हो जायगी?

फिर वही मुँह! जैसे लाडली भी शम्भू के इस राज को जानती हो। और फिर यह दो लफ़्ज़ों का मुहाविरा भी कमबख्त क्या है!

—नहीं, बस ठीक है।

—जनाब की मर्ज़ी,—और उसने शरबत लाने का हुक्म दिया।

—छोटे सरकार नहीं आये?

यह छोटे सरकार भी मुँह से कुछ कम नहीं! सुन्दर दोस्त पर आपको गर्व हो, तो ठीक है। लेकिन किसी और के सामने आप उसके साथ जायँ, तब पता चले कि आपकी पूछ कितनी है! फिर वह कम-बख्त उससे बड़ा आदमी भी तो है!

—आज शाम की गाड़ी से वह पहाड़ से आ रहा है,—आज जान-बूझकर उसने 'रहा है' कहा, क्योंकि किसी भी तीसरे के सामने इस जिले में वह छोटे सरकार को इस तरह कहने की हिम्मत नहीं कर सकता।

—ओह!...तो पहाड़ गये थे। तभी कहूँ, इधर को बहुत दिनों से रुख क्यों न किया।

छोटे सरकार जायँ भाड़ में! सब बातें यहीं खत्म कर उसने कहा —बड़े सरकार ने मङ्गल को तुम्हें बुलाया है।

—क्या बात है? कोई तकरीब है या यों ही तफ़रीहन?

—कोई जलसा है।

—उनका हुक्म भला मैं कैसे टाल सकती हूँ? मगर उनसे पालकी भेजने को कह दीजिएगा। मोटर से जाने की इस गर्मी में वन्दी की नहीं।

—अगर किसी अफ़सर से तुम्हें अपनी कार में ले आने को कह दूँ, तो?

—तब ठीक है। लेकिन कस्बे के आगे सड़क नहीं है। वहाँ पालकी भेजवा दें।

—अफ़सरों की गाड़ी के लिए हर जगह रास्ता बन जाता है!

दोनों हँस पड़े।

नौकर शरबत दे गया। शम्भू पी चुका, तो लाडली ने कहा—पान बनाऊँ?

—बनाओ, इसमें क्या पूछना है?...अब जाकर तबीयत कुछ ठण्डी हुई। बर्फ भी एक न्यामत है, लाडली। देहात में तो तरस जाता हूँ।

—यहाँ भी एक कोठी क्यों नहीं बनवा लेते?—[illegible] लाडली बोली।

—बनवायेंगे, जरूर बनवायेंगे! जरा अपने घर तो आने दो। सोचा था, एल-एल० बी० करके यहीं प्रैक्टिस के बहाने रहूँगा, लेकिन बुड्ढा साफ़ मुकर रहा है।

—खुदा करे हर जवान बेटों के [illegible] बाप मर जायें!

दोनों फिर हँस पड़े।

चार बीड़े पान बनाकर उसने तश्तरी बढ़ाई।

शम्भू ने मुँह बढ़ाकर कहा—खिला दो!—और मन-ही-मन डर रहा था कि फिर कहीं 'मुँह' बीच में न आ जाय।

लाडली ने हँसते हुए कहा—ऊँगली न काट खाइएगा!

दोनों फिर हँस पड़े।

पान चबाते हुए शम्भू ने [illegible] निकाला और एक सौ रुपये के नोट निकालकर तश्तरी में रखते हुए कहा—ये [illegible] पाँच रुपये पान के। अब मैं चलूँ?

—बैठिए, बैठिए, इतनी जल्दी [illegible] ही इस वक्त निकला।

—और भी बहुत-से काम डाल रखे हैं बड़े सरकार ने मेरे सिर। फिर कभी इतमीनान से आऊँगा।

—जरूर आइएगा, आपका घर है। लेकिन इस वक्त तो इस धूप में आपको न जाने दूँगी। थोड़ी देर आराम कर लीजिये, फिर चले जाइएगा।

—तुम्हारे यहाँ आकर जाने की तबीयत किसकी करती है! मज-बूरी न होती, तो आज जरूर ठहरता। बड़े सरकार का हुक्म है कि छोटे सरकार के साथ ही लौट आऊँ। सब इन्तज़ाम कराना-धराना है।

—बहुत बड़ा जलसा होगा क्या?

अब बताने में शम्भू ने कोई हर्ज न देखा। 'मुँह' और 'छोटे सर-कार' दोनों ही इस वक्त पृष्ठभूमि मे चले गये थे। मनीबेग अभी उसके हाथ मे ही था।

—हाँ, काफ़ी बड़ा। और दिन अब कुल एक रह गया। अचानक बड़े सरकार ने जलसा रोप दिया।

—आखिर खुशी की कोई वजह तो होगी ही?

—छोटे सरकार ने एम०ए० पास किया है और साथ ही फ़ौज में एक बड़े अफसर के ओहदे पर जा रहे है।

—खुदा रहम करे! यह कैसी खबर सुनायी आपने! भला छोटे सरकार को इसकी क्या जरूरत थी? एक उन्हीं से तो खान्दान रौशन है। बड़े सरकार ने उन्हे कैसे जाने दिया?

शम्भू फिर चिढ गया—अब यह-सब तुम उन्हीं से पूछना!

—बाप से बेटे के बारे मे और बेटे से बाप के बारे में मैं कैसे कुछ पूछ सकती हूँ? और फिर छोटे सरकार से तो वहाँ मैं मिल भी नहीं सकती। बड़े सरकार हैं, इतने अफ़सर जा रहे हैं, कहाँ मौक़ा मिलेगा? आप छोटे सरकार को थोड़ी देर के लिए आज लाइये न। कहिएगा, मैंने बहुत मिन्नत की है।

शम्भू ने मनीबेग जेब में डाल लिया। बोला—कह दूँगा।

—कह दूँगा नहीं, लाने का वायदा कीजिए! वर्ना मैं स्टेशन पर

अपना आदमी भेजूँगी।

—मोटर छूट जाने का डर रहेगा।

—छोटे सरकार को छोड़कर मोटर चली जायगी ?

—मुसाफिर गाली देंगे।

—आप तो खामखाह के लिए यह-सब सोच रहे है। पक्का वादा कीजिए !

—अच्छा, भई, करता हूँ। कहो तो उसे ही अकेले भेज दूँगा। लेकिन ज्यादा वक्त न लेना।

—नहीं, नहीं, आप भी आइएगा। आपको नाहक़ गलतफहमी हो जाती है। मेरे लिए तो आप दोनों दोस्त बराबर है। पान और बनाऊँ ?

—नहीं, अब चलूँगा।

—मैं नहीं जाने दूँगी, जनाब !—और वह पान बनाने लगी।

पाँच रुपये और आ गये।

—अच्छा, अब तो इजाजत दो। शाम को भी तो आना पड़ेगा।

—बड़ी ज़हमत होगी न ?—लाडली ने मटककर कहा और इस तरह उसकी ओर देखा कि बस वह फ़ना हो गया।

मुग्ध होकर शम्भू ने कहा—ऐन राहत !—और उसने उसके मुँह की ओर अपना मुँह बढ़ा दिया। मुस्कराती हुई लाडली ने स्वागत किया। एक यही वह जगह है, जहाँ 'मुँह' का कोई सवाल नहीं उठता। शम्भू नाहक झेंपता और परेशान होता है।

दस रुपये और आ गये।

और...बड़े सरकार के रुपये हैं। कोई चिन्ता नहीं।

सब बेचैनी से इन्तजार कर रहे थे। छोटे सरकार की सवारी अभी तक नहीं आयी। जाने क्या बात हुई। पाँच-पाँच, दस-दस मिनट पर आदमी दौड़ाये जा रहे हैं, जाओ, देखो, क्या बात है? पाँच-पाँच, दस-दस मिनट में आदमी कस्बे से भागे आ रहे हैं....मोटर अभी तक नहीं आयी। क्या बात है, मोटर अभी तक क्यों नहीं आयी?

सौदागर मय लाव-लश्कर दोपहर से ही कस्बे में जमा था। अंग्रेजी बाजेवाले बजाते-बजाते थक गये थे। उनके चारों ओर भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। लोग पूछ रहे थे, क्या बात है, और लोग बता रहे थे, छोटे सरकार आ रहे हैं। मंगल को बहुत बड़ा जलसा होगा। पतुरिया का नाच भी होगा।

सजे हुए हाथी के आगे चारा डाल दिया गया था। पीलवान उसकी गर्दन पर बैठा सिर पीछे को डाले, ऊँघ रहा था। अंकुसी हाथी के कान में लटक रही थी। लड़के चारों ओर दूर-दूर से ही खड़े देख रहे थे।

बल्लम-बल्लम मोटे नीम के तने से टिकाकर खड़ा कर दिये गये थे। और उसी की घनी छाया में अपनी अंगौछी बिछा-बिछाकर आदमी लेटे हुए थे। उन्हें मक्खियाँ तंग कर रही थीं। वे मक्खियों को जितनी गालियाँ दे रहे थे, उतनी ही छोटे सरकार को, मोटरवाले को और सौदागर को भी। सब अपना हरज करके आये थे। बेगार में पकड़ लिये गये थे। बड़े सरकार के यहाँ जितने भी काम थे या हो सकते थे, उनके लिए पुश्तों से आदमी बँधे हुए थे। वहीं पर सबका नाम दर्ज था। कारिन्दे की जबान पर हर आदमी का नाम था।

आदमी भी जानते थे कि बड़े सरकार के यहाँ कौन काम पड़ेगा, तो बेगार में कौन-कौन जायगा। भाग्य की रेखा की तरह यह राजा-प्रजा का सम्बन्ध अटल और अमिट था। इसमें कभी कोई फ़र्क आ ही न सकता था। फ़र्क आया, तो समझ लो, किसी की शामत आ गयी। जब तक खान्दान में एक भी आदमी है, इस विधान से वह बच नहीं सकता। ठाले के दिनों में यह बेगार उतना नहीं खलता, लेकिन काम के दिनों में, जुताई, बोआई, सिंचाई, कटाई, दवाई आदि के दिनों में तो बेचारों की जान ही निकल जाती है। और ऐसे में तो और भी, जब एक घड़ी के काम के लिए उन्हें पूरा दिन खराब करना पड़ जाता है। सब कुड़बुड़ा रहे थे। आँखें मूँदे पड़े थे, सो जाने की कोशिश भी कर रहे थे। लेकिन नींद कहाँ? सबका मन खेतों पर टंगा था। किसानों और मजदूरों के लिए सबसे बड़ा दंड यह बेकार बैठा देना है। सब जानते हैं कि मोटर शाम को आती है, फिर इस बदमाश सौदागर ने उन्हें दोपहर से ही क्यों यहाँ पकड़कर बैठा दिया? बहुतों ने तो दोपहर का सत्तू भी न खाया था। साले ने ऐसी जल्दी मचा दी, जैसे मोटर आकर लग गयी हो!

लेकिन सौदागर भी क्या करता। बड़े सरकार का जो हुक्म हो, वही तो करे। बड़े सरकार को बड़ी जल्दी मची थी। जाने कब मोटर आ जाय। फिर, यह भी कोई बात हुई कि गये और ले आये, किसी को मालूम हुआ, किसी को मालूम भी न हुआ कि कौन आया, कौन गया। जंगल में मोर नाचने की बात हुई। इसलिए जरा जल्दी जाओ, लोग देखें-सुनें, समझें-बूझें। आखिर छोटे सरकार अफसर बनकर आ रहे हैं कि कोई मजाक है!

रास्ते में कई जगह फाटक लगे हैं। 'स्वागतम्' और 'छोटे सरकार चिरंजीवी हो' सुनहरी और रुपहली अक्षरों में चमक रहे हैं। गाँव के पोखरे से हवेली के फाटक तक दोनों ओर झंडियाँ टंगी हैं। फाटक केलों, अशोक के पत्तों और झंडियों से खूब सजाया गया है। बहुत बड़े लाल कपड़े पर रुपहले काग़ज से लिखा 'स्वागतम्',

अक्षरों में, टंगा है। फाटक के बाहर चौकी पर शहनाईवाले सुबह से ही पें-पें लगाये हुए हैं। चौकीदार ने भी क्या रंग बदला है! और अन्दर का दृश्य तो चौबीस घंटों में ही ऐसा बदल गया है कि कोई देखे, तो आश्चर्य करे कि किस जादूगर ने इतनी ही देर में यह-सब खड़ा कर दिया! हवेली, दीवानखाना, मन्दिर सब सज-सजाकर छोटे सरकार के स्वागत में खड़े हैं। फाटक, मन्दिर, दीवानखाने और हवेली के द्वारों पर मंगल-घट सजाये हुए रखे हैं।...बड़ी तेजी से तरह-तरह की मिठाइयाँ और नमकीनें बन रही हैं। घी की सुगन्ध चारों ओर फैल रही है।

हवेली के अन्दर दो प्राणियों को छोड़कर सब खुश नजर आ रहे हैं। नजर आ रहे हैं; इसलिए लिखा जा रहा है कि उनके मन की बात कौन जाने? उन दो दुखी प्राणियों में भी एक ऐसी है, जिसे अपने दिल का गम कोशिश करके छुपाना पड़ रहा है। वह नहीं चाहती कि उसका राज सब पर जाहिर हो जाय। मन में ही गम को दबाये रखना कितना मुश्किल होता है, यह कोई सुनरी से पूछे। लेकिन वह बेचारी करे भी तो क्या? हाँ, दूसरी जरूर ऐसी है, जो कुछ कह-सुन सकती है। आखिर वह रानी है।

रानीजी बिस्तर पर पड़ी हुई है। जब जी में आता है, रोने लगती है, जब जी में आता है, चुप हो जाती हैं। मुँदरी को उनके पास से हटने का हुक्म नहीं। सुनरी, जो हो सकता है, कर रही है। बदमिया उसके मन की बात जानती है। इधर उसने बहुत कोशिश की है कि सुनरी का मन छोटे सरकार की ओर से हट जाय। लेकिन सुनरी है कि हर बात पर बस रो देती है। कुछ कहती नहीं, कुछ सुनती नहीं। हो सकता, तो वह सुनरी को कुछ दिनों के लिए बाहर भेजवा देती। लेकिन मुश्किल तो यह है कि मुँदरी फुआ से कैसे कुछ कहा जाय। मुँदरी फुआ को वह जैसा जानती-समझती है, उसे डर ही नहीं, पूरा विश्वास है कि जैसे ही उसे कुछ मालूम होगा, वह सुनरी को जान से मार डालेगी, और उसकी खुद जो फजीहत करेगी, उसकी सोचकर ही

उसका कलेजा काँप-काँप जाता है।

हर पहलू पर बहुत सोचने-समझने के बाद, बदमिया ने कहा था—अच्छा, कम-से-कम एक काम तो तू करना ही।

आँचल से आँसू पोंछकर सुनरी बोली थी—का ?

—तू उसके पास जाना ही नहीं,—बदमिया को पूरा डर इस बात का था कि अगर इस बार वह छोटे सरकार से मिली, तो फिर गयी। परदेश से वह आ रहा है और फिर परदेश ही उसे जाना है। बेचारी सुनरी !

सुनरी ने जरा देर बाद कहा था—और अगर वह बुलाये, तो ?

इस 'तो' का जवाब किसके पास था ? बदमिया चुप हो गयी थी। उसे बड़ा दुख हुआ था।

*

दीवानखाने के सामने दरबार लगा हुआ था। दरबार के चारों ओर भीड लगी हुई थी। पूरे सहन में ऐसा छिड़काव हुआ था कि तरी बरस रही थी। आज लालटेन नहीं, गैस जल रहे थे। और चारो ओर जैसे दिन का प्रकाश छाया हो।

जमुना ने भागते हुए आकर खबर दी कि सवारी चल पड़ी है। दरबार आप ही बरखास्त हो गया। भीड में खलबली मच गयी। सब-के-सब फाटक की ओर भागे। बस, बड़े सरकार तखत पर रह गये। खुशी से आँखें मलकाते हुए उन्होंने निगाली मुँह में डाल, जोर का एक कश खीचा, लेकिन जब कुछ भी हाथ न आया, तो चिलम की ओर एक नजर डाल वह चीख पड़े—बेंगवा !

इमरती से भरा थाल तखत के पैताने रखते हुए बेंगा बोला—जी, बड़े सरकार।

—अबे, बुझी चिलम फ़र्शी पर रख छोड़ी है ?

—अभी-अभी तो भरी थी, बड़े सरकार,—चिलम उतारते हुए बेंगा बोला। आज शाम से जाने वह कितनी चिलमे भर चुका था उसे ताज्जुब हो रहा था, कि यह चिलम ससुरी इतनी जल्दी-जल्दी न

घुस जाती है ? उसे क्या मालूम था कि बड़े सरकार को आज कुछ लेने का होश न था। दम न था आग बुझे न, तो क्या करे ?

—रहने दे। पान उठा !

तश्तरी उठाकर बेंगा ने बढ़ा दी। गाव तकिये पर लेटे-लेटे ही बड़े सरकार ने बीड़े मुँह में डाले, फिर डिबिये से जर्दा निकाल, खाते हुए बोले—पुजारीजी से पूछ, तिलक का सामान तैयार है न ?

बेंगा मन्दिर की ओर भागा।

बाजे के ऊपर हाथी के घंटों की टन-टन की आवाज आने लगी। आदमियों का शोर साफ सुनायी देने लगा। बड़े सरकार उठकर बैठने लगे, तो ढेर-सारी पीक मुँह से उछलकर कुरते को रंग गयी। लेकिन उन्होंने उधर कोई ध्यान न दिया, जैसे वह खुशी का रंग हो।

शहनाई जोर से बज उठी। हर ओर एक शोर बरपा हो गया। हवेली की, रानीजी, मुँदरी और सुनरी को छोड़कर, सब औरतें हाथ का काम छोड़-छोड़कर बाहर भाग आयीं। हलवाई और दूसरे नौकर-चाकर भी मन्दिर के दरवाजे पर आ खड़े हुए। वहाँ पुजारीजी तिलक की सुनहरी थाल सजाये गैस के पास खड़े थे। न आ सका, तो बेचारा गोपाल। वह लट्ठ लिये जमुनापारी के पास अन्दर गोशाला में खड़ा था। जमुनापारी जमीन खोन खा रही थी और पगहा पेर-पेरकर बाँ-बाँ चिल्ला रही थी। बैल भी कनौतियाँ खड़ी कर, आँखें फाड़-फाड़कर शोर की दिशा में देख रहे थे।

सुनरी का कलेजा धक-धक कर रहा था। और रानीजी को लग रहा था, जैसे एक जलूस उन्हें रौंदता हुआ चला जा रहा हो। और मुँदरी ऐसी अनमनी हो रही थी, जैसे इस सबसे कुछ मतलब हो भी और नहीं भी।

आगे-आगे बाजा, उसके पीछे हाथी, फिर बल्लम-बल्लम और फिर भीड़ फाटक में दाखिल हुई। हाथी मन्दिर के सामने आगे के पैर आगे और पीछे के पैर पीछे फैलाकर बैठ गया। पुजारीजी ने खुशी के मारे काँपती अँगुलियों से जल्दी-जल्दी दही, हल्दी, चन्दन और अक्षत

को मिलाकर लल्लनजी के आगे बढ़े हुए ललाट की ओर उठाया कि तभी जाने उन्होंने क्या देखा कि उनकी आँखें झपक गयीं और हाथ का थाल जैसे गिरने-गिरने को हो गया।

मुस्कराकर लल्लन ने कहा—प्रणाम, पुजारीजी! तिलक लगाइए न।

आवाज पहचानकर पुजारीजी ने खीसें निपोर कर कहा—हाँ-हाँ! छोटे सरकार तो इसी बीच इतना बदल गये हैं कि मैं तो हक्क-बक्का हो गया।—और उन्होंने मन्त्र पढ़ते हुए पाँच बार तिलक लगा दिये।

हाथी उठा। घंटे टनुन-टनुन कर फिर टन-टन बज उठे। बड़े सरकार के तख्त के पास जाकर हाथी फिर वैसे ही बैठ गया। लल्लन उतरा। लपक कर पिता के पाँव छुए।

लेकिन उसे देखकर पिता की भी वही हालत हुई, जो पुजारीजी की हुई थी या मोटर से उतरते समय सौदागर की हुई थी।

लल्लन ने मुस्कराकर कहा—आपने आशीर्वाद नहीं दिये, नाराज हैं क्या?

—नहीं-नहीं,—बड़े सरकार ने आँखें झपकाते हुए कहा—जिओ, जिओ! मैं देख रहा था कि महीनों में ही तू क्या-से-क्या हो गया! इस पोशाक में तो तू....अच्छा, चल, तू हाथ-पाँव धो। बेंगवा......

—माताजी के पाँव छूकर अभी आता हूँ,—कहकर लल्लनजी हवेली की ओर लपका।

—अरे, कपड़े तो बदल लो!—बड़े सरकार ने कहा।

—अभी आया,—मुड़कर लल्लन ने कहा और आगे बढ़ गया।

हाथी खड़ा-खड़ा बार-बार बड़े सरकार की ओर सूँड बढ़ा रहा था। लल्लन के हट जाने पर उसने सूँढ से बड़े सरकार के पाँव छुए, तब जाकर जैसे उन्हें होश आया। उन्होंने इमरती का थाल उठाकर सामने कर दिया। हाथी ने एक बार में ही सब समेटके मुँह में डाल लिया। फिर चिग्घाड़कर और सूँढ उठाकर, सलाम की रस्म अदा कर मुड़कर हाथीखाने की ओर भागा, जैसे एक मजदूर ड्यूटी खतम

पर घर की ओर भागता है ।

*

—सलाम, छोटे सरकार ! हवेली के सामने खड़ी सब औरतों ने एक ही साथ कहा । और उसके पीछे लग गयीं ।

अन्दर जाकर लल्लन ने कहा—तुम लोगों में कोई ऊपर नहीं आयगी । जाओ, अपना काम देखो !—और लपककर सीढ़ियों पर जा रहा ।

दरवाजे पर इन्तज़ार में खड़ी मुँदरी ने उसे देखा, तो चिहाकर मुँह बाये रह गयी, सलाम करने की भी सुध न रही ।

—ऐसे क्या देख रही है ? माताजी की तबीयत कैसी है ?—और मुस्कराता हुआ वह अन्दर हो गया ।

पलंग पर दूसरी ओर मुँह किये लेटी माताजी के पाँव छूकर उसने कहा—माताजी, मैं आ गया !

रानीजी ने करवट बदली और अचानक पलंग पर झुके हुए व्यक्ति के चेहरे पर जो उनकी नजर पड़ी, तो वह बिजली की तरह तड़प उठीं और दोनों बाहें फैलाकर, अपनी पूरी ताकत से उससे लिपटकर वह चीख पड़ी—रंजन !

लल्लनजी को इससे तनिक भी आश्चर्य या परेशानी नहीं हुई । दूसरे ही क्षण रानीजी की बाँहें आप ही ढीली हो गयीं और वह निर्जीव-सी होकर लुढ़क गयीं ।

पास खड़ी मुँदरी अब तक सँभल गयी थी । उसने कहा—दौरा पड़ गया,—और दरवाजे से बाहर आ ज़ोर से पुकारने लगी—महराजिन ! बदमिया ! पटेसरी ! सुगिया ! जल्दी दौड़ो ! रानीजी को दौरा पड़ा है !—और चट अन्दर आ रानीजी की सँभार करने लगी ।

चुप खड़े लल्लनजी ने पूछा—मुँदरी, यह रंजन कौन है ?

मुँदरी का कलेजा धक-धक करने लगा । सिर झुकाये ही बोली—कौन रंजन ?

—वही, जिसका नाम अभी माताजी ने लिया था ?

रख दिया। ललाट से पसीने के धार बह रहे थे। उसने पोंछना चाहा, तो उसे लगा कि सारी देह से पसीना छूट रहा है। उसने प्रिंस कोट के सारे बटन खोल डाले। पैंट का बेल्ट खोलकर मेज़ पर फेंक दिया। फिर भी चैन कहाँ? ओफ़, यह खौफ़नाक नाटक उसने क्यों रचा? इसकी क्या जरूरत थी, क्या जरूरत थी? उसे क्या मालूम था कि सबसे ज्यादा नायक पर ही बीतती है। वह यहाँ आया ही क्यों? क्यों नहीं बाहर-ही-बाहर चला गया? वह मसूरी ही क्यों गया? वहाँ सेवाय में ही क्यों ठहरा? उस प्रोफ़ेसर से भेंट ही क्यों हुई?...यह 'क्यों' कहाँ से शुरू होता है, इसका सिलसिला कहाँ तक है? नहीं, यह सब सोचना बेकार है। इस 'क्यों' का कोई जवाब नहीं। यह होना था, यही होना था। ..अब क्या होगा? ओफ़, ओफ़! यह पर्दा उसने क्यों उठाया, क्यों?—सौदागर, पुजारीजी, पिताजी, मुँदरी, माताजी....नहीं, नहीं, यह पर्दा सिर्फ उसी के लिए था! और उसी ने अपने हाथों से उठाकर सबके सामने अपने को नंगा कर लिया!....उसके जी में आया कि वह अपने सब कपड़े नोंचकर फेंक दे और पागलों की तरह नंगा होकर चिल्लाये—जानते हो, मैं किसका बेटा हूँ? हा-हा-हा!

—छोटे सरकार।

ललन ने कोट का एक बटन लगाते हुए, सिर उठाकर सहमी हुई नज़र से देखा, दरवाजे पर उससे भी कहीं ज्यादा सहमी हुई मुँदरी खड़ी थी। लेकिन एक क्षण को उसे लगा कि मुँदरी के अट्टहास से पूरी हवेली हिल रही है।

—आपने बुलाया था, छोटे सरकार।

ललन ने सँभलकर फिर उसे देखा। और जैसे कोई उसके कानों में चुपके-से कह गया, पागल! बड़ा आदमी कभी भी किसी के सामने नंगा नहीं होता! उसका बड़प्पन उसके सारे नंगेपन को ढँके रहता है। किसकी हिम्मत जो उसकी ओर अंगुली उठा सके, आँख उठा सके?

उसने पलंग से उठकर, कोट निकालकर पलंग पर फेंक दिया और ...ट उतारते हुए कहा—मैं नहाऊँगा।

—सब तैयार है, छोटे सरकार।

—मेरे कपड़े निकालकर ला। मैं नहानघर में जा रहा हूँ।—और वह तुरन्त वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

मुंदरी के जी में आया कि एक बार खुलकर हँस पड़े। लेकिन फिर ....दुत, अभी कैसी भीगी बिल्ली बनी थी!...और सूटकेस खोलती हुई वह मुस्करा पड़ी, यह मुकद्दमा किसी इजलास में जाय, तो सबसे पहले किसका गला दबाया जायगा? फिर भी मैं का किसी से डरती हूँ! मैं चिल्ला-चिल्लाकर कहूँगी, हाँ-हाँ, मैंने ही किया! बोलो, मेरा का कर लोगे? मैं एक-एक की बखिया उधेड़कर रख दूँगी! इन बड़े सरकार को कटहरे में खड़ा करो! फिर सुनो!....महराजिन! जलेसरी! जनकिया! सुगिया! पटेसरी! बदमिया! और ओ! तुम-सब भी आओ, जो भाग गयी या मर-बिला गयीं! बोलो, तुम सब बोलो! नोच डालो इस पापी के सिर के एक-एक बाल को! नोच डालो!...

क़हर, क़हर! जैसे भूचाल आ गया हो। लेकिन सब चुप, शान्त, सहमे-सहमे! लल्लन ने लोटे से सिर फोड़ लिया। सिर्फ़ रानीजी की क्षीण पुकार सुनायी दी—मुंदरी!

—आयी, रानीजी!....हुँह! कौन इजलास में जायगा? छोटे सरकार? हुँह! बेजबानों के साथ चाहे जो कर लो, मुझे न छेड़ो! मैं जानती हूँ....सब समझ गयी हूँ! हमारी एक बात और सौ घड़े पानी! तुम्हारी सब सान इसलिए है कि हम चुप हैं, हम डरते हैं। नहीं तो, नहीं तो.... मैं जानती हूँ...तुम भी डरते हो, हमारी एक बात और तुम्हारी सारी सान, सारी इज्जत...कहीं मुँह छुपाने को भी जगह न मिले....सब रोब दाब, गोली-बन्दूक धरी-की धरी रह जायगी।...

और मुंदरी झल्लाये हाथों से कपड़े समेटकर रानीजी के कमरे में आ खड़ी हुई। उसकी भवें चढ़ी हुई थीं, नथुने फूले हुए थे।

—तू क्या चाहती है, मुंदरी?

—कुछ नहीं।

—नहीं, तू मुझे मार डालना चाहती है! तुझे कितनी

कि इस तरह मत हँसाकर, लेकिन तू सुनती नहीं। आज मेरा बेटा आने वाला है! और तू....

—वो आ गये हैं।

—आ गया है? कहाँ है वो? मेरे पास अभी तक नहीं आया?.... सब बाजे क्यों बन्द हो गये?

—बहुत देर हुई, छोटे सरकार यहाँ आये थे, आपके चरन छुए थे। लेकिन आप बेहोस हो गयी थीं।—मुंदरी की भवें धीरे-धीरे अपनी जगह पर आ गयीं, साँस भी ठीक तरह चलने लगी। रानीजी के सामने वह बेबस हो जाती है, जैसे बीमार के सामने तीमारदार।

—मैं बेहोश हो गयी थी?....नहीं-नहीं,—जरा-सा मुस्कराकर रानीजी ने आँखें मूँदकर कहा—तुझे बताऊँ....देख न, पड़े-पड़े सरेशाम ही मुझे कैसी नींद आ गयी! फिर क्या सपना देखती हूँ। देखती हूँ कि रंजन आया है और मेरे पैर हिलाकर कहता है, पान, पान! और मैं उठकर उससे लिपट गयी। और....और फिर लगा कि मैं मर रही हूँ और तुम लोग मुझे घेरकर खड़ी हो। देख न ..लेकिन तू तो कहती है....

मुंदरी को हुआ कि बता दे। लेकिन उसने दाँतों से जीभ दबा ली, एक माँ के लिए क्या इससे बढ़कर कोई लज्जा की बात हो सकती है। उसने कहा—तो फिर ऐसा ही हुआ होगा। मुझसे कपड़े लाने को कहके छोटे सरकार नहानघर चले गये। मैं समझी, वो यहाँ आये होंगे।

—तो वह नहा रहा है?

—हाँ, ये कपड़े उन्हीं के तो लिये जा रही हूँ।

—तो उससे कह कि जल्दी मेरे पास आये। उसका नाश्ता यहीं भेज दे।

मुंदरी को इससे खुशी ही हुई। लेकिन कहीं लल्लन छेड़ बैठे, तो? वह बड़ी पेसोपेश में पड़ गयी। कैसे लल्लन को यह बता दे कि रानीजी को कुछ नहीं मालूम।

.... नहाकर खड़ा हुआ सिर का गुम्मड़ टटोल रहा था।

मुंदरी ने तौलिया देते हुए कहा—सिर में चोट लगी है का ?

—हाँ, मोटर से उतरते वक्त लग गयी ।

वह देह पोंछने लगा, तो मुंदरी बोली—छोटे सरकार, आप मुझसे कोई बात करने वाले थे ?

—हाँ, तेरी सुनरी कैसी है ?

—आपको दुआ से अच्छी है।

– बनियाइन दे ।

उसके हाथ से कपड़े लेकर वह चुपचाप पहनने लगा। आखिर मुंदरी ही बोली। वह यह अवसर खोना नहीं चाहती थी। एक माँ के सबसे नाजुक पहलू का सवाल था। फिर जिससे पर्दा उठा गया, उससे पर्देदारी क्या ?

—रानीजी को मालूल नहीं कि आप उनके चरन छूने गये थे।

—क्या ?—कमीज गले में डालता हुआ सकपकाकर बात टालने के लिए लल्लन बोला। उसकी हालत वही थी, जो मिट्टी के ढेले पर पानी पड़ जाने पर होती है।

—देखिए ! दाई से ढोढ़ छुपाने से कोई फायदा नहीं। आपको सब मालूम हो गया है, यह मैं जान गयी हूँ। मुझसे छुपाने की कोसिस न कीजिए। मेरी बात सुनिए ! रानीजी को यह मालूम नहीं कि आपको सब मालूम हो गया है या वो रजन का नाम लेकर........आप उनसे कुछ न कहिएगा। जैसे हमेसा उनसे मिलते थे, वैसे ही मिलिएगा। नहीं तो वो मर जायँगी। और वो पोसाक दबाकर कहीं रख दें। उस पोसाक में आप बिल्कुल रंजन बाबू की तरह दिखायी देते हैं। और आपकी सूरत-सकल भी उनसे हू-ब-हू मिलती है, जैसे आप दोनों एक ही साँचे में ढले हों। हाँ, जरा अपनी मूँछ भी आप और तरह की कर लेते, तो अच्छा होता। रंजन बाबू की मूँछें भी बिलकुल इसी तरह की थीं। समझे आप ? अपनी माताजी पर रहम करें ! इसमें उनका कोई दोस नहीं। वह रंजन बाबू पर जान देती थी....

—तू मुझे उनके बारे में सब बातें बतायगी ?—आखिर

खुल गया।

—हाँ, जो भी मालूम है, बताऊँगी। लेकिन मेरी बात का ख़ियाल रखें। माताजी पर रहम करें। करेंगे न?

—हाँ।

—और आप भी बतायेंगे न कि आपको कैसे मालूम हुआ?

—हाँ। रात को सब के सोने पर मेरे कमरे में आना।

*

लल्लनजी ने तैयार होकर आईने में मुँह देखा और दिल कड़ा करके माताजी के कमरे में जा उनके चरण छुए। माँ ने उसे चूमा,चाटा और इस तरह अपनी गोद में भर लिया, जैसे वह चार-पाँच साल का बच्चा हो। और फिर उसके मुँह को अपनी हथेलियों में भरकर, आँखों से आँसू चुलाती, अवरुद्ध कंठ से बोलीं—मेरा बेटा कितना दुबला हो गया है! अरी मुँदरी, जरा रोशनी तो तेज़ कर, मैं अपने लाडले का मुँह तो अच्छी तरह देखूँ।

मुँदरी ने बत्ती उकसा दी।

लल्लन ने कहा—कहाँ, माताजी? मैं तो बहुत मोटा हो गया हूँ। पहाड़ पर ऐसी भूख लगती थी कि क्या बताऊँ!—और उनके मुँह पर अपने हाथ फेरता हुआ बोला—माताजी, आपने यह क्या अपना हाल बना रखा है! कितनी दुबली हो गयी है आप!—और कमीज़ की जेब से रूमाल निकालकर वह उनके आँसू पोंछने लगा।

मुँदरी जोर-जोर से पंखा झल रही थी। बोली—यह तो जान देने पर तुली हुई हैं, छोटे सरकार। जब से सुना है कि आप लड़ाई पर जा रहे है, इन्होंने अन्न-पानी छोड़ रखा है। इन्हें समझाइए, छोटे सरकार।

—यह मुझे क्या समझायगा? इसको भी मेरा दर्द नहीं!—फफककर रानीजी बोलीं।

—यह क्या कहती हैं, माताजी? मुझे आपका दर्द नहीं?

—और नहीं तो क्या, रे? दर्द होता, तो तू मुझे छोड़कर लड़ाई
?

—रानीजी, इन्हें जलपान कराइए, जाने कब के भूखे-पियासे होंगे, अभी तक कुछ भी मुंह में न डाला।—मुंदरी ने मसलहतन कहा।

आंचल से आंखें पोंछकर, उसे वैसे ही गोद में बैठाये, रानीजी ने एक लड्डू तिपाई पर रखी तश्तरी से उठाकर, उसके मुंह में डालकर कहा—सच ही तू हमें छोड़ जायगा, रे?

—नहीं, माताजी, ऐसा कैसे हो सकता है? जरा घूमने-फिरने की तबीयत हुई, सोचा, साल-छै महीने इसी बहाने सैर हो जायगी, दुनिया देख लूंगा।

—लड़ाई का मैदान कोई सैर-सपाटे की जगह होती है? नहीं, बेटा, मैं न जाने दूंगी!

—अफ़सरों के लिए सैर-सपाटे की जगह तो होती ही है। मुझे कोई खतरा नहीं, माताजी।

एक इमरती उसके मुंह में डालकर वह बोलीं—मैं यह नहीं मानने की। मैं हर्गिज तुझे न जाने दूंगी!

—तो इसी तरह गोद में बैठाकर रखेंगी? कोई देखेगा, तो क्या कहेगा?—हंसकर लल्लन बोला।

—तू गोद की बात करता है? मेरा बस चले तो तुझे पुतलियों में छिपाये रखूं। तू मां का दिल क्या जाने?

—हूं! और लोग जो मुझे चिढ़ाते हैं। कहते हैं, इतना बड़ा हुआ, जनाने 'में सोता है, मां के आंचल में मुंह छुपाये रखता है, लड़की है!

—कौन कहता है, रे?

—नाम बताकर उसकी शामत मैं क्यों बुलाऊं?—माताजी, मैं मर्द-बच्चा हूं। अब जवान हो गया हूं। पढ़ाई-लिखाई खतम हो गयी। अब मुझे कुछ करना चाहिए कि नहीं?—पानी का गिलास उठाते हुए लल्लनजी ने कहा।

—थोड़ी नमकीन तो खा ले,—उसके हाथ से गिलास रानीजी ने कहा।

—बस, माताजी। ज्यादा खा लूँगा, तो खाना नहीं खाया जायगा।

—अभी तो कह रहा था कि बड़ी भूख लगती है। यही ज्यादा हो जायगा?—और उन्होंने हाथ में उठायी नमकीन उसके मुँह में ठूँस दी। बोलीं—हाँ, तो क्या कहता था?

—ऊँ! इतनी-सारी नमकीन लेकर ठूँस दी। कैसे बोलूँ?

रानीजी हँस पड़ीं। मुँदरी जान-बूझकर न हँसी।

पानी पीकर लल्लनजी बोला—कह रहा था, मुझे अब कुछ करना चाहिए कि नहीं?

—करना क्यों न चाहिए। पहले तो तुझे शादी करनी चाहिए।

हँसकर लल्लनजी बोला—फिर बच्चे पैदा करना चाहिए!

—और नहीं तो क्या?

—और फिर?

—और फिर तुझे कुछ करने की क्या जरूरत है? तू मजे से मेरी आँखों के सामने रह।

—वाह, माताजी! आप भी यही सिखा रही हैं?

—क्यों, इतनी जगह-जमींदारी है, धन-सम्पदा है, इसे भोगने वाला दूसरा कौन है? नहीं, तुझे कुछ करने की जरूरत नहीं है!

—है, माताजी, है!—तनिक उदास-सा होकर लल्लन बोला—जाने क्यों, मेरा मन कहता है कि पिताजी मेरे लिए कुछ छोड़ नहीं जायेंगे, सब स्वाहा करके दम लेंगे।

मुँदरी ने शंकित हो होंठ काटा। कुछ कहकर बात बदलनी भी चाही, लेकिन तुरन्त कोई बात नहीं आयी। उसके होंठ फड़ककर रह गये।

—क्यों, ऐसा तेरे मन में क्यों आया?—भौंहें उठाकर रानीजी बोलीं।

—यह तो नहीं जानता, लेकिन मेरा मन कह रहा है।

—वहम है। अव्वलन तो ऐसा होगा नहीं। फिर हुआ भी, तो मेरे पिताजी का दिया हुआ मेरे नाम इतना है कि तू सारी जिन्दगी [illegible] से बैठकर खा सकता है। तुझे चिन्ता करने की जरूरत नहीं।

—नहीं, माताजी, मैं नकारा रहकर जिन्दगी बिताना नहीं चाहता। मुझे कुछ-न-कुछ करना ही चाहिए। मुझसे यहाँ बेकार न रहा जायगा।

—क्या ?—व्याकुल होकर रानीजी बोलीं—मेरी बात नहीं मानेगा ? मुझे छोड़कर चला जायगा ?

—नहीं, माताजी....

तभी दरवाजे के बाहर से पटेसरी की आवाज आयी—बैंगा आया है। कह रहा है, शम्भू बाबू छोटे सरकार को बुला रहे हैं। का कह दूँ ?

—कह दे, अभी नहीं जायगा !—जोर से रानीजी बोलीं। वह इतने ही में हाँफने लगी थीं। उत्तेजित होकर बोलीं—मैं कुछ नहीं सुनूँगी, कुछ नहीं ! एक बार कहती हूँ, हजार बार कहती हूँ, तुझे मैं कहीं नहीं जाने दूँगी !

—अच्छा, माताजी, जो आप कहेंगी, वही होगा। आप शान्त तो रहिए।

—देखा, मुँदरी !—हँसती हुई आँखों से उसकी ओर देखती हुई रानीजी बोलीं—मैं कहती थी न, मेरा बेटा मुझे छोड़कर कहीं नहीं जा सकता !

मुँदरी ने कृत्रिम मुस्कान होठों पर ला सिर हिला दिया।

*

वैद्यजी को क्या मालूम था कि क्या हो गया। मन्दिर के दरवाजे पर खड़े वह लड्डू बाँट रहे थे। फवलू लड्डुओं से भरा थाल ला-लाकर उनके हाथ में थमाता जा रहा था। और वह सामने खड़ी भीड़ को लड्डू बाँटे जा रहे थे। उनका हाथ एक और लड्डू लेनेवाले हाथ अनेक। बड़ी गड़बड़ी हो रही थी, बड़ी छीना-झपटी चल रही थी। वैद्यजी बार-बार डाँट रहे थे, चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे—धीरे-धीरे से लो, सबको मिलेगा, खातिर रखो।—लेकिन कोई असर नहीं। लड्डू के लिए उठे हुए कई-कई हाथ और शोर कि पहले मुझे, मुझे ! हमारा देश कितना बेसब्रा है !

भीड़ देखकर पुजारीजी ने कहा—वैद्यजी, मैं भी बाँटूँ?

वैद्यजी ने बिना उनकी ओर देखे ही कहा—नहीं जी, यह भी कोई भीड़ है। इससे बड़ी-बड़ी को मैं अकेले सँभाल चुका हूँ।

वैद्यजी का विश्वास था कि इस जन्म में जितना वह अपने हाथ से कंगलों को बाँटेंगे, उतना ही उन्हें अगले जन्म में मिलेगा। चीज़ जिसकी भी हो, असल बात बाँटनेवाले हाथ की है। इसी लिए ऐसे सुअवसरों पर वह किसी के साथ हिस्सा-बाँट लगाना पसन्द नहीं करते।

दरबार कई बार जमने-जमने को होकर भी उखड़ा-ही-उखड़ रहा। जब राजा का मन ही उखड़ा हो, तो दरबार क्या जमे? अभी-अभी जो खुशी का शोर उठा था, अब ऐसे शान्त हो गया था, जैसे लह-लहायी फसल को अचानक पाला मार जाय। शम्भू, सौदागर और पट-वारी के आसनों को छोड़कर सब खाली थे। बड़े सरकार को लग रहा था कि सब नमकहराम उनका साथ छोड़ गये। वह रह-रहकर साँसे जाते थे। मन बड़ा ही व्याकुल था। लेकिन कोशिश करके मन के भाव को चेहरे पर न आने देते थे। लगातार निगाली मुँह में डाले गड़र-गड़र बजाये जा रहे थे। बोलने को ज़रा भी जी न कर रहा था। फिर भी शम्भू की बातों पर हूँ-हूँ कर देते थे।

सौदागर बिल्कुल खामोश था। रह-रहकर वह सामने ऐसी डरी निगाहों से देखने लगता था, जैसे हवा में कोई भूत नाच रहा हो। और फिर जब ख्याल आता कि वह यह क्या कर रहा है, तो सँभल जाता और आँखें झपकाकर स्वाभाविक ढंग से देखने की कोशिश करने लगता।

शम्भू भी कुछ खोया-खोया ही-सा था। उसकी समझ में न आता था कि यह लल्लनजी का बच्चा इतने ही अर्से में कैसे इतना बदल गया! सबसे ज्यादा चिढ़ उसको उसकी पोशाक से हो रही थी, जिसमें वह बिल्कुल एक राजकुमार की तरह लगता था। कमबख्त पहले से भी ज्यादा चुस्त और खूबसूरत दिखायी देता है! वह मन-ही-मन जल था कि उसने मुझसे कोई बात क्यों न की। कितनी बार मैंने छेड़ा,

लेकिन जैसे वह रोब का मारा मुँह ही न लगाना चाहता हो। तोबा, तोबा! लाडली के यहाँ न गया, यह तो अच्छा ही हुआ। ट्रेन लेट आयी, यह भी खूब रहा। उसे डर था कि लल्लनजी मुझे हापी पर चढ़ायेगा कि नहीं, और उसे आश्चर्य हुआ, जब लल्लनजी ने खुद उसका हाथ पकड़कर चढ़ने को कहा। लेकिन वह ऐसे चुप क्यों रहा? अभी-अभी बुलाया, तो भी नहीं आया।....वह शकुन्तला के बारे में जल्द-से-जल्द सब-कुछ जानने को बेचैन हो रहा था।....मालूम देता है, हज़रत बुरी तरह लटक गये। सुना है, प्रेम करनेवाले गूंगे हो जाते हैं। लेकिन कुछ मालूम भी तो हो। यह भी तो सुना है कि प्रेम असफल होने पर प्रेमी निराशा से भी मूक हो जाते हैं।....वह बैठा-बैठा इन्तज़ार कर रहा था कि शायद लल्लनजी बाहर आये। वह लाडली और अफ़सरों के बारे में अपनी रिपोर्ट दे चुका था।

और मुंशीजी सिर्फ़ इसलिए बैठे हुए थे कि कब उनका मिठाई का दोना मिले और वह चम्पत हों। सरकार का मेज़ाज माफ़िक़ न हो, तो उनके पास बैठना वह नीति के विरुद्ध समझते थे। एक क़याफ़ा-शनास आदमी थे वह।

आयु जन्म-दिन से जो चित्र बनाना शुरू करती है, उसपर लगातार वह ब्रुश चलाती जाती है, कभी कोई रेखा मिटाती है, कभी कोई नयी रेखा खींचती है, कभी कोई रंग दबाती है, कोई रंग उभारती है, कभी कोई शेड हल्का करती है, कोई मद्धिम और कोई तेज, और बराबर बनाती जाती है और आखिर जवानी में आकर चित्र पूरा करके, हर नोंक-पलक सँवारकर, हर रंग सजाकर, हर शेड ठीक कर और फ़िनिशिंग टच देकर वह उसे दुनिया के सामने रख देती है और कहती है —लो देखो, चित्र पूरा हो गया!

बड़े सरकार को शुरू से ही शक था। वह छुपे-छुपे शुरू से ही लल्लनजी का मुखड़ा बड़े ध्यान से एक पारखी की तरह देखा करते थे और उसके हर परिवर्तन को नोट किया करते थे। उनके सामने हमेशा तीन चेहरे नाचा करते थे, रानीजी का, अपना और रंजन का। और

वह हमेशा मिलान किया करते थे कि लल्लन के मुखड़े की रेखाएँ किसकी रेखाओं की ओर जा रही हैं। और आज जो पूर्ण हुआ चित्र उनके सामने आया, तो उनका दिल धक-से हो गया। आज धक सच हो गया था। सब-कुछ वही, हत्तांकि पोशाक भी। और आज उन्हें लगा कि यह जो सच हुआ है, अचानक ही नहीं हुआ है। यह एक रहस्य-पूर्ण ढंग से शुरू से ही सच था, 'उन्होंने सब-कुछ देख-समझकर भी न देखा-समझा, गोल किये रहे बहुत-सी बातें सोचकर। रंजन को अच्छी तरह उन्होंने कुछ ही मिनटों के लिए देखा था, देर तक उन दोनों के लिए आँखें मिलाये रहना असम्भव था। फिर भी मसलहतन बड़े सरकार ने उसे एक बार ग़ौर से देखा था, ठीक आँखें मिलाकर। उनका ख्याल था कि रंजन का मुखड़ा उन्हें बहुत दिनों तक याद नहीं रहेगा। उनका ख्याल ग़लत न था। लेकिन वह ऐसा कर न सके। उन्होंने जान-बूझकर ही उस चेहरे को याद रखा, रोज़ कई-कई बार उसे सामने ला ताज़ा रखा। वह करते भी क्या? उनके रग-रग में जो ख़ून दौड़ रहा था, यह उसी का दोष था। यह ख़ून इस तरह की बात जिन्दगी-भर भूलने-वाला न था। हज़ारों की इज्ज़त लुटवानेवाले को यह कैसे सह्य होता कि कोई उसकी इज्ज़त पर आँख उठाये? डाकू के घर में डाका पड़ने-जैसी यह बात थी।

अब?

अंकुर को मसल देना आसान है, लेकिन पेड़ को काट गिराना मुश्किल, वह भी जब रखवाले की नज़र उसपर चौबीसों घंटे बनी रहे।

उनके जी में कई बार आया कि जलसा मुल्तवी करा दें, ये झंडी-पताका सब नुचवाकर फेंकवा दें, मंगल-घटों और गैसों को डंडों से मार-मारकर फोड़ डालें और बन्दूक लेकर सीधे हवेली जायें और रानीजी और लल्लनजी को एक साथ ही गोली से उड़ा दें।...लेकिन ऐसा कर सकना सम्भव न था। अब जवानी का वह जोश न रहा, ख़ून ठंडा-सा हो गया है। फिर?

भीड़ से निवटकर वैद्यजी खुश-खुश अपनी जगह पर आ बैठे। मुंशीजी ने उनकी ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा।

वैद्यजी हँसकर बोले—क्यों सांस फूल रही है? आपकी मिठाई आ रही है।

सौदागर ने भी जब उसी दृष्टि से वैद्यजी की ओर देखा, तो उन्होंने कहा—तुमको क्या जल्दी पड़ी है? जाने लगना, तो पुजारीजी से ले लेना।

—घर में जरा तबीयत खराब है, जाने का हाल है। सुबह का निकला अभी तक नहीं गया।—सौदागर ने कहा। सौदागर को वहाँ बैठना काट रहा था। वह जल्द-से-जल्द वहाँ से भाग जाना चाहता था। शरीर से जितना मोटा और मजबूत वह दिखायी देता था, दिल का वह उतना ही कमजोर था। रात-दिन शरीर के ही चक्कर में पड़े रहनेवाले दिल की दौलत गवाँ बैठते हैं। उसे जाने क्यों रह-रहकर लगता था कि छोटे सरकार बन्दूक लेकर उसे मारने चले आ रहे हैं। वह अन्दर-ही-अन्दर बहुत भयभीत था।

वैद्यजी ने हँसकर कहा—बड़े सरकार, सब अच्छी तरह हो गया न?

बड़े सरकार ने सिर हिलाकर कहा—हाँ।

वैद्यजी—जलसा हमारा बहुत शानदार होगा। तेरह-तेरह मिठाइयाँ, चार छेने की, चार खोये की और दो मेवे और तीन मैदे की तैयार हो गयी। चार किस्म की नमकीनें भी बन गयीं। कल शाही टुकड़े और बन जायेंगे। और जो हुकुम हो सरकार का।

बड़े सरकार—हाँ।

वैद्यजी जरा चिन्तित दृष्टि से देखते हुए बोले—आपकी तबीयत....

बड़े सरकार—नहीं, नहीं।

वैद्यजी—नहीं, कोई बात हो तो बतायें। आज दिन-भर आप बहुत परेशान रहे हैं। दोपहर को आराम भी नहीं किया। सिर में शायद दर्द हो, कहें, तो कोई गोली दूँ, दर्द तुरन्त जाता रहेगा।

बड़े सरकार—थक गया हूँ। शरीर में अब वह ताक़त न रही।...

हाँ, सौदागर, शेखपुरे के व वर्ची नहीं आये ?

सौदागर चौंककर बोला—कल सबेरे आयेंगे।

बड़े सरकार—और खस्सियों का क्या हुआ ?

सौदागर—लुद्दू खरीदने गया है। लौटता ही होगा।

वैद्यजी ने कानों पर हाथ रखते हुए कहा—राम-राम ! बड़े सरकार, मुझे यही बात अच्छी नहीं लगती है।

बड़े सरकार—कई अफ़सर मुसलमान है। जैसा देवता, वैसा भोग।

वैद्यजी—मैं क्या कहूँ, लेकिन मन्दिर के बाग...

सौदागर—मालूम होता है, पहली बार हो रहा है ! आप हमेशा भूल जाते हैं कि यह-सब हाथीखाने के पासवाले कमरे में होता है।

वैद्यजी—हाँ, भाई, भूल जाता हूँ। मुझे हमेशा डर बना रहता है कि कही तुम लोग मेरा धर्म भ्रष्ट न कर दो।

दूसरा कोई अवसर होता, तो इसपर सब हँस पड़ते। लेकिन आज केवल वैद्यजी ही अपनी बात पर हँसनेवाले थे और उन्हें भी ऐसा लगा, जैसे उल्लू बन गये हों। एक बार उन्होंने सब चेहरे देखे और खामोश हो गये।

बातचीत आगे न बढ़ी।

पुजारीजी हरी को पीछे-पीछे लिये आ पहुँचे। हरी दाहिने हाथ से एक थाल कन्धे तक उठाये हुए था। थाल में तीन बड़े-बड़े दोने थे।

बड़े सरकार ने पुजारीजी की ओर देखा और पुजारी ने बड़े सरकार की ओर। दोनों ने, जो देखना चाहते थे, देख लिया, और दोनों के चेहरों पर एक ही तरह के भाव आये-गये।

पुजारीजी ने काँपते हाथों से एक दोना उठाकर मुंशीजी को दिया। मुंशीजी ने एक नजर देखा और अंगोछे में बाँधते हुए उठ खड़े हुए।

दूसरा दोना शम्भू ने लेकर बगल के खाली आसन पर रख दिया।

मुंशीजी ने इजाजत लेकर सलाम किया और चलते बने।

तीसरा दोना लेता हुआ सौदागर उठ खड़ा हुआ।

बड़े सरकार ने कहा—सौदागर, जल्दी लौटना !

सौदागर ने 'बहुत अच्छा' कहकर सबको सलाम किया। और जाने लगा, तो वैद्यजी बोले—कथा बिसरजन होत है, सुनो वीर हनुमान....

शम्भू जोर से हँस पड़ा। और कोई न हँसा। बल्कि बड़े सरकार को उसका हँसना बेवक्त की शहनाई की तरह लगा। पर उन्होंने कुछ कहा नहीं।

पुजारीजी ने देखा कि कोई उनसे बैठने को नहीं कहता है, तो उन्होंने चलते हुए कहा—वैद्यजी, आपका हिस्सा आपके घर भेजवा दिया है।

—बैंगवा !—बड़े सरकार जोर से बोले।

—जी, बड़े सरकार।

—कह आ, खाना नहीं खायेंगे और यहीं आराम करेंगे।...और हाँ, लुटुआ के घर देख आ, आया हो, तो पकड़ ला। तेल बर्फ में ठंडा होने को रख दे।—और वह उठ खड़े हुए।

११

माँ ने बेटे को अपने हाथ से खिलाया और बेटे ने अपने हाथ से माँ को।

लल्लन ने कहा—माताजी, अब आराम कीजिए। आप बहुत थक गयी हैं।

—नहीं, आज रात-भर मैं बातें करूँगी। तू नहीं जानता, बेटे, तेरे बगैर मुझे एक छन को भी चैन नहीं मिलता।...मुँदरी, पान बनाकर दे मेरे बेटे को।

लल्लन ने मुँदरी की ओर देखा। मुँदरी ने पान बनाते हुए कुछ सोचकर कहा—रानीजी, छोटे सरकार सफर से आये हैं। थके होंगे। देखिए न, कैसे जम्हुआई ले रहे हैं।

—क्यों, रे तुझे नींद आ रही है?—रानीजी ने उसकी ठुड्डी उठाकर कहा।

—दो रात से एक मिनट को भी नहीं सोया। फिर भी आपको छोड़कर नहीं जाऊँगा। जब तक आप सो न जायेंगी, मैं आपके ही पास रहूँगा।

—मुझे नींद कहाँ आती है। मैं तो रात-रात-भर जाने क्या-क्या सोचती रहती हूँ।

—आज आपको जरूर नींद आयगी। मैं थपकी देकर आपको सुला दूँगा।—और लल्लन उनकी पीठ पर हाथ फेरने लगा।

रानीजी हँसकर बोलीं—सुनती है, मुँदरी? याद है इसके बचपन की बात? सोने में कितना तंग करता था...माताजी, आप भी सोइए.... थपकी दीजिए....माताजी, कहानी कहिए...लोरी सुनाइए...

और कैसे नकल कर आँखें मूंद लेता था और मैं इसे सोया समझकर, बच-बचाकर उठती थी, तो कैसे पट से आँखें खोलकर ठुनक उठता था !—और वह जोर से हँस पड़ीं।

लल्लन ने शरमाकर सिर झुका लिया और होंठ आगे बढ़ाकर, ठुनक कर बोला—कहाँ, माताजी ? आप तो कहती थीं, मैं बहुत अच्छा लड़का था !

—देखा, मुँदरी, ठुनकने की आदत इसकी अब भी नही गयी। अरे, मैं यह कब कहती हूँ कि तू अच्छा लड़का नही था।...

मुँदरी ने पान की तश्तरी बढ़ाकर कहा—पान लीजिए।

—ला, मैं अपने हाथ से अपने बेटे को पान खिलाऊँ,—और उन्होंने दो पान लेकर उसे खिला दिये। और अपने लिए उठाने लगी, तो लल्लन ने कहा—नहीं, मैं खिलाऊँगा।

रानीजी को लग रहा कि उनका बेटा इतना प्यारा पहले कभी नही था। शायद मैं बीमार होकर ही इतना प्यार पाने की हकदार हो गयी हूँ। या....कही यह विदा के पहले का तो प्यार नही ? वह फिर व्याकुल होकर बोली—अब तो तू मुझे छोड़कर कही नही जायगा ?

लल्लन जरा घबराकर बोला—नही, माताजी,—फिर सँभलकर बोला—आपकी आज्ञा पाये बिना मैं कुछ नही करूँगा।—फिर मुँदरी से कहा—मुँदरी, ला पंखा मुझे दे। तू खाना खाकर जल्दी आ जा।

—किसी को पंखा झलने के लिए भेज दूँ ?—मुँदरी ने कहा।

लल्लन ने आँख मारकर कहा—नही, तू पंखा मुझे दे दे। तब तक मैं ही माताजी को पंखा झलूँगा।

—क्यों, बेटे, तू क्यो पंखा झलेगा ? इतनी सारी लौंडियाँ हैं।

—नहीं, माताजी, आज तो मैं ही झलूँगा ! मैं नही चाहता कि माँ-बेटे के बीच इस वक्त कोई दूसरी आकर यहाँ खड़ी रहे। और वह पंखा झलने लगा।

—तो ला, मुझे ही दे,—रानीजी ने हाथ बढ़ाकर कहा।

—ऊँह, आप आँखें मूँदकर सोइए !

एक माँ के लिए इस सुख से बढ़कर क्या और कोई सुख हो सकता है ?....यह बेटे के हाथ की हवा नहीं, मुहब्बत की नर्म-गर्म राहतबख्श साँसें थीं, जिनकी छाँव में रानीजी की दुखी आत्मा चैन पाकर वैसे ही सो गयी, जैसे आँचल ओढ़े बीमार बच्चा रोते-रोते माँ की छाती पर मुँह रखे सो जाय ।

दाहिने हाथ से लल्लन पंखा झल रहा था और बायें हाथ से माँ का सिर सहला रहा था । और उसकी आँखें बड़े ग़ौर से उनका मुखड़ा निरख रही थीं । मुखड़े पर व्यथा की छाप नींद की स्थिरता में स्पष्ट हो गयी थी । लल्लनजी के जी में आया कि वह चूम-चूमकर व्यथा का सारा विष अपने होंठों से खींच ले । ओह, माताजी ने कितना कष्ट झेला है ! ..*आज उसे माताजी बहुत प्यारी लग रही थीं,* ऐसी प्यारी वह पहले कभी भी नहीं लगी थीं । लल्लन को हो रहा था कि वह क्या-कुछ न कर डाले माताजी को सुखी बनाने के लिए !

आज जो व्यवहार उसने अपनी माँ के साथ किया था, वह माँ के लिए भले ही नया न हो, उसके लिए नया था । ऐसा व्यवहार वह पहले भी करता था. लेकिन आज भाव में अन्तर था । पहले वह माताजी का मन रखने के लिए, उन्हें खुश करके पैसे ऐंठने के लिए करता था । लेकिन आज वैसी बात न थी । आज उसके व्यवहार और भाव का अन्तर समाप्त हो गया था । अपनी माँ से आज-जैसा सच्चा प्यार और सच्ची हमदर्दी उसे पहले कभी भी न हुई थी । आज पहले की कोई उसे याद दिलाता, तो इस परिवर्तन पर आश्चर्य से अधिक उसे लज्जा होती ।

इस परिवर्तन के लिए लल्लन शकुन्तला माथुर का हृदय से *कृतज्ञ था । शकुन्तला माथुर ने सचमुच उसे हैवान से इन्सान बना* दिया था । जिस खेल, मजे और रोमांस के ख्याल से वह शकुन्तला के साथ-साथ मसूरी गया था, वह कैसे उसकी जिन्दगी और मौत का सवाल बन गया, यह वह नहीं जानता ।

साधारणतः दूर से आकर्षक और सुन्दर लगनेवाला व्यक्ति, नज़दीक आने पर आकर्षण खो बैठता है और उसके सौन्दर्य में छुपे हुए नुक्स उभर आते हैं; एक नज़र देखने से जो सुन्दर लगता है, बार-बार देखने पर वह उतना सुन्दर नहीं रह जाता, दबी-छुपी रेखाओं के सामने आ जाने पर एक सूरत क्या-से-क्या हो जाती है ! लल्लनजी का अभी तक का यही अनुभव था। लेकिन अब जो शकुन्तला से पाला पड़ा, तो उसके अनुभवों की जड़ें ही जैसे हिल गयीं। वह जितना ही उसके नज़दीक पहुँचने और उसे ध्यान से देखने लगा, उस पर मुग्ध होता गया। हर बार जैसे कुछ-न-कुछ नया उसे दिखायी देने लगा, सौन्दर्य की नयी रेखाएँ और नये शेड उभरते गये। जैसे शकुन्तला वह फूल हो, जिसे जितना नज़दीक से देखो, जितनी बार देखो, जितने ध्यान से देखो, उसका सौन्दर्य उभरता जाय, बढ़ता जाय, उसकी बारीक रेखाएँ, नाज़ुक शेड जैसे धीरे-धीरे एक रहस्यमय ढंग से अपना सौन्दर्य खोलते जायँ और कहते जायँ—और नज़दीक से देखो, और ध्यान से देखो, कहो, तुमने क्या देखा, यही वह सौन्दर्य है, जिसे आदमी आदिकाल से देखता आया है और अन्तकाल तक देखता रहेगा और फिर भी पूरा न देख पायेगा !

आदमी दूर-दूर से देख-सुनकर किसी के बारे में क्या-क्या धारणाएँ बना लेता है। शकुन्तला के गाँव और अस्पताल को कुचलने की एक हैवानी खुशी हासिल करने लल्लनजी उसके पास आया था। लेकिन यहाँ नज़दीक आने पर उसने पाया कि शकुन्तला तो निहायत ही सीधी और भोली लड़की है। वह इतनी कम बोलती और इतनी सादगी से रहती है, कि लल्लनजी दंग रह गया। पहले अपनी आदत के अनुसार उसने बहुत बोलने और लम्बी-चौड़ी हाँकने की कोशिश की; लेकिन जब उसने देखा कि शकुन्तला [illegible] कुछ न कहती, चुपचाप मुँह लटकाये बैठी रहती है, तो उसे बड़ी [illegible] और वह कह देता—क्या [illegible] बैठने के लिए [illegible] हो?

शकुन्तला कुछ न कहती। वह मानो ऐसी एक [illegible]

लिये वहाँ से हट जाती ।

और ऐसे ही एक दिन जब लल्लन ने उकताकर कहा कि वह कल चला जायगा, वह नहीं जानता था कि वह इतनी मनहूस है, वर्ना वह आता ही नहीं, तो अचानक शकुन्तला ने सिर उठाया और लबालब भरी हुई आँखों मे उसकी ओर देखने लगी और कहा—क्या सचमुच आप चले जायेंगे ?

उस दिन पहली बार लल्लनजी ने उसे ध्यान से देखा और उसे लगा कि जैसे कहीं जल-भरे बादलों मे बिजली चमकी हो, उसकी आँखें चौंधिया गयी हों, दिल धक-से कर गया हो। वह आँखें और यह आँखें! और लल्लन को जैसे पसीना आ गया। वह वहाँ से उठकर अपने होटल की ओर भाग खड़ा हुआ, जैसे वह आँखें उसका पीछा कर रही हों और उसका मन चीख-चीख़कर कह रहा हो—नहीं-नहीं, मुझे यह नही चाहिए !

लल्लनजी अपने कमरे का दरवाज़ा बन्द कर बड़ी बैचेनी की हालत में बड़ी देर तक पड़ा रहा। उसे लग रहा था, जैसे उसके गले में फँसरी डालकर कोई उसे बाँध रहा हो और वह एक जंगली जानवर की तरह कूद-फाँदकर, फँसरी तोड़कर भाग जाना चाहता हो।

लेकिन वह फँसरी कोई साधारण फँसरी न थी। जंगली जानव[र] जितना ही कूदा-फाँदा, वह उतना ही कसता गया, जकड़ता गया।

लल्लन तीन दिन तक शकुन्तला के यहाँ न गया। वह उस व[क्त] तक लड़ता रहा, जब तक कि लस्त न हो गया। कई बार उसने सामा[न] बाँधे और खोलवा डाले। जाने कहाँ-कहाँ का चक्कर लगाता रहा अ[ौर] जाने क्या-क्या सोचता रहा। यह सूरज की एक किरण और अन्धक[ार] का संघर्ष था, यह इन्सान के एक लतीफ़ जज़्बे और हैवान की [प्र]हैवानियत का द्वन्द्व था, जिसे दो लबालब भरी हुई आँखें कहीं से दे रही थीं। किरण की ताक़त वह दो आँखें थीं।

चौथे दिन हारा-थका लल्लन जब गया, तो उदास बैठी शकुन्तल[ा ने] आँखें उठाकर देखा और पलकें झुकाकर कहा—आप गये नहीं ?

लल्लन कुछ न बोल सका। वह चुपचाप बैठ गया। दोनों बड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहे, जैसे वे सब-कुछ कह चुके हों, अब कुछ भी कहने को न रह गया हो।

और फिर शकुन्तला ही वह फूल थी, या लल्लन की आँखों की ही यह मुग्धता थी, या क्या था, इस रहस्य को समझने का उन्हें होश न रहा, वह एक-दूसरे के लिए दिन-दिन अधिक आकर्षक और सुन्दर होते गये, याने प्रेम करते गये।

और लल्लन बिल्कुल बदल गया। जैसे एक खोल उतर गया हो। कभी-कभी इस परिवर्तन के बारे में सोचता, तो उसे आश्चर्य न होता, अपने पिछले जीवन पर लज्जा आती।

और फिर जब धीरे-धीरे खुले, तो इतनी बातें करने लगे, इतनी दूर-दूर तक सैर करने लगे कि समय कम पड़ने लगा और दिन-रात छोटे होने लगे। वे हज़ारों बातें करते, फिर भी हज़ारों बातें रह जातीं। जैसे एक झरना हो, जिसका स्रोत कभी भी न सूखे। इस समय का उनका चिन्तन और व्यस्तता विधाता की सृष्टि-रचना के समय से कम न थी। एक नयी दुनिया उन्हें भी तो बनानी थी।

इन हज़ारों बातों में दो बातें ऐसी थीं, जो बार-बार कही जातीं।

एक बात शकुन्तला की थी। वह कहती—दो साल की मुतवातिर कोशिशों के बाद मैं एक बार तुमसे बोलने की हिम्मत कर सकी। सोचती हूँ, वह मौका खो देती, तो क्या होता!

दूसरी बात लल्लन की थी। वह कहता—मैं बहुत बुरा, बदचलन और हद दर्जे का शैतान था। शकुन्तला, तुमने मुझे इन्सान बना दिया। मुझे बड़ी शर्म आती है तुम्हारे सामने!

प्रेम आदमी को क्या-से-क्या बना देता है!

एक दिन यों ही शकुन्तला ने कहा—लल्लन, एक बात पूछूँ?

—कहो।

—बताओगे?

—हाँ।

—तुमने अपने....के बारे में कोई सपना देखा है ?

—क्या मतलब ?

—यह कि उसे किस रूप में देखा है ? वह क्या हो, जिसे तुम....

—दुत, तुम जो होओ, मुझे सन्तोष रहेगा ।

—नहीं, बताओ ! मैं वही बनूँगा ।

शकुन्तला हँस पड़ी ।

—बताओ !

—सुनकर तुम्हें बहुत हँसी आयगी ।

—नहीं, मुझे हँसी नहीं आयगी । तुम बताओ !

हँसती हुई शकुन्तला बोली—बड़ी अजीब बात है ।

—कहो !

—कैप्टेन !—और वह एक बच्ची की तरह खिलखिलाकर हँस पड़ी।

—कैप्टेन ?—चकित होकर लल्लनजी बोला ।

—है न अजीब बात ? क्या बताऊँ ।....बहुत पहले की बात है। उस वक्त मैं बहुत छोटी थी । मेरे मामा के यहाँ एक कैप्टेन आया करते थे । न जाने क्यों, वे मुझे बहोत अच्छे लगते थे । तभी से....—और वह फिर हँस पड़ी ।

अजीब बात ! और लल्लनजी के सामने एक गुलाब का पौधा झूम उठा, जिसकी टहनी में एक खिला हुआ फूल था । वह गंभीर हो उठा !

—अरे, यह तुम्हें क्या हो गया ?

—कुछ नहीं, मैं कैप्टेन बनूँगा !....खुद भी मैं यही सोचता था, कहता नहीं था कि कहीं तुम न चाहो ।

शकुन्तला को बहुत अफसोस हुआ कि वह यह क्या कह बैठी। उसने बहुत मना किया, समझाया भी कि आजकल फ़ौज में जाने का मतलब अपने को खतरे में डालना है, क्योंकि लड़ाई चल रही है । और हठ भी बहुत किया, मचली और झगड़ी भी । लेकिन लल्लनजी ने एक न सुनी । उसके दिल में यह बात बैठ गयी थी कि अगर वह

कैप्टेन न हुआ, तो कुछ न हुआ। दिल में हमेशा के लिए एक कलक क्यों रह जाय।

आपको उस ज़माने में किसी भर्ती के दफ्तर या किसी कमीशन में जाने का मौका मिला हो, तो आपने देखा होगा कि अफ़सरों की निगाह आप पर ठीक वैसे ही पड़ी होगी, जैसे किसी माल पर कसाई की। और आप अगर जरा तगड़े और जवान हुए, तो आपने उन्हें यह भी कहते सुना होगा—येस, वी वान्ट यंग मेन लाइक यू !

लल्लनजी-जैसे हर ओर से दुरुस्त जवान को क्या दिक्क़त होनी थी।

और फिर माथुर साहब ने उसकी मदद की।

और फिर....

मुंदरी आंचल में हाथ पोंछती हुई आकर बोली—रानीजी सो गयीं ?

लल्लनजी ने मुंह में उंगली डालकर कहा—शुः !—फिर धीरे से फुसफुसाया—मेरा बिस्तर ठीक करा दे। और हां, यहां कौन रहेगा ?

—सुगिया को बुला देती हूँ।...ठण्डी हवा चल रही है। कहीं पानी बरसा है। यह आज घोड़ा बेंचकर सोयेंगी। कई रात की जगी हैं।

*

लल्लन ने पांव फैलाकर तकिये पर कुहनी और हथेली पर गाल रखकर कहा—तो सुनाओ।

सिरहाने, लल्लनजी के सामने, तिपायी पर बैठी मुंदरी पंखा झल रही थी। बोली—पहले आप बताइए। आपको कैसे मालूम हुआ ?—मुंदरी को कोई सन्देह न रह गया था, फिर भी पूरी बात जाने बिना कुछ भी बताना वह ठीक न समझती थी। रानीजी का भेद आज तक उसने परम के पीछे रखा था। और अब भी वह हिचक रही थी और सोच रही थी कि अगर लल्लनजी ने कहीं ऊपर-झपके से कुछ सुन-सुनाकर यह नतीजा निकाल लिया है, तो वह गोल कर जायगी।

—नहीं, पहले तुम बताओ। और जरा वह सिग्रेट का टिन उठा दो।

—छोटे सरकार, पहले आप बताइए। तब तक मैं याद कर

हूँ। कितनी पुरानी बात है। मैं तो बहुत-कुछ भूल भी गयी हूँ।

सिग्रेट जलाकर लल्लनजी बोला—अच्छा, तो पहले मुझसे ही सुन लो। वहाँ पहाड़ पर मैं एक होटल में कमरा लेकर ठहरा था। मेरे पड़ोस के कमरे में पिताजी की उम्र के एक आदमी ठहरे थे। पहले तो मैंने उनकी ओर कोई ध्यान न दिया, लेकिन कुछ दिनों बाद मुझे ऐसा लगने लगा कि वह आदमी जैसे हमेशा मेरी ताक में रहता हो। जब भी मैं अपने कमरे से निकलता या बाहर से आता, वह आदमी अपने दरवाजे पर खड़ा जैसे मेरा इन्तजार करता रहता। फिर मुझे ऐसा लगा कि वह मुझे बड़े ग़ौर से देखता है, जैसे कुछ पहचानने की कोशिश में हो। कई बार वह मुझे बाजार में भी मिला और हर बार लगा कि वह मेरा मुँह निरखा करता है। लेकिन जब भी मैं उससे आँख मिलाने की कोशिश करता, वह झट से आँख फेर लेता और हट जाता। दो महीने तक लगातार ऐसा ही होता रहा, तो मुझे उससे डर लगने लगा, जाने क्या है उसके मन में कि इस तरह रोज मुझे घूरा करता है। मैंने एक दिन मैनेजर से पूछा, तो मालूम हुआ कि वह एक शरीफ़ आदमी है। पटना युनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर है। कई बार इस होटल में ठहर चुका है। उससे डरने की कोई बात नहीं। उसने यह भी बताया कि वह आदमी भी मेरे बारे में उससे पूछ चुका है। उसने यह राय दी कि क्यों नहीं हम आपस में परिचय कर लेते, ताकि कोई ग़लतफ़हमी न हो।

—लेकिन मुझे उस आदमी से बात करते भी डर लगता। फिर मेरे पास खराब करने के लिए वक्त न था। मैं उससे चौकन्ना रहने लगा।

—एक दिन बड़ी रात गये मैं होटल लौटा। मैं सोचता था कि इस वक्त तक वह मेरे इन्तज़ार में न होगा, लेकिन वह अपने दरवाजे पर खड़ा था। उस वक्त सन्नाटे में उसे देखकर मैं डर के मारे काँप गया। फिर मुझे गुस्सा आ गया। मैंने अपने कमरे का दरवाज़ा खोलते हुए कहा, क्यों, जनाब, आप मुझे इस तरह क्यों हमेशा घूरा करते हैं? यह कोई शरीफ़ों का तो काम नहीं!

—वह घबराकर अन्दर चला गया, तो मैं जोर से बोला, कल से आपकी यह हरकत बन्द न हुई, तो मैं आपकी आँखें फोड़ दूँगा ! यह भी कोई बात है !

—अन्दर जा, मैं दरवाज़ा बन्द ही कर रहा था कि उसने आकर काँपती हुई आवाज़ में कहा, माफ़ कीजिएगा, मुझसे ग़लती हुई ।

—मैंने झुंझलाकर कहा, ग़लती एक बार होती है, जनाब ! आप तो रोज़ ही मुझे घूरा करते हैं । आख़िर आपकी मंशा क्या है ?

—उसने कहा, मंशा तो ज़रूर है मेरी कुछ, लेकिन आप इस क़दर गुस्सा हैं कि कहने की हिम्मत नहीं होती । आज्ञा हो, तो कमरे में आ जाऊँ ?

—नहीं, कोई ज़रूरत नहीं । आपको बात करनी हो, तो सुबह आयें । यह भी क्या कोई बात करने का वक्त है ?

—वह चला गया ।

—इतनी बातचीत करते वक्त भी मैंने गौर किया था कि वह बरा-बर मेरे मुँह की ओर ही देखता रहा । इतने पास-पास हम पहले कभी खड़े नहीं हुए थे । उसकी कोई मंशा है, यह सोचकर मैं थोड़ी देर तक तो चिन्तित रहा, लेकिन फिर उधर से निश्चिन्त होकर....

—मैं अपढ़-गँवार हूँ, छोटे सरकार । ऐसी मुस्किल जबान आप बोलेंगे, तो मैं कैसे समझूँगी । यह इन्त-विन्त का है ?—मुँदरी ठुड्डी पर उँगली रखकर बोली ।

—ओह ! ख़ैर, जाने दो । वह तुम्हारे समझने की बात भी नहीं । आगे इस तरह की शिकायत का मौक़ा तुम्हें नहीं मिलेगा । हाँ, तो मैं क्या कह रहा था ?

—वह तो आप जानें !

—हाँ, सुबह देर से नींद खुली । चाय पी रहा था, तो वह पूछकर अन्दर आया । वह बहुत परेशान दिखायी देता था । उसके चेहरे की झुर्रियाँ गहरी हो गयी थीं । आँखें बोझल और सुर्ख थीं । रात वह शायद सो न पाया था ।

—मैंने उसे कुर्सी पर बैठने को कहा। बैठकर वह बोला, मैं कई बार आपको देख गया।

—मैं अभी उठा हूँ। आप अपनी बात कहिए, मैंने कहा।

—उसने मेरे पिताजी का नाव-गाँव पूछा। मैंने बताया ही था कि उसका चेहरा खुशी से खिल गया। आँखों से खुशी की किरणें फूट पड़ीं। वह मुझे घूर-घूरकर ऐसे देखने लगा, जैसे वह तय कर ही न पाता हो कि खुशी मनाये या ताज्जुब करे।

—मैं अनबूझ की तरह बोला, बात क्या है? आप साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते?

—थोड़ी देर तक तो उसकी लकार ही न खुली। फिर बोला, आपकी सूरत-शकल मेरे एक दोस्त से बिल्कुल मिलती है...

—मैंने हँसकर कहा, आपको अपनी उम्र का ख़याल नहीं? भला मेरी उम्र का कोई आपका दोस्त कैसे हो सकता है?

—यह आज की बात नहीं है। उस वक्त मेरी भी उम्र आप ही के बराबर होगी। मेरा वह दोस्त...देखेंगे आप उसकी तस्वीर? कहकर उसने अपने कोट के बटन खोले और छाती के पास से एक तस्वीर निकालकर मेरे हाथ में थमा दी।

—तस्वीर देखकर मैं चकित रह गया। तस्वीर बिलकुल मेरी ही मालूम पड़ती थी। मैं बोला, यह कैसे मुमकिन है? चेहरा बिलकुल मेरा है। हाँ, यह पोशाक मैंने कभी नहीं पहनी, वर्ना समझता कि आपने किसी फोटोग्राफ़र से मेरी तस्वीर ले ली है।

—किससे?—सुँदरी बोली।

—अरे, जो तस्वीर खींचते हैं न, उन्हें फ़ोटोग्राफ़र कहते हैं।

—वैसे कहिए। ...इस पर उसने का कहा?

—कहा, मेरे पास वह पोशाक है। आप उसे पहनकर एक तस्वीर खिंचवायेंगे?

—मैंने कहा, उसकी जरूरत नहीं। मेरी समझ में नहीं आता क आप....

—उसने कहा, आप चाहेंगे, तो मैं आपको सब बता दूँगा, लेकिन एक शर्त पर।

—कैसी शर्त ?

—कि आप यह जानने में मेरी मदद करेंगे कि मेरे दोस्त का क्या हुआ, और आप इस राज़ की हिफ़ाजत करेंगे। इसी में आपकी और आपकी माताजी की भलाई है।....रंजन मेरा सबसे प्यारा दोस्त था, हम एक जान दो क़ालिब थे। जब से वह लापता हुआ, मेरी ज़िन्दगी ही बदल गयी। मैं उसकी खोज में आपके यहाँ बहुत चाहकर भी न जा सका और न आपकी माताजी को ही कोई चिट्ठी लिख सका। इसमें खतरा था, मेरे लिए भी और आपकी माताजी के लिए भी। आपकी माताजी मेरी मौसरी बहन हैं। मैंने बहुत कोशिश की कि वह एक बार भी अपने पिताजी के यहाँ आ जायें, लेकिन शादी के बाद आपके पिताजी ने उन्हें कभी भी न आने दिया।

—मैं सब-कुछ जानने को उतावल हो रहा था। मैंने उसकी शर्तें मान लीं। तब उसने सब बता दिया। जानकर मेरी क्या दशा हुई, लफ्ज़ों में नहीं बता सकता। वह कहता जाता था और रोता जाता था और मेरी समझ में न आता था कि मैं क्या करूँ, अपना गला घोंट लूँ, या उसका गला घोंट दूँ। आखिर उसने बड़ी मिन्नत से गिड़गिड़ा-कर कहा, आप उसका पता लगा दें। मैं आपका ज़िन्दगी-भर अहसान मानूँगा।....आखिरी बार मैं उसे छोड़कर अपने घर गया था। माताजी की बीमारी का तार आया था। मैंने बहुत चाहा था कि वह भी मेरे साथ चले, लेकिन वह जा न सकता था। पान की चिटियाँ ही उसकी ज़िन्दगी का सहारा थीं, वह उन्हीं के इन्तज़ार में जीता और मरता था। मैं किसी भी हालत में उसे अकेला न छोड़ सकता था, लेकिन उसने खुद यह विश्वास दिलाकर मुझे विदा किया कि वह अपने को कुछ न करेगा, मेरी जान की कसम खाकर उसने कहा था कि हम फिर मिलेंगे। लेकिन फिर वह न मिला। मैं बीस दिन के बाद घर से वापस आया, तो नौकर ने कमरे की चाभी दी। उसी ने बताया कि पन्द्रह दिन

हुए रंजन बाबू कहीं चले गये, अभी तक नहीं लौटे। मेरा कलेजा धक-से कर गया था। रंजन ने इस बीच मुझे एक भी चिट्ठी न लिखी थी। मैंने हर दिन उसे एक चिट्ठी दी थी, लेकिन एक का भी जवाब मुझे न मिला था। मेरा माथा पहले ही ठनका था। मैं पहले ही आ भी जाना चाहता था, लेकिन माताजी की तबीयत बहुत खराब थी। वह एक मिनट के लिए भी मुझे छोड़ने को तैयार न थीं।

—कमरा खोलकर मैंने बहुत ढूँढा कि शायद कोई चिट्ठी मेरे लिए छोड़कर गया हो। लेकिन वहाँ कोई न थी। वह अपना सूटकेस ले गया था। बिस्तर पलंग पर पड़ा था। किताबें आलमारी में पड़ी थीं। जूते और कपडे भी कई पड़े थे। उसका बड़ा बकस भी खोलकर मैंने देखा, लेकिन उसमें भी कोई चिट्ठी न मिली। पान की भी सभी चिट्ठियाँ वह लेता गया था।

—मैंने उसके घर पर तार दिया, तो जवाब के बदले उसके पिता-जी तीसरे दिन आ पहुँचे। वह रो-रोकर मुझसे पूछते रहे और मैं चुप-चाप आँसू बहाता रहा। क्या उनसे बताता? वह युनिवर्सिटी के अधि-कारियों से मिले, रंजन का हुलिया कोतवाली मे लिखाया, अखबारों में फोटो छपवाया, और एक हफ्ते तक इन्तजार करके, रोते-पीटते घर चले गये। मुझसे वह बार-बार पूछते रहे कि मुझे कुछ भी मालूम हो, तो बताऊँ। लेकिन मैं कैसे अपना मुँह खोलकर तुम्हारी माताजी को बद-नाम करता। फिर ठीक-ठीक मुझे उसके ग़ायब होने की बात भी तो मालूम न थी। आत्महत्या पर मुझे विश्वास न था, क्योंकि उसने क़सम खाकर मुझसे फिर मिलने का वादा किया था। मेरी क़सम कभी भी वह झूठ न खा सकता था।....लेकिन आज तुम्हें देखकर मुझे पक्का विश्वास हो गया कि वह आख़िरी बार तुम्हारी माताजी से मिला था। फिर उसका क्या हुआ, यह जानने के लिए मैं आज तक तड़प रहा हूँ।

—मुँदरी, मैंने तब से बहुत सोचा, उस बूढ़े प्रोफेसर के बारे में, रंजन के बारे में और माताजी के बारे में। और मेरी समझ में यह पहली बार आया कि माताजी इस तरह हमेशा बीमार क्यों पड़ी रहती हैं। यह

—उसने कहा, आप चाहेंगे, तो मैं आपको सब बता दूँगा, लेकिन एक शर्त पर।

—कैसी शर्त ?

—कि आप यह जानने में मेरी मदद करेंगे कि मेरे दोस्त का क्या हुआ, और आप इस राज़ की हिफ़ाज़त करेंगे। इसी में आपकी और आपकी माताजी की भलाई है।....रंजन मेरा सबसे प्यारा दोस्त था, हम एक जान दो क़ालिब थे। जब से वह लापता हुआ, मेरी ज़िन्दगी ही बदल गयी। मैं उसकी खोज में आपके यहाँ बहुत चाहकर भी न जा सका और न आपकी माताजी को ही कोई चिट्ठी लिख सका। इसमें खतरा था, मेरे लिए भी और आपकी माताजी के लिए भी। आपकी माताजी मेरी मौसरी बहन हैं। मैंने बहुत कोशिश की कि वह एक बार भी अपने पिताजी के यहाँ आ जायँ, लेकिन शादी के बाद आपके पिताजी ने उन्हें कभी भी न आने दिया।

—मैं सब-कुछ जानने को उतावल हो रहा था। मैंने उसकी शर्तें मान लीं। तब उसने सब बता दिया। जानकर मेरी क्या दशा हुई, लफ्ज़ों में नहीं बता सकता। वह कहता जाता था और रोता जाता था और मेरी समझ में न आता था कि मैं क्या करूँ, अपना गला घोंट लूँ, या उसका गला घोंट दूँ। आखिर उसने बड़ी मिन्नत से गिड़गिड़ाकर कहा, आप उसका पता लगा दें। मैं आपका ज़िन्दगी-भर अहसान मानूँगा।....आखिरी बार मैं उसे छोड़कर अपने घर गया था। माताजी की बीमारी का तार आया था। मैंने बहुत चाहा था कि वह भी मेरे साथ चले, लेकिन वह जा न सकता था। पान की चिट्ठियाँ ही उसकी ज़िन्दगी का सहारा थीं, वह उन्हीं के इन्तज़ार में जीता और मरता था। मैं किसी भी हालत में उसे अकेला न छोड़ सकता था, लेकिन उसने खुद यह विश्वास दिलाकर मुझे विदा किया कि वह अपने को कुछ न करेगा, मेरी जान की कसम खाकर उसने कहा था कि हम फिर मिलेंगे। लेकिन फिर वह न मिला। मैं बीस दिन के बाद घर से वापस आया, तो नौकर ने कमरे की चाभी दी। उसी ने बताया कि पन्द्रह दिन

हुए रंजन बाबू कहीं चले गये, अभी तक नहीं लौटे। मेरा कलेजा धक-से कर गया था। रंजन ने इस बीच मुझे एक भी चिट्ठी न लिखी थी। मैंने हर दिन उसे एक चिट्ठी दी थी, लेकिन एक का भी जवाब मुझे न मिला था। मेरा माथा पहले ही ठनका था। मैं पहले ही आ भी जाना चाहता था, लेकिन माताजी की तबीयत बहुत खराब थी। वह एक मिनट के लिए भी मुझे छोड़ने को तैयार न थीं।

—कमरा खोलकर मैंने बहुत ढूंढा कि शायद कोई चिट्ठी मेरे लिए छोड़कर गया हो। लेकिन वहाँ कोई न थी। वह अपना सूटकेस ले गया था। बिस्तर पलग पर पड़ा था। किताबें आलमारी में पड़ी थीं। जूते और कपड़े भी कई पड़े थे। उसका बड़ा बकस भी खोलकर मैंने देखा, लेकिन उसमें भी कोई चिट्ठी न मिली। पान की भी सभी चिट्ठियाँ वह लेता गया था।

—मैंने उसके घर पर तार दिया, तो जवाब के बदले उसके पिता-जी तीसरे दिन आ पहुँचे। वह रो-रोकर मुझसे पूछते रहे और मैं चुप-चाप आँसू बहाता रहा। क्या उनसे बताता? वह युनिवर्सिटी के अधि-कारियों से मिले, रंजन का हुलिया कोतवाली में लिखाया, अखबारों में फ़ोटो छपवाया, और एक हफ्ते तक इन्तजार करके, रोते-पीटते घर चले गये। मुझसे वह बार-बार पूछते रहे कि मुझे कुछ भी मालूम हो, तो बताऊँ। लेकिन मैं कैसे अपना मुँह खोलकर तुम्हारी माताजी को बद-नाम करता। फिर ठीक-ठीक मुझे उसके गायब होने की बात भी तो मालूम न थी। आत्महत्या पर मुझे विश्वास न था, क्योंकि उसने क़सम खाकर मुझसे फिर मिलने का वादा किया था। मेरी क़सम कभी भी वह झूठ न खा सकता था।....लेकिन आज तुम्हें देखकर मुझे पक्का विश्वास हो गया कि वह आखिरी बार तुम्हारी माताजी से मिला था। फिर उसका क्या हुआ, यह जानने के लिए मैं आज तक तड़प रहा हूँ।

—मुंदरी, मैंने तब से बहुत सोचा, उस बूढ़े प्रोफेसर के बारे में, रंजन के बारे में और माताजी के बारे में। और मेरी समझ में यह पहली बार आया कि माताजी इस तरह हमेशा बीमार क्यों पड़ी रहती हैं। यह

मोहब्बत ऐसी चीज ही है, मुंदरी, जो जिन्दगी में आती है, तो जैसे सब-कुछ मिल जाता है, और जाती है, तो....माताजी की जिन्दगी में अब क्या रह गया है । एक मैं हूँ । मुझे भी तो वह इतना प्यार इसी कारण करती हैं कि मैं....अपने जी से जानिए पराये जी का हाल...मुझे तब बूढ़े प्रोफेसर से बहुत हमदर्दी हो गयी है । माताजी पर मैं जान दे सकता हूँ । मुझे भी इधर कुछ तजुर्बा....—और लल्लन ने दाँतों से जीभ काट ली ।

—हाँ, छोटे सरकार, आप ठीक कहते हैं,—और मुंदरी भी किसी सोच में पड़ गयी ।

थोड़ी देर तक दोनों खामोश रहे ।

फिर लल्लनजी बोला—मुंदरी, अब तू बता कि रंजन बाबू का क्या हुआ ?

मुंदरी ने आँचल से आँखें पोंछकर, नाक सुड़ककर कहा—उस आदमी का नाम राजेन्दर बाबू था न ?

—हाँ, वह पटना युनिवर्सिटी में प्रोफेसरी करते हैं । ताल्लुकेदारी उनके छोटे भाई सँभालते हैं । मैंने सोचा, तुम समझ गयी होगी, इसी-लिए नाम न लिया ।

—आपने जो नाटक आज किया, उसकी का जरूरत थी ? आप सीधे भी मुझसे पूछते, तो बता देती । कहीं माताजी को उस समय होस होता, तो ?

—क्या बताऊँ, मेरा लड़कपन अभी नहीं गया । सच पूछो, तो मेरे विश्वास में कुछ कसर रह गयी थी । उसे पूरा करने के लिए ही मैंने राजेन्द्र बाबू से आते वक्त वह तस्वीरवाली पोशाक माँग ली । उन्होंने बड़े दुख के साथ बताया कि वे हमेशा एक ही [illegible] े-दो पोशाकें बनवाते थे और हमेशा [illegible] ोशाक में [illegible] कलते थे । उनकी नाप भी करीब [illegible] थी । [illegible] बैठ गयी । उन्होंने मेरी भी [illegible] ाक [illegible] प ली । तुमने जो मूँछों [illegible] स

ध्यान दिलाया था।....खैर, छोड़ो, अब तुम बताओ कि रंजन बाबू का क्या हुआ ? मुझे राजेन्द्र बाबू को लिखना है। मैंने वादा किया है।—और उसने एक सिग्रेट जलायी।

—यह तो मुझे भी नहीं मालूम है। जो मालूम है, बता रही हूँ।

*

एक पाँव तिपाई पर रखकर, सलसल्त से बैठकर मुंदरी ने कहना शुरू किया—कुँवरिजी की सादी के सात महीने बाद की बात है। बड़े सरकार मय लाव-लस्कर सोनपुर के कातिक के मेले चले गये, तो रानी-जी ने रंजन बाबू को चिट्ठी लिखकर बुलाया। यहाँ उस बखत मर्दों में बस पुजारीजी और थोड़े चरवाहे-हलवाहे रह गये थे। रब्बी की बोआई हो चुकी थी। पुजारीजी ने भी बहुत कोसिस की कि पूजा करने के लिए कोई एवज मिल जाय, लेकिन कोई न मिला, तो उन्हे मजबूरी से रुकना पड़ा। रानीजी ने सोचा, यह मोका बहुत अच्छा है।

—चार दिन हम इन्तिजार करते रहे। रानीजी मुझे बार-बार बाहर देख आने को कहतीं। मैं समझाती कि चिट्ठी जाने मे कुछ दिन लगेंगे, कुछ दिन उनके आने में, लेकिन रानीजी को सबुर कहाँ ? तीसरे ही दिन से आदमी कस्बे भेजा जाने लगा।

—आखिर पाँचवें दिन साँझ को रंजन बाबू आ पहुँचे। उनके आने की खबर पाकर रानीजी का चेहरा ऐसे खिल गया, जैसे बरसात का चाँद। उनका वैसा खुस चेहरा मैंने अपनी जिनगी में फिर न देखा। लेकिन मेरा कलेजा धक-धक कर रहा था। मुझे बिसवास न था कि रंजन बाबू सचमुच आ जायेंगे। यह रानीजी की ससुराल की बात थी। और बड़े सरकार कैसे जालिम आदमी हैं, मैं जान गयी थी। लेकिन हाय रे मोहब्बत! बेचारे रंजन बाबू जादू के डोरे में बँधे की तरह चले आये।

— रानीजी ने खुसी से पागल होकर कहा, जा, जरा तू अपनी आँख से तो देख आ! और दीवानखाने की चाभी लेती जा।

—मैं दीवानखाने गयी। सहन में रंजन बाबू खड़े थे। पहले तो मैं

मोहब्बत ऐसी चीज ही है, मुँदरी, जो जिन्दगी में आती है, तो जैसे सब-कुछ मिल जाता है, और जाती है, तो....माताजी की जिन्दगी में अब क्या रह गया है। एक मैं,हूँ। मुझे भी तो वह इतना प्यार इसी कारण करती हैं कि मैं....अपने जी से जानिए पराये जी का हाल...मुझे उस बूढ़े प्रोफेसर से बहुत हमदर्दी हो गयी है। माताजी पर मैं जान दे सकता हूँ। मुझे भी इधर कुछ तजुर्बा....—और लल्लन ने दाँतों से जीभ काट ली।

—हाँ, छोटे सरकार, आप ठीक कहते हैं,—और मुँदरी भी किसी सोच में पड़ गयी।

थोड़ी देर तक दोनों खामोश रहे।

फिर लल्लनजी बोला—मुँदरी, अब तू बता कि रंजन बाबू का क्या हुआ ?

मुँदरी ने आँचल से आँखें पोछकर, नाक सुड़ककर कहा—उस आदमी का नाम राजेन्दर बाबू था न ?

—हाँ, वह पटना युनिवर्सिटी में प्रोफेसरी करते हैं। ताल्लुकेदारी उनके छोटे भाई सँभालते हैं। मैंने सोचा, तुम समझ गयी होगी, इसी-लिए नाम न लिया।

—आपने जो नाटक आज किया, उसकी का जरूरत थी ? आप सीधे भी मुझसे पूछते, तो बता देती। कहीं माताजी को उस समय होश होता, तो ?

—क्या बताऊँ, मेरा लडकपन अभी नहीं गया। सच पूछो, तो मेरे विश्वास में कुछ कसर रह गयी थी। उसे पूरा करने के लिए ही मैंने राजेन्द्र बाबू से आते वक्त वह तस्वीरवाली पोशाक माँग ली। उन्होंने बड़े दुख के साथ बताया कि वे हमेशा एक ही कपड़े की दो-दो पोशाकें बनवाते थे और हमेशा एक ही पोशाक में दोनों बाहर निकलते थे। उनकी नाप भी करीब-क़रीब बराबर थी। और मुझे भी फिट बैठ गयी। उन्होंने मेरी भी एक तस्वीर उस पोशाक में खिचवाकर अपने पास रख ली। तुमने जो मूँछों का फ़र्क बताया था, उस ओर उन्होंने भी मेरा

ध्यान दिलाया था।....खैर, छोड़ो, अब तुम बताओ कि रंजन बाबू का क्या हुआ ? मुझे राजेन्द्र बाबू को लिखना है। मैंने वादा किया है।— और उसने एक सिग्रेट जलायी।

—यह तो मुझे भी नहीं मालूम है। जो मालूम है, बता रही हूँ।

*

एक पाँव तिपाई पर रखकर, सलसन्त से बैठकर मुँदरी ने कहना शुरू किया—कुँवरिजी की सादी के सात महीने बाद की बात है। बड़े सरकार मय लाव-लस्कर सोनपुर के कातिक के मेले चले गये, तो रानी-जी ने रंजन बाबू को चिट्ठी लिखकर बुलाया। यहाँ उस बखत मर्दों में बस पुजारीजी और थोड़े चरवाहे-हलवाहे रह गये थे। रब्बी की बोआई हो चुकी थी। पुजारीजी ने भी बहुत कोसिस की कि पूजा करने के लिए कोई एवज मिल जाय, लेकिन कोई न मिला, तो उन्हे मजबूरी से रुकना पडा। रानीजी ने सोचा, यह मोका बहुत अच्छा है।

—चार दिन हम इन्तिजार करते रहे। रानीजी मुझे बार-बार बाहर देख आने को कहतीं। मैं समझाती कि चिट्ठी जाने मे कुछ दिन लगेंगे, कुछ दिन उनके आने में, लेकिन रानीजी को सबुर कहाँ ? तीसरे ही दिन से आदमी कस्बे भेजा जाने लगा।

—आखिर पाँचवें दिन साँझ को रंजन बाबू आ पहुँचे। उनके आने की खबर पाकर रानीजी का चेहरा ऐसे खिल गया, जैसे बरसात का चाँद। उनका वैसा खुस चेहरा मैंने अपनी जिनगी में फिर न देखा। लेकिन मेरा कलेजा धक-धक कर रहा था। मुझे बिसवास न था कि रंजन बाबू सचमुच आ जायेंगे। यह रानीजी की ससुराल की बात थी। और बडे सरकार कैसे जालिम आदमी हैं, मैं जान गयी थी। लेकिन हाय रे मोहब्बत ! बेचारे रंजन बाबू जादू के डोरे में बँधे की तरह चले आये।

— रानीजी ने खुसी से पागल होकर कहा, जा, जरा तू अपनी आँख से तो देख आ ! और दीवानखाने की चाभी लेती जा।

—मैं दीवानखाने गयी। सहन में रंजन बाबू खड़े थे। पहले तो मैं

पहचान न पायी। वो कितने पीले और लागर हो गये थे, उन्होंने ही पहले कहा, मुँदरी !

—मैंने सलाम करके कुसल-समाचार पूछा, और कहा, तबीयत खराब थी का ? आप इतने दुबले हो गये हैं कि पहचाने नहीं जाते।

—उन्होंने कहा, जिन्दा हूँ, यही बहुत है। किस्मत में मुलाकात बाकी थी। रानी कैसी है ?

—पास ही खड़े पुजारीजी और हलवाहों को देखकर मैंने कुछ कहना मुनासिब न समझा। मैंने आगे बढ़कर दीवानखाने का ताला खोला और हलवाहे से उनका सूटकेस अंदर रखवाया। फिर उनके नहाने-धोने का इन्तिजाम कर हवेली में आ गयी।

—रानीजी के पाँव धरती पर न पड़ते थे। जाने कहाँ से अचानक उनमें दौड़ने की ताकत आ गयी थी। जिस रानीजी ने आज तक चौके का मुँह न देखा था, वही आज दौड़-दौड़कर महराजिन और लौंडियों को सहेज रही हैं : मेहमान आये हैं, नास्ता बनाओ।...यह-वह खाना बनाओ !

—ऊपर आकर वो मुझसे लिपट गयीं और मेरे मुँह को चुम्मों से भर दिया। फिर बियाह का जोड़ा बकस से निकालकर बोलीं, मुँदरी, आज मेरी सुहाग रात है। मेरा ऐसा सिंगार करो, ऐसा सिंगार करो कि कातिक का चाँद भी सरमा जाय। उनके लफ्ज-लफ्ज से ऐसी खुसी बरस रही थी कि का बताऊँ।

—मैं मोहब्बत की खुसी और मोहब्बत की पीर जानती थी। और, छोटे सरकार, आप बुरा मानें या भला, मैं सच कह दूँ, बड़े सरकार से मुझे इतना गुस्सा और इतनी नफरत हो गयी थी कि मेरा बस चलता, तो मैं यह हवेली फूँक देती। यह तो अदना-सी बात थी। लेकिन यह रानीजी ही मेरी सबसे बड़ी कमजोरी रही हैं। इनपर जितना मैंने गुस्सा किया है, उतना ही पियार भी लुटाया है। इनका खियाल न होता, तो जाने मैं का कर गुजरी होती। ये न होतीं, तो आप मुझे यहाँ न पाते, और रानीजी भी कहती हैं कि मैं न होती, तो जाने वो कब की मर

गयी होवीं।

—बिना एक लफज बोले मैंने उन्हें नहलाया-धुलाया। फिर लम्प की रोसनी में मैं उनका सिंगार करने बैठी। कंघी से एक बाल टूट गया, तो रानीजी ने हाथ फैलाकर, बिगड़कर कहा, तोड़ दिया न !

—कंघी से बाल निकालकर मैंने उनके हाथ पर रखा, तो मेरी आंख से आंसू टपक पड़े। ये बाल उन्हें बहुत पियारे हैं। रंजन बाबू इन बालों पर जान देते हैं। रानीजी ने मुझे बताया था कि वो टूटे हुए बालों को मांग लेते हैं और लेते बखत कहते हैं, ये बाल नहीं, मेरे दिल की रगें हैं। अपने बालों को रानीजी अब भी अपनी जान के पीछे रखती हैं। आपने देखा होगा, उनके बाल आज भी जवान हैं।

—हां, तो मैंने उन्हें दुलहिन की तरह सजाया। सोलहो सिंगार किया। और उनके हुकुम से सेज डसाया। फिर उसपर बैठाकर उनसे पूछा, खाना ला दूं ?

—उन्होंने जैसे नसे में कहा, नहीं, सखी, भूख-पियास सब बिसर गयी है। *भय लग रहा है। रास्ता बड़ा बीहड़ है। पांव कांप रहे हैं।*

—तो लौंडी को का हुकुम है ? मैंने कहा।

—रानीजी उठकर मुझसे लिपट गयी और सिसककर रोने लगीं। और बोली, लौंडी नहीं, तू मेरी सखी है, मेरी बहन है, मेरी मां है। और उन्होंने झुककर मेरे पांव पकड़ लिये। मैंने जबरदस्ती उठाकर कहा, यह आप का कर रही हैं ? आप पलंग पर बैठिए। मुझपर भरोसा रखिए।

—वह मुझसे फिर लिपट गयीं। बोलीं, नहीं, मुंदरी, यहां तेरे सिवा मेरा कौन है ? यहां तू ही मेरी सब-कुछ है, तू ही अकेली मेरी जिनगी का सहारा है। आज तुझसे मैं एक भीख मांगना चाहती हूं। आज तक मैं तेरे लिए कुछ न कर सकी, उलटे तुझसे कुछ मांग रही हूं। मगर का करूं, कोई चारा नहीं। बोल, देगी ?

—मैं घबराकर बोली, यह आप का कहती हैं, मुंदरी जो-कुछ भी

है, आपको ही है। इसके पास जो-कुछ है, वह भी आपका ही है। आपको माँगने की का जरूरत है। आप जो चाहें, ले लीजिए।

—नहीं, मुँदरी, मेरा मतलब वो नहीं है। पहले तू बचन दे, तब कहूँगी।

—मैंने निढाल होकर बचन दे दिया। उन्होंने कई बार सँकर-वाया। फिर बोलीं, यहाँ का रंग-ढंग देखकर मुझे हमेसा यह डर बना रहता है कि किसी दिन तू मुझे छोड़कर चली जायगी। तू बचन दे कि चाहे जो हो, तू मुझे नहीं छोड़ेगी। तेरे बिना मैं यहाँ एक छन भी जिंदा नहीं रह सकती, मुँदरी!

—इससे बड़ा जुलुम मेरे साथ कोई न हो सकता था। यह मेरी पूरी जिनगी का सवाल था। इस नरक में एक-एक दिन पहाड़ था।....लेकिन मैं का करती? उस कुरबानी के लिए मुझे आज तक पछतावा है, और ताजिनगी रहेगा। मैं बचन हार चुकी थी। बचन देते वखत मेरी वही हालत थी, जो एक कैदी की जिनगी-भर की सजा सुनकर होती है। मैं अपना दाँव हमेसा के लिए हार चुकी थी।

—वह पलंग पर बैठकर बोलीं, अब मुझे कोई भय नहीं। मैं कोई पाप करने नहीं जा रही हूँ। और अगर यह कोई पाप है, तो कम-से-कम बड़े सरकार-जैसे जज के सामने मुझे सिर न झुकाना पड़ेगा।...तू जा, रंजन बाबू को खाना खिला और सोता पड़ जाने पर........और हाँ, इधर मैंने तेरे हँसने पर भी पाबंदी लगा रखी है, लेकिन इस बखत तू चाहे, तो अपनी पूरी ताकत से हँस सकती है। हँस, मुँदरी, कम-से-कम एक बार हँस कि मेरा रहा-सहा भय भी झड़ जाय!

—मुझपर यह कितना बड़ा जुलुम था! मेरी पियारी हँसी! मैं समझी थी कि उसे लकवा मार गया! लेकिन नहीं। मैं हँसी, अपनी किस्मत पर हँसी, अपने लौंडीपन पर हँसी, कि आह! आज मेरी अपनी हँसी भी पराई हो गयी!....

—मुझे माफ करो, मुँदरी! मैंने आज तुम्हारे जख्मों को छेड़ दिया। माताजी के नाते मैं तुम्हारा बड़ा अहसान मानता हूँ...

अफ़सोस है कि मैंने भी तुम्हारे साथ कोई अच्छा व्यवहार न किया, बल्कि एक ऐसा क़सूर....—लल्लनजी ने दाँतों से अपनी जीभ काट ली।

लेकिन मुंदरी का ध्यान उसकी बातों की ओर न था। मुंदरी अपने में ही खो गयी थी। आँचल से आँखें पोंछकर वह बोली—रंजन बाबू से भी न खाया गया। वो अपनी पान के बारे में बड़े उतावलेपन से मुझसे पूछने लगे। लेकिन उनकी किसी भी बात का जवाब न देकर मैंने कहा, थोड़ी देर बाद मैं आपको हवेली में ले चलूंगी। अपनी आँखों से ही देखिएगा।

—उस वखत उनकी आँखों की वह चमक, जैसे अँधेरे में दो तारे चमक उठे हों। बोले, सच, मुंदरी? जैसे उन्हे बिसवास ही न हो रहा हो, जैसे रात में बीच रास्ते थककर सोये हुए मुसाफिर की नींद खुली हो, और उसने देखा हो कि अरे, यह तो मंजिल है।

—सोता पड़ जाने पर मैंने गलियारे का फाटक बन्द कर दिया। जब से बड़े सरकार गये थे, मैं यह फाटक जान-बूझकर हवेली की ओर से बन्द कर देती थी। मैं जानती थी कि यह मोका सायद आये। फिर रानी माँ के पास जा बोली, रानी माँ आज सर्दी कुछ जियादा है। कमरे में बिस्तर लगा दूँ? आज दिन-भर आप खाँसती रही हैं।

—उन्होंने कहा, हाँ रे, मैं कहने ही वाली थी। लेकिन कोई मेरी ओर धियान भी तो दे।

—और उन्हे अच्छी तरह सुलाकर मैं बाहर निकली। मन्दिर का एक चक्कर लगाया और सब ओर से इतमीनान करके रंजन बाबू को लेकर रानीजी के कमरे में पहुँचा दिया और दरवाजा बाहर से बन्द करके वहीं बैठ गयी।

—छोटे सरकार, मैं कैसे कहूँ, कि मुझे इसमें कोई खुसी न हुई। ...रंजन बाबू यहाँ बीस दिन रहे। वो बीस दिन रानीजी और रंजन बाबू की जिनगी के सबसे जियादा खुसी के दिन थे। रानीजी जैसे फूल की तरह खिल गयीं और रंजन बाबू की वह लागर देह जैसे फूलकर बुलबुल हो गई। रंजन बाबू का सेवा-सत्कार ससुराल की तरह हुआ,

वह भी ऐसी समुराल, जहाँ के मालिक सास-ससुर न हों, खुद दुलहिन हो, और दुलहिन भी कैसी, जो अपने दुलहे पर जान निछावर करे। उन बीस दिनों सचमुच रानीजी रानी की तरह रहीं।

—उस बीच अपना मन कठोर करके मैंने एकाध बार रंजन बाबू को विदा कर देने के लिए कहा था। चाहे मैं जितनी होसियारी से काम करूँ, ऐसी बातें, वो भी ऐसे घरों में, बहुत दिनों तक छिपी नहीं रहतीं। लेकिन रानीजी पर तो जैसे सरग-सुख का नसा चढ़ा था, उन्होंने धियान न दिया। रंजन बाबू से भी कहा, लेकिन उन्हें भी होस न था। उन्हें जैसे इस बात का खियाल ही न रह गया हो कि उनकी गरदनों के ऊपर तलवारें लटक रही हैं, लेकिन मुझे था। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते थे, मेरी घबराहट बढ़ती जाती थी। बलुक बीसवें दिन घबराकर मैंने रानीजी से कह दिया कि अगर ऐसा है, तो वे लोग कहीं भाग काहे नहीं जाते?

—रानीजी ने मुस्कराकर कहा, हमारे मन में भी यह बात थी। तू इन्तिजाम कर सकती है?

—मैंने कहा, कोसिस करूँगी।

—लेकिन होनी तो कुछ और थी। पुरानी लौंडियों से मालूम हुआ था कि बड़े सरकार को एक महीने से जियादा ही मेले में लग जाते हैं। उनको गये छब्बीस दिन हो गये थे। और सत्ताइसवें दिन बिना किसी सान-गुमान के वो धमक पड़े। अब काटो, तो खून नहीं। रानी जी की हालत चन्द घंटों में ही ऐसी हो गयी, जैसे वो सालों से बीमार हों, जैसे अचानक लू की लपट आये और खिला हुआ फूल मुरझा-कर टहनी से लटक जाय।

—बिजली की मारी रानीजी बेजान होकर पलंग पर पड़ गयीं। रह-रहकर वो मेरा मुँह ऐसे निरखतीं, जैसे छुरे के नीचे पड़ी गाय। लेकिन मैं भी का कर सकती थी। कई बार मैं दीवानखाने की ओर गयी, लेकिन वहाँ तो मेला लगा था।

—बड़ी रात गये बड़े सरकार हवेली में आये। हम, कला काछके

पड़े थे। वो नसे में बुत थे। आते ही बड़बड़ाये, रानीजी, वो कैसे मेहमान थे ? मेरे आते ही भाग खड़े हुए। मैंने कितना कहा कि रानीजी से मिलकर जाइए, लेकिन वो तो बकटुट भाग खड़े हुए।

—हममें से कोई न बोला। फिर वो लड़खड़ाकर रानीजी के पलंग पर ऐसे गिर पड़े, जैसे कोई पहाड़ का टुकड़ा गिरा हो। रानीजी चौंक पड़ीं, तो वो हँसकर बोले, रानीजी, आप सो गयी थी क्या ?....मैं आपके उस मेहमान के बारे में कह रहा था। वो चले गये। लाख कहा, रुको, वो रुके ही नहीं। कौन थे वो ?

—मैं उठकर खड़ी हो गयी। बोली, रानीजी की तबीयत आपके जाते ही बहुत खराब हो गयी थी। उनके घर से कोई देखने आये थे। मैं मलाई लाऊँ ?

—नईं, वो बोले, और हँस पड़े, थोड़ी जियादा पी गया हूँ। मेरा सिर जरा धो दे।

—मैं उनका सिर धोने लगी, तो वो ओ-ओ करके उठे और दूसरे छन फर्स पर के का पनाला बह उठा। मारे बदबू के दिमाग भन्ना गया। मैंने कुल्ला कराया और सिर पर पानी का धार छोड़ा। वो थिराकर लेटे, तो सबेरे ही उठे।

—सुबह रानीजी ने रंजन बाबू को चिट्ठी लिखी। डाक के बखत मैं चिट्ठी लेकर गयी। फाटक के बाहर ही डाकखाना है। मुंसीजी के हाथ में ही मैं चिट्ठी दे देती थी। देने लगी, तो वो बोले, न बाबा, मैं न लूँगा, अभी बड़े सरकार ने बुलाकर तुम्हारी चिट्ठियों के बारे में पूछा था और कहा कि अब कोई आये, वो मुझे लाकर दें। राजा-रानी के पचड़े में पड़कर मैं अपनी नौकरी नहीं खोना चाहता। तू इसे ले जा, नहीं तो नाहक मुझे बड़े सरकार के हाथ इसे देना होगा।

—मैं चली आयी। रानीजी को बताया, तो जैसे कटे पर नमक पड़ गया हो। वह बोलीं, अब का होगा, मुँदरी ?

—मैंने कहा, जो होगा, होगा ! ओखली में सिर दिया है, तो मूसलों

की फिकिर करने से का फायदा ? हम भी कोई तिनके नहीं, जो कोई फूँक मार दे, तो उड़ जायें।

—उन्होंने कहा, तू तो मेरा साथ कभी नहीं छोड़ेगी ?

—मैंने कहा, लौंडी हुई तो का, बचन दिया है, तो निभाऊँगी !

—फिर मैंने पता लगाने की बहुत कोसिस की, लेकिन कुछ मालूम न हुआ। जाने बेचारे रंजन बाबू का का हुआ ! मुझे पूरा सक है कि बड़े सरकार ने उन्हें मार डाला। लेकिन रानीजी से यह बात कभी नहीं कही। वो सोचती हैं कि अब भी रंजन बाबू जिन्दा हैं। और सायद ऐसा सोचना उनके लिए अच्छा ही है। फिर इस बात की ताईद भी नहीं हो सकी। अब आप कोसिस करके देखें। मेरा खियाल है कि सौदागर को जरूर कुछ मालूम होगा।

—तुझे और कुछ नहीं मालूम ?—लल्लनजी बोला।

—नहीं। मैंने सब बता दिया।

दोनों थोड़ी देर तक खामोश रहे। फिर मुंदरी बोली—जरा रानी-जी को देख आऊँ। सुगिया बड़ी बेखबर सोती है।

—जाओ, अब तुम भी आराम करो।...हाँ, एक काम तुम चाहे जैसे हो जरूर कर दो। माताजी तुम्हारी बात मानती हैं, तुम होशि-यार भी बहुत हो। चाहोगी तो जरूर काम बन जायगा।....मुझे जरूर-जरूर अपनी नौकरी पर जाना है। समझ लो, यह मेरी जिन्दगी और मौत का सवाल है। लेकिन मैं माताजी की रज़ामन्दी के बिना भी नहीं जाना चाहता। तुम उन्हें जैसे भी हो राजी करो।

—बहुत मुसकिल है।

—फिर भी तुम्हें यह करना है, चाहे जैसे भी हो।

—कोसिस करूँगी।

१२

पाँव दबाते-दबाते लुद्दू के पंखे चढ़ गये, बाँहों की नसें फूल गयीं, अँगुलियाँ कड़ी पड़ गयीं और बैठे-बैठे कमर अकड़ गयी। रह-रहकर उसे ऐसे नींद के झोंके आते कि हाथ शिथिल पड़ जाते और सिर बड़े सरकार के ठेहुनों से टकरा-टकरा जाता था। लेकिन बड़े सरकार को न नींद आनी थी, न आयी। लुद्दू झोंका खाकर गिरता, तो वह उसे डाँटते, गाली देते और कभी-कभी पाँव से मार भी देते। पर लुद्दू क्या करता? उसका शरीर जवाब दे चुका था। नींद उसके बस की न थी।

बड़े सरकार को किसी पहलू भी चैन न था। अलसा-अलसा कर कभी इस करवट होते, कभी उस करवट, कभी पट पड़कर तकिये का कचूमर निकालते और कभी चित होकर आसमान के तारे गिनते। और जब इस-सबसे उकता जाते, तो कुहनी के बल जरा-सा उठते, हाथ तिपाई की ओर बढ़ाकर गिलास में शराब उँड़ेलते और पी जाते। वह इस वक्त तक काफ़ी पी चुके थे, लेकिन आज जाने कमबख्त शराब को क्या हो गया था कि उसमें कोई असर ही न रह गया था, दो मिनट में फुक से उड़ जाता, जैसे शराब क्या पानी हुआ!

ऐशगाह के आँगन के चबूतरे पर उनका पलंग पड़ा था। दाहिनी ओर तिपाई पर बोतल और गिलास था, बायीं ओर तिपाई पर लालटेन मद्धिम-मद्धिम जल रही थी। दाहिनी ओर जरा हटकर धुले हुए निखहरे फर्श पर सौदागर अँगोछे का बिट्टा-सा बनाकर, सिर के नीचे लगाये, लेटा था। गोजी उसकी पूरी लम्बाई में पड़ी थी। वह आँखें मूँदे था। लेकिन पता नहीं, वह सो रहा था या योंही गहरी साँसें ले रहा था। उसके पास ही एक तिपाई पर सुराही और चाँदी का

गिलास रखा था। साधारणतः वह दीवानखाने के बाहर ओसारे में या सहन में पडे तखत पर ही सोता था और बड़े सरकार जब ऐशगाह में सोते थे, तो बेंगा ही उनके साथ रहता था। लेकिन आज इसका उल्टा हुआ था। बेंगा बाहर कहीं सो रहा होगा। सौदागर के जीवन में ऐसे अवसर बहुत कम आये थे, लेकिन जब भी आये थे, कोई-न-कोई संगीन घटना घटी थी। उन घटनाओं को वह आज भी उँगली पर गिन सकता था, वे भूली जाने वाली घटनाएँ न थीं, वे उसके जीवन-इतिहास के सबसे महत्वपूर्ण अध्याय थी। आज शाम को जो-कुछ हुआ था, और बड़े सरकार ने जिस लहजे में उसे जल्दी आने को कहा था, उससे उसका माथा ठनका था कि हो-न-हो आज भी कोई वैसी ही घटना घटने वाली है। पहले उसे मालूम हो जाता था कि कौन-सा मोर्चा सर करना है और वह उसके लिए अपने को पूरी तरह तैयार कर लेता था। वह वक्त ही कुछ और था। तब सौदागर जवान पट्ठा था। उसके बल की तूती चारों ओर बोलती थी। अपने बल के साथ-साथ बड़े सरकार का बल था, फिर डर की क्या बात थी। वह छुट्टे साँड़ की तरह पूरी ज़मींदारी में घूमता था और बडे सरकार का जो भी हुकुम होता, बजा लाता। लोग बडे सरकार से ज्यादा उससे डरते थे। बड़े सरकार से तो पाला साल-छः महीने पर कभी-कभी पड़ता था, लेकिन सौदागर से रोज़-रोज़ का सम्बन्ध था। वह बडे सरकार के नाम पर जो भी जी में आता, कर जाता। वह अपनी करतूतों से जितना स्वयं बदनाम था, उससे ज्यादा उसने बड़े सरकार को बदनाम किया था। लेकिन गालियों के पुरस्कार का जहाँ तक सम्बन्ध था, बड़े सरकार से ज्यादा उसे मिलता था, और वह उन्हें वैसे ही स्वीकार करता था, जैसे कोई सैनिक पदक। उसकी यह पक्की धारणा थी कि रियाया जितनी अधिक उसे गालियाँ देगी, बड़े सरकार का वह उतना ही ज्यादा प्यारा होगा। और यह बात बिल्कुल सही थी, ठीक वैसे ही, जैसे शिकारी का कुत्ता जितना ही अधिक खूँख्वार होता जाता है, उसके लिए वह उतना ही . . . और उपयोगी होता जाता है, उसे खाना ज्यादा और

अच्छा मिलता है, उसकी परवाह ज्यादा की जाती है। सौदागर बड़े सरकार का दाहिना हाथ हो गया था। बड़े सरकार को उसपर पूरा भरोसा था, वह उसे हर मौक़े का साथी समझते थे। और इसी लिए उसकी हर ज़रूरत पूरी करते थे।

सौदागर कोई भी धन्धा न करता था। उसे कोई धन्धा करने की ज़रूरत ही न थी, दरबार का चाकर अपना पेट भरने के लिए कोई काम करे, यह दरबार और चाकर दोनों के लिए अपमान की बात थी। जो खेत उसे माफी के मिले थे, उन्हें वह धांधली करके किसानों से सरकार के हल-बैल से *जोतवा-बोवा और कटवा-मिसवा लेता था।* पहले उसे अपने शरीर की इतनी फ़िक्र थी कि उसने शादी की बात ही न सोची। सुबह-शाम खूब कसरत और खूब खाना ही उसके जीवन का उद्देश्य था। बड़े सरकार भी बराबर इस बात की ताकीद रखते कि उसे किसी चीज की कमी न रहे। लेकिन जब उमर ढलने लगी, तो उसे, जैसा कि उसने उस वक्त लोगों से कहा, वंश चलाने की चिन्ता हुई और बड़े सरकार से हुकुम लेकर, उन्हीं के खर्च पर उसने बड़े ठाठ से अपनी शादी की। और सौभाग्य से (सौदागर के मन की बात कौन जाने!) उसे औरत बड़ी ही खूबसूरत, बिल्कुल जवान और बहुत ही तन्दुरुस्त मिली। थोड़े दिनों के बाद जब पहलवान की देह ढ़रकने लगी, तो लोगों ने फब्तियाँ कसी कि वह झुलनी में फँस गया। और फिर जाने उसके मन में क्या आया कि उसने कसरत करना छोड़ दिया। और फिर थोड़े ही दिनों में पसरकर उसकी सुडौल, काली-भुजंग देह ऐसी मोटी, भद्दी और पलजर हो गयी, जैसे बूढ़ा हाथी। अब उसका जी बस यही करता कि कहीं खुशफैल जगह में पाँव पसारकर पड़ा रहे, उससे कोई कुछ करने को न कहे। उसका हिलना-डुलाना जैसे पहाड़ का हिलना-डुलना हो। और जब कई साल बीत गये, और उसके कोई बाल-बच्चा न हुआ, तो मुँह लगी, लगउआ औरतों ने ताना मारा, का हो पहलवान, ई देह खाली दिखावे के ही रहल! और पहलवान शरमा जाता। उसके साथ उसकी औरत ऐसी लगती, जैसे सूअर

के कान में इन का फ़ाहा।

और फिर उसकी औरत के बारे में तरह-तरह की झूठी-सच्ची कहानियाँ उड़ीं, जिनमें बड़े सरकार के साथ-साथ कई जवानों के, जिनमें ताड़ीखाने का पासी मुख्य था, नाम आये। लेकिन ये कहानियाँ हवा में ही उड़ती रहीं, धरती पर न उतरीं। फिर भी जाने सौदागर को क्या हुआ कि वह अपनी औरत से डरने लगा। और फिर तो कँवला (सही नाम था उसकी औरत का) मशहूर हो गयी, बदनाम कोई कैसे कहे, ऐसे में पड़कर कोई जवान औरत बेचारी क्या करे? जाहिल, जपाट, गँवार भी यह समझते हैं।

सौदागर ने बड़े सरकार से कहकर, गाँव के बिलकुल बाहर पूरब तरफ़ ताड़ीखाने से दूर, लेकिन ठीक सामने, एक डीह पर अपने लिए एक छोटा-सा घर बनवाया था। जैसे सब लोगों में छँटकर वह, वैसा ही गाँव से अलग-थलग उसका घर गाँव का, अपने बाप-दादा का, घर उसने छोड़ दिया था, जो ढह-ढिमला गया था। वहीं उसने एक कुआँ खोदवाया और एक अखाड़ा भी जमाया था। अखाड़े के एक कोने में महावीरजी का चबूतरा था और एक बहुत बड़ा लाल झंडा, जिसपर सफ़ेद कपड़े से एक बन्दर का आकार बना रहता, लहराता रहता था। शादी के पहले वहाँ कितनी ही बार दंगल हुए थे, पहलवानों का जमावड़ा हुआ था, नगाड़े और टिमकी बजी थी और महावीरजी का प्रसाद लड्डू और जौ-चने का चबेना और गुड़ की पिंड़ियाँ बँटी थीं। हर शाम को वहाँ खासी चहल-पहल रहती थी। लेकिन शादी के बाद अखाड़े में दूब जम गयी थी। अब सौदागर को अफ़सोस होता कि गाँव से दूर इतने निचन्ते में उसने घर क्यों बनवाया?

कँवला उस घर में अकेली रहती थी। बनाने-खाने के सिवा उसके पास कोई काम न था। वह चिकनी खाती, चिकना पहनती और चिकनी रहती। वह रोज पत्थर पर रगड़-रगड़कर अपनी एँड़ियाँ चमकाती और उन पर महावर रचाती। खूब बड़ा सिंदूर का टीका या खूब बड़ी टिकुली ..। आँखों में मोटा काजल लगाती। रंग-बिरंगे मोतियों से और

फुँदनों से सजे बटुए से धोटी करती। सब गहने हमेशा पहने रहती। धोबी के यहाँ से कपड़े धुलवाती और बार-बार धोबी को ताकीद करती कि वह नील लगाना न भूले। पान से चौबीसों घंटे उसके होंठ रचे रहते। और इस तरह खूब बन-सँवर कर वह बोरा बिछाकर दरवाजे पर आ बैठती और घंटों बैठी रहती और जाने क्या-क्या सोचती रहती। घर के अन्दर एक छन को भी उसका जी न लगता, जैसे घर का सूनापन काटने दौड़ता हो। उसका मन हमेशा उड़ा करता और जाने किन पगडंडियों और खेतों में भटका करता। वह गाँव में बहुत कम आती। आती, तो हवेली में जरूर जाती। रानीजी को परनाम करती और और किसी से तो नहीं, जैसे कोई मुँह लगाने के काबिल ही न हो, पर मुँदरी से उसकी खूब पटती। वे घंटों जाने कहाँ-कहाँ की बातें करतीं।

एक दिन मुँदरी ने कहा—सखी, मेरा एक काम कर देगी?

मुँदरी कँवला से उम्र में बहुत बड़ी थी, लेकिन देह से बराबर पड़ती थी। इसी लिए उनमें सहलापा का सम्बन्ध क़ायम हो गया था।

कँवला ने कहा—हो सकेगा, तो काहे न करूँगी। सखी की बात कैसे टालूँगी?

मुँदरी बात भेद की है। कहते डर लगता है। बाकी सखी पर बिसवास न करूँ, तो धरम नसाय।

कँवला—सखी की बात जान के पीछे। तेरी सौं, कह।

मुँदरी ज़रा और खिसककर, बिल्कुल सटकर, फुसफुसाकर बोली—बहुत दिन पहले की बात है। रानीजी के एक रिस्तेदार यहाँ आये थे। बड़े सरकार और उनमें कुछ अनबन थी। जाने फिर का हुआ, वह लौटकर वापस न गये। जरा तू पहलवान से पूछेगी, उसे इसके बारे में कुछ मालूम है?

—जरूर पूछूँगी, सखी। यह कौन मुसकिल बात है?

—मुसकिल है। जरा होसियारी से काम करना होगा। किसी तरह यह बात निकल आती, तो सखी का मैं जिनगी-भर अहसान मानती।

—अहसान की कोई बात नहीं, मैं जरूर पता लगाऊँगी!

और एक दिन कँवला ने मौक़ा पाकर सौदागर से पूछा, तो वह बिलकुल नकर गया। लेकिन उसकी घबराहट देखकर वह ताड़ गयी कि हो-न-हो, जरूर इसे पता है। उसने कोशिश जारी रखी। लेकिन सौदागर कोई साधारण घाघ न था।

आज फ़र्श पर पड़े-पड़े सौदागर को कँवला की वह बात याद आ रही थी। और उसे इसमें अब ज़रा भी सन्देह न रह गया था, कि दूसरों के कानों में भी भनक पहुँच गयी है। और उसे लग रहा था कि उसके खिलाफ कोई बहुत बड़ी साजिश रची जा रही है, जिसमें खुद उसकी औरत भी शामिल है। आज एक जमाने के बाद वह रात और उस रात की सारी बातें उसे याद आ रही थीं और रह-रहकर रंजन उसके सामने आ खड़ा होता था और फिर उसे लगता था कि वह रंजन नहीं, छोटे सरकर हैं—जैसे रंजन छोटे सरकार के रूप में उससे बदला लेने आ पहुँचा है। अब क्या होगा ?

*

तभी बड़े सरकार जैसे डरकर चीख उठे। उन्हें अचानक झपकी आ गयी थी, और उन्हें लगा था रंजन ठट्ठा मारता उनकी ओर बन्दूक की नली किये सामने खड़ा है।

सौदागर उठकर गोजी पर हाथ रखता बैठता हुआ बोला—का हुआ, बड़े सरकार ?

पसीने से थकबक बड़े सरकार भी उठकर बैठ गये थे और पाटी से लगकर बिस्तर के नीचे रखी बन्दूक पर हाथ रखे हाँफ रहे थे। पैताने लुद्‌दू लुढ़ककर सो गया था। बड़े सरकार का गुस्सा उसी पर उतरा। उन्होंने एक लात उसे मारकर कहा—सौदागर, निकाल इस साले को बाहर !

सौदागर उसे बाहर करके आया, तो तौलिये से पसीना पोंछते हुए बड़े सरकार ने कहा—एक गिलास पानी पिला। बड़ी गर्मी है।

हवा ठंडी चल रही थी। फिर भी सौदागर ने प्रतिवाद न किया, बल्कि उसने गिलास में पानी ढालकर बड़े सरकार को थमाते हुए —बेंगा को बुलाऊँ ?

एक ही साँस में गिलास खाली करके उन्होंने कहा—नहीं, तू ही ज़रा पंखा झल।

सौदागर के लिए इससे बढ़कर कोई सज़ा न हो सकती थी!

बड़े सरकार लेटकर बोले—तूने आज छोटे सरकार को देखा है?

—जी, बड़े सरकार, खूब तन्दुरुस्त हो गये हैं। पहाड़ का हवा-पानी खूब हक लगा है।

—उनकी पोशाक कैसी लगी तुझे?

—बहुत अच्छी, बड़े सरकार। बिलकुल किसी रजवाड़े के युवराज की तरह लग रहे थे।

—ऐसी पोशाक किसी और को पहने यहाँ कभी तूने देखा है?

—यहाँ किसकी समात है ऐसी पोशाक पहनने की? जिसका पहनावा, उसी को जेब देता है।

इस पैंतरेबाजी का कोई अन्त न था, यह दोनों [illegible] जानते थे। यह कुछ वैसे ही था, जैसे अलग-अलग पकड़े गये दो चोर-साथियों का अचानक आमना-सामना हो गया हो और वे सब बातें तो जानते हों, लेकिन चोरी की बात जबान पर लाने की हिम्मत न करते हों, यह जताने के लिए कि हम तो शुबहे में पकड़े गये हैं, [illegible] किसी ने देखा है, और यह भी इशारों-इशारों में जानने के लिए कि तुमने तो एकबाल नहीं कर लिया है न?

सो, इन दोनों में एकबाल करने वाला कोई न था। ज़ाहिर है कि इस तरह की बातें देर तक नहीं चल सकती थीं। दोनों खामोश हो गये। लेकिन आज दोनों के दावों पर [illegible] तरह का [illegible] चाहते, तो एक-दूसरे का [illegible] जतलाने की ज्यादा फ़िक्र थी कि [illegible] अगर तुम ऐसा सोचते हो, तो यह तुम्हारी [illegible] है।

दोनों ने अपने अन्दर के [illegible] तरह का बदला [illegible] रंजन अट्टहास कर रहा था और [illegible]

वह रहस्य, जिसके कारण मैंने अपनी कुर्बानी दे दी थी ? तुम्हें मालूम न हो, लेकिन मुझे मालूम था, कि अपने पीछे मैं अपना एक अंश छोड़े जा रहा हूँ, जो एक दिन बड़ा होगा, जवान होगा और तुम लोगों के इस जालिमाना कतल का बदला चुकायेगा ! मैं देखूंगा कि उस दिन कैसे बचकर निकल जाते हो ! आज वह वक्त आ गया है। हाः हाः हाः !

—सौदागर !

—जी, बड़े सरकार।

—तू ने...तू ने...तो....कुछ नहीं....नींद आ रही है। देख तो बोतल में कुछ है ?

सौदागर ने ढालकर गिलास थमाया। पीकर बड़े सरकार बोले—कुछ मालूम नहीं होता ! शम्भू का बच्चा जाने कैसी लाया है....जलसे की तैयारी तो पूरी हो गयी है न ?

—जी, बड़े सरकार।

—ख्याल रखना, किसी बात की कमी न रह जाय।

—आप चिन्ता न करें, बड़े सरकार !

—पुजारीजी आज कुछ कह रहे थे ?

—नहीं तो, बड़े सरकार।

—जाने, आज शाम को मिठाई लेकर जब आये थे न, कैसी नजरों से मेरी ओर देख रहे थे। तुमने कुछ समझा ?

—नहीं तो, बड़े सरकार।

—तुम हो बुद्धू !

—जी, बड़े सरकार।

—इस पुजारी साले की शामत तो नहीं आयी है ?

सौदागर का दिमाग़ सन्न-से कर गया। वह हकलाकर बोला—भगवान का भगत है.. सरकार के सामने एक पाँव पर खड़ा रहता है....

—हूँः !

गुस्सा कमजोर पर ही उतरता है। वह भेड़िये और मेमने की कहानी है न !....क्यों बे, तू पानी क्यों गँदला कर रहा है ?....तू नहीं, तो तेरे बाप ने किया होगा !...बड़े सरकार भी अपना गुस्सा उतार लेना चाहते थे, लेकिन यह कोई साधारण गुस्सा न था और उसे उतारने के लिए कोई असाधारण बात होनी चाहिए थी। बड़े सरकार को लग रहा था कि जब तक यह गुस्सा किसी के ऊपर उतर न जायगा, उन्हें चैन न मिलेगा। कुछ देवी-देवता ऐसे होते हैं, जो उखड़ जाने पर बिना खून पिये शान्त नहीं होते। बड़े सरकार उन्हीं देवताओं में से थे।

सौदागर मन-ही-मन काँप रहा था। बड़े सरकार के मुँह से इस तरह की बात निकलने का मतलब वह जानता था। पहले ऐसे मौकों पर वह पूरी दबंगई के साथ कहा करता था, जो सरकार का हुकुम हो ! लेकिन आज वह ऐसा न कह पाया। वह कमजोर हो गया है। कितनी बार उसके मन में उठा था कि उस पासी के बच्चे की गर्दन उमेठ दे। उसके चिकने, सुडौल, बने, सँवरे बदन को देखकर उसके मन में आग लग जाती थी। लेकिन उस आग में वह खुद ही जला करता था, उसे बुझाने की ताकत अब उसमें नहीं रह गयी थी।

बात फिर ठप हो गयी। बड़े सरकार भी जैसे कुछ समझकर ही चुप हो गये। उन्हें अफ़सोस हो रहा था कि इस बूढ़े साँढ को अब क्यों पाले हुए हैं। इस पर तो दाना-पानी भी खराब करना है।... लेकिन अब बहुत देर हो गयी थी। उन्हें बहुत पहले ही यह सोचना चाहिए था। अब तो जमाना इतना खराब हो गया है कि कोई नमक-हलाल आदमी दिखायी नहीं देता। और बड़े सरकार को आज पहली बार चिन्ता हुई कि अब किसी दूसरे को रखना चाहिए, सौदागर किसी काम का न रहा।

वह बोले—सौदागर, आजकल किस पहलवान का नाम हो रहा है ?

सौदागर का मन फिर एक बार सन-से हो गया। ऐसी व बड़े सरकार के मुँह से कभी न निकली थी। कितनी बार जिन्दगी देने का उन्होंने वादा किया था ! लेकिन अब मालूम देता

भी वह सँभलकर बोला—सौदागर के जीते-जी कोई आगे निकल जाने वाला तो पैदा नहीं होने का !

बडे सरकार उस विषम परिस्थिति में भी मन-ही-मन मुस्कराये। बोले—सो तो तू ठीक ही कह रहा है।...लेकिन इधर तेरी देह बिलकुल खराब हो गयी। तुझे शादी नही करनी चाहिए थी।

—जी, बडे सरकार, आपने भी तो मना नहीं किया उस बखत। पहलवानी की दुसमन औरत होती है, लोग कहते थे, तो मुझे विसवास न होता था, लेकिन देख लिया कि यह सच है।

—कँवला के क्या हाल-चाल हैं ?...एक जालिम औरत है, तुझे तो वह खा गयी।

—जी, बड़े सरकार, आपसे का छिपा है। जिस सौदागर से दुनिया हार मानती थी, उससे ही इस औरत ने पानी भरवा दिया। ऐसा पछ-तावे का काम जिनगी मे मैंने दूसरा न किया।

—कितनी बार तुझसे कहा कि वैद्यजी से मदद ले। अब तू बूढ़ा हो गया।

—ऐसी बात तो नहीं है, बड़े सरकार। जब ले मोटका पातर होई, तबले पतरका सेलह जाई। बाकी का बताऊँ, मेरा बस उसके सामने नहीं चलता, बडे सरकार। बड़ी सरम की बात है, लेकिन का बताऊँ....

—*बड़ी बदनामी हो रही है....क्या नाम है उस पासी के लौंडे का ?*

—उसका नाम न लीजिए, बड़े सरकार। जब तक उसका खून न पी लूँ, मुझे चैन न मिलेगा।

—सुना है, अच्छा पहलवान निकला है...

सौदागर को काटो, तो खून नहीं। सकपका कर बोला—दंगल तो अभी कोई मारा नहीं। हाँ, दीवार फाँदने में जरूर तेज है, कितने घरों की हँड़िया नास चुका है।

—यह तेरी कँवला मुँदरी से क्या बातें करती है, कुछ मालूम है ?

सौदागर जैसे महाजाल में फँस गया हो। एक फन्दे से छूटता है, दूसरे में फँस जाता है। परेशान होकर बोला—जाये जहन्नुम में !

बहुटियाकर आप आराम कीजिए, बड़े सरकार। रात बहुत बीत गयी है। सरकार की तबीयत खराब हो जायगी।

—नींद नहीं आती। तबीयत लाख बहलाता हूँ बहलायी नहीं जाती!

सौदागर के मन में खटक रह गयी थी। बोला—उस पासी के बच्चे का नाम जीतन है।...चतुरिया वगैरा से उसकी बहुत पटती है। चुप्पा है, कुछ मालूम नहीं होने देता।

—अच्छा!

—जी, बड़े सरकार।

—तब तो समझना चाहिए कि उनकी पहुँच हमारे....मतलब कि तुम्हारे घर के अन्दर भी हो गयी है। कँवला तुमसे कुछ पूछती-आछती तो नहीं?

—कुल हो गया तो का हुआ, अभी उसकी ऐसी मजाल नहीं कि मुझसे कुछ पूछे!

—हाँ, तुझे बहुत होशियार रहना चाहिए।....घर का भेदी लंका दाह।....तेरे कितने शागिर्द थे, एक भी ऐसा न निकला, जो तेरी जगह ले सके?

यह सीधे मर्म पर चोट थी। सौदागर तिलमिला गया। बोला—यह कोई ठट्ठा नहीं, बड़े सरकार। बड़ी पेसवा से यह देह बनती है। एक भी मेरा नाम चलाने वाला न निकला, इसका मुझे भी अफसोस है।

—हूँ!

बात फिर ठप पड़ गयी। खड़े-खड़े सौदागर की तेरही नौबत हो रही थी। सिर से पैर तक पसीने के धार बहे जा रहे थे। हाथ हिलाना मुश्किल हो रहा था। पाँव जवाब दे रहे थे। घोड़े की तरह कभी इस पैर को आराम देता, तो कभी उस पैर को। मन की बेकली अलग। बड़ी साँसत में जान पड़ी थी बेचारे की। वहाँ उसके बैठने-लायक कोई तिपाई भी नहीं थी। उसके लिए खास तौर पर एक मज-बूत तिपाई बनवायी गयी थी, जिसपर वह दरबार में बैठता था।

बड़े सरकार की हालत भी किसी तरह उससे बेहतर न थी। वह नहीं चाहते थे कि सौदागर पड़कर सो जाय और वह अकेले दुश्चिन्ताओं से लड़ने के लिए रह जायें। वह डर रहे थे कि जाने क्या कर डालें। उनका पारा किसी तरह भी न उतर रहा था। वह चाहते थे कि इसी तरह बात करते-करते सुबह कर लें। लेकिन कोई भी बात दूर तक न चल पाती थी। बात ठप पड़ जाती थी। और फिर वही बातें दिमाग़ में कँटीले पाँव वाले कीड़ों की तरह रेंगने लगती थीं। रंजन फिर-फिर सामने आ खड़ा होता था....

*

मेले से लौटानी पर हाथी मन्दिर के द्वार पर बैठा। पुजारीजी ने पहले बड़े सरकार को, फिर हाथी को टीका किया। बड़े सरकार ने पूछा—सब कुशल तो है न?

—जी, हाँ, बड़े सरकार, ठाकुरजी की कृपा से यहाँ सब ठीक है। अपना कहिए?

—हाथी पसन्द आया?

—बहुत अच्छा है, साक्षात गणेशजी का रूप!

—मेले में सबसे निकल कर था। बड़ी चढ़ा-ऊपरी हुई। लेकिन जब मेरे मन पर चढ़ गया, तो और कौन ले जा सकता था!

—सो तो है ही, बड़े सरकार। अच्छा, अब चलिए, थके-हारे होंगे, आराम कीजिए।

हाथी झूमकर उठा, तो आस-पास खड़े तमाशबीन भाग खड़े हुए। हाथी चिहा-चिहाकर चारों ओर देख रहा था कि यह कहाँ पहुँच गया।

दीवानखाने के पास हाथी बैठा। बड़े सरकार नीचे उतरे और दो पग ही आगे बढ़े थे कि ओसारे के तख़्त से उतरकर एक युवक ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

बड़े सरकार ने भौंहें सिकोड़ कर उसकी ओर एक नज़र देखा और दीवानखाने में घुस गये। सौदागर से कहा—पुजारीजी को बुला।

अन्दर ओसारे में बड़े सरकार कुर्सी पर बैठ गये। जूते उतार कर

बैठा उनके पाँव धोने लगा। पुजारीजी हाथ बाँधे सामने आ खड़े हुए, तो वह बोले—पुजारीजी, बाहर वक्त पर कौन है ?

—रानीजी के कोई सम्बन्धी मालूम देते हैं।

—मालूम देते हैं के क्या माने ? आपको ठीक-ठीक नहीं मालूम ?

—मैंने पूछा तो नहीं, बड़े सरकार।

—क्यों, क्यों नहीं पूछा आपने ? हमारी गैरहाजिरी में जो भी चाहे आकर ठहर सकता है क्या ?...आखिर यह कौन है ? शादी के वक्त तो रानीजी के यहाँ हमने इसकी तरह के किसी आदमी को नहीं देखा था।

—कोई रिश्तेदार ही होंगे, बड़े सरकार। मैंने मुँदरी से पूछा था। और कौन यहाँ आकर ठहरने की हिम्मत कर सकता है ?

—यह कब से आकर यहाँ ठहरा है ?

—यही कोई बीस दिन हुए होंगे।

—कौन इसकी खिदमत में था ?

—मुँदरी।

—और कोई नहीं ?

—जी, नहीं।

—कहाँ सोता-बैठता था ?

पुजारीजी चुप।

बड़े सरकार का माथा ठनका। तेवर चढ़ाकर बोले—बोलते क्यों नहीं ?

हाथ जोड़कर पुजारीजी बोले—बड़े सरकार का नमक खाया है, झूठ नहीं बोलूँगा। मुझे मालूम नहीं।

—मालूम नहीं ? इसके क्या माने ?

—मुझे मालूम नहीं, बड़े सरकार।....जैसा आपका हुकुम था, मैं रोज रात को तीन-चार चक्कर दीवानखाने का लगाता था। मैं देखता था कि रात को दीवानखाने में ताला पड़ा रहता था।

—और वह कहाँ रहता था ?

—ठीक नहीं कह सकता, बड़े सरकार। मुँदरी से पू
उसने बताया था कि वही बाहर से ताला बन्द कर देती
अन्दर ही रहते हैं।

—यह तो कुछ समझ में आनेवाली बात नहीं लगती ?

—अब हम का बतायें, बड़े सरकार। हमारा इसमें कोई
है। रानीजी की मर्जी के खिलाफ मैं कैसे कुछ कर सकता हूँ ?

गुस्से से काँपते हुए बड़े सरकार बोले—भाग जाओ
बिल्कुल नामाकूल आदमी हो तुम !

पुजारीजी वहाँ से खिसक गये, तो बड़े सरकार ने बेंगा
मुँदरी को बुला और पानी गरम हो गया हो, तो नहाने का
कर। और हाँ, सौदागर को भेजता जा।

बेंगा अभी दरवाज़े तक ही गया था कि बड़े सरकार ने
सोचकर उसे पुकारा और कहा कि मुँदरी को बुलाने की ज़रूर

सौदागर आया, तो उन्होंने कहा—वह जो बाहर व
है, उसे ले जाकर अन्दर कोनेवाले कमरे में बैठाओ और ए
जलाकर रख दो।...और सुनो ! शादी के वक्त तुमने मेरी ससुर
देखा था ?

याद-सा करके सौदागर बोला—नहीं, यह तो किसी
जुवराज मालूम पड़ते हैं।

—अच्छा, तो वैसे ही उसकी ख़ातिर होनी चाहिए। तू
उसे बैठा।—और बड़े सरकार उठकर अपने कमरे में चले ग

नहा-धोकर फारिग हुए, तो कुछ सोचते हुए ही बड़े सर
के कमरे की ओर जा निकले। युवक तख़्त पर बैठा कोई प
रहा था। बड़े सरकार को देखकर वह उठ खड़ा हुआ। बोल
क्यों कष्ट किया, मुझे ही बुला लेते।

—बैठिए, बैठिए ! आप हमारे मेहमान हैं।—कहकर व

ने बात शुरू की।

—जी नहीं, तकलीफ़ क्या होनी थी। आप आ गये, अच्छा हुआ, आपके दर्शन हो गये। मैं तो अब जानेवाला ही था।

कहीं कोई शुबहे की बात नहीं। यह तो बड़ा ही सीधा, शीलवान युवक मालूम पड़ता है। बड़े सरकार बोले—माफ कीजिएगा, मैंने आप को पहचाना नहीं, शादी के वक्त आप....

—जी, मैं शादी में सम्मिलित नहीं हुआ था। मेरी तबीयत उस वक्त खराब थी।

—तो आप...?

—मैं राजेन्द्र बाबू का दोस्त हूँ। मुझे रंजन कहते हैं। राजेन्द्र बाबू को भी शायद आप न जानते होंगे। वह पान कुँवरि के मौसेरे भाई होते हैं।

—ओ!—कुछ सोचकर बड़े सरकार बोले—तभी तो! आप इधर कैसे आ निकले?

अजीब सवाल था। कोई अपने मेहमान से ऐसा भी पूछता है? रंजन सकपका गया। फिर भी बोला—यों ही चला आया। पान कुँवरि को बहुत दिनों से देखा न था, उनकी शादी में भी शामिल न हुआ था। बहुत दिनों से उनकी शिकायत थी। चला आया।

—अच्छा किया,—उठकर बड़े सरकार बोले—आप इसी कमरे में आराम कीजिए। जलपान करेंगे?

खड़े होकर रंजन ने कहा—कर चुका हूँ।

—खाना आप कब खाते हैं?

—कोई ठीक नहीं। और आज तो बिल्कुल जी नहीं चाहता।

—ऐसा कैसे हो सकता है, साहब? आज तो मेरे साथ खाना ही होगा!—और वह बाहर हो गये।

कुछ देर तक ओसारे में टहलते रहे। फिर कुछ सोचते हुए ही वह दीवानखाने में आ गये। अलवेले की बगल में एक बड़ा चमड़े का सूटकेस रखा था। वह उधर बढ़ गये। ताले में लगा चाभी का लटक रहा था।...बड़ा लापरवाह मालूम होता है। उन्होंने

सूटकेस खोल दिया। कपड़े-ही-कपड़े भरे थे। तभी ढक्कन के रेशमी कपड़े के खाने पर उनकी निगाह पड़ी। रेशमी रूमाल में कुछ बँधा हुआ खुंसा था। चिट्ठियाँ होंगी। उन्होंने उसे निकाला। रूमाल खोल-कर देखा, चिट्ठियों की गड्डी थी। एक चिट्ठी के ऊपर देखा, 'प्राण प्यारे', और नीचे देखा, 'तुम्हारी याद में तड़पनेवाली, पान'। छाती के अन्दर जैसे किसी ने तपाकर लाल किया हुआ सूआ पेश दिया हो, बड़े सरकार तिलमिलाते हुए अपने कमरे में आये और दरवाजा अदर से बंद-कर चिट्ठियाँ पढ़ने लगे। जैसे आग में जल रहे हों, तन-बदन फुँक रहा हो।

*

—सौदागर!

—जी, बड़े सरकार।

—उसकी शामत आयी है!

—किसकी, बड़े सरकार? हुकुम हो, तो अभी उसकी नटई दबा दूँ!

—नहीं, उसके खून से मैं अपने हाथों को रंगूँगा।....तुम उसके दरवाजे पर जाकर बैठो।....समझे नहीं?

बड़े सरकार दीवानखाने में आ गये और बेंगा को बोतल लाने का हुक्म दिया।

बड़े सरकार को बड़ी जल्दी मची थी। एक-एक क्षण एक-एक युग की तरह बीत रहा था, जैसे भीषण यातना मे जकड़ी उनकी आत्मा तड़प रही हो और जल्द-से-जल्द उससे मुक्त हो जाना चाहती हो; जैसे यह ख्याल भी कि वह बदमाश अभी तक जिन्दा है, उन्हें असह्य था। दीवानखाने की लम्बाई मे वह हाथ पीछे किये पिंजडे में बंद बाघ की तरह तेज कदमों से चक्कर लगा रहे थे और रह-रहकर एक चुस्की ले लेते थे। उनके जलते दिमाग में बस एक ही बात चक्कर लगा रही थी कि कब उस कुत्ते को दोजख रसीद करें।....एकाध बार यह भी ख्याल में आया कि क्यों न उस छिनाल को भी उसी के साथ....लेकिन यह बात जम न रही थी।....कल को शोर उठेगा कि बड़े सरकार ने

रानीजी को...रानीजी का एक यार था....

बेंगा ने दरवाजे पर खड़ा होकर कहा—महराजिन पूछ रही है कि बड़े सरकार का खाना....

—यहीं लाओ।

—बड़े सरकार, मेहमान का भी खाना...

—मेहमान तो चला गया।....तुम मेरा खाना लाकर यहाँ रख दो और छुट्टी मनाओ।

बेंगा को ताज्जुब हुआ, लेकिन उसका काम कुछ पूछना-आछना नहीं। उसने खाना लाकर रख दिया और पूछकर चला गया।

रंजन ने कपड़े बदलने की जरूरत महसूस की। चिक उठाकर बाहर निकलना ही चाहता था, कि खड़े होकर सौदागर ने कहा—आप कहीं नहीं जा सकते!

—क्यों?—आश्चर्य से रंजन ने पूछा।

—बड़े सरकार का हुकुम है।

रंजन का माथा ठनका। उसे अचानक चिट्ठियों की याद आयी। वह बोला—तो तुम्हीं मेरा सूटकेस ला दो। मुझे कपड़े बदलने हैं।

—मैं भी यहाँ से हिल नहीं सकता।

—क्यों?

—बड़े सरकार का ऐसा ही हुकुम है।

—तो तुम मेरे साथ चलो। मैं कपड़े निकाल लूँ।

—नहीं, आप चुपचाप बैठिए।

—क्या मतलब?

—मतलब-वतलब मैं कुछ नहीं जानता। बड़े सरकार का हुकुम बजाना मेरा काम है। आप चुपचाप बैठिए!—और उसने कोने में टिकायी गोजी सँभाली।

रंजन का चेहरा एक क्षण को फ़क पड़ गया। लेकिन दूसरे ही उसने मुस्कराकर कहा—हुँ!—और अन्दर चला गया। न रहा गया। वह उठकर टहलने लगा और इन्तजार करने

क्या होगा ? मौत के आगे भी कोई चीज है ? और अनायास उसे एक शेर याद आ गया। शेर और इश्क ! ये शेर न होते, तो आशिकों के जख्मी दिलों को कौन सहलाता; ये शेर न होते, तो वीराने में पड़े मुहब्बत के बीमारों से कौन बातें करता; ये शेर न होते, तो इश्क के मारों का क्या हाल होता, वे कैसे हँसते, कैसे रोते, कैसे जीते, कैसे मरते ? रंजन हमेशा उन शेरों का शुक्रगुजार रहा, जिन्होंने किसी भी हालत में उसका साथ न छोड़ा था, हमेशा उसे सहारा देते रहे। वह गुनगुनाने लगा :

नजअ में आयी नजर जुल्फ़े- स्याहफाम मुझे
यह भी अच्छा हुआ मंजिल पे हुई शाम मुझे

रंजन मर रहा है और पान अपने काले केश खोले उसपर झुकी है, वे रेशमी केश, जिनपर रंजन जान देता था ! यह जीवन-क्षितिज पर सन्ध्या की कालिमा नहीं, उसकी पान के केश लहरा रहे हैं, उन्हें देखते-देखते आँखें मूँदकर मौत की नींद सो जाने से बढ़कर भी क्या रंजन के लिए कुछ हो सकता है !

वह शेर गुनगुनाता रहा, आँखों में तस्वीरें उतारता रहा, टहलता रहा और जैसे एक नशे में झूमता रहा और इन्तजार करता रहा कि नींद आ जाये और वह सो जाय !....एक खटक, हाँ, एक खटक रह गयी; वे खत उसकी पान को रुसवा कर देंगे, उसने पान को क्यों न दे दिये ?... लेकिन अब चारा क्या है ? कुछ नहीं, कुछ नहीं, अब नींद आ जाये, वह सो जाये !....आह ! यह कैसी थकन है ! राह चलती है और मंजिल थकती है, पाँव चलते हैं और आराम थकता है !....अब नींद आ जाये, नींद आ जाये !....

पाँचवीं का चाँद डूब गया। रात हिमालय की चोटी पर खड़ी हो अपना आसमानी, सिमसिमा दुपट्टा धीमी-धीमी हवा में उड़ाकर सुखाने लगी। माँओं ने अपने गर्म आँचल फैलाकर बच्चों के सिर ढँक दिये। थिरकती हुई नींद आयी और झूमकर पलकों में समा गयी।

बड़े सरकार ने दरवाजे से झाँककर बाहर देखा, फिर ओसारे में

निकल आये और चारों ओर नजरें दौड़ायीं। सन्नाटा छा गया था। शबनमी, अँधेरी रात ने सब-कुछ ढँक दिया था। धीमी-धीमी हवा चल रही थी, जैसे कोई बच्चा साँस ले रहा हो। उन्होंने अंदर आकर दरवाज़ा बंद किया, फिर जंगलों को बंद किया, फिर एक बड़ा पेग ढालकर चढ़ाया, खाने की थाल को ठोकर मारी और अंदर हो गये। अपने कमरे में जा उन्होंने बन्दूक उठायी, उसे खोलकर दो एक नम्बर के टोटे भरे और रंजन के कमरे की ओर चले।

सौदागर से पूछा—सो गया कि जगा है?

सौदागर ने चिक उठाकर देखा, रंजन तखत के पास खड़ा दरवाजे की ओर देख रहा था। सौदागर ने संकेत किया।

बड़े सरकार बन्दूक सीधी कर अन्दर घुसे और दरवाजे पर खड़े होकर देखा। सामने नशीली पलके झुकाये मूरत की तरह रंजन खड़ा था...खंजन नयन रूप-रस माते!

—तुमने अपना नाम रंजन बताया था न?—बादल गरजा।

—जी,—जैसे शांत अथाह समुद्र के तल से आवाज आयी हो।

—पान से तुम्हारा क्या सम्बन्ध है?—बिजली कड़की।

खिंचे हुए नशीले होंठों में एक हरकत हुई और एक अमृत में डूबी मुस्कान फैल गयी, जहर का प्याला हाथ में लेते वक्त शायद सुकरात के होंठों पर यही मुस्कान थिरकी होगी, दार को गले लगाते समय मंसूर शायद ऐसे ही मुस्कराया होगा, यह शहादत की वह मुस्कान थी, जिसपर जीवन न्योछावर होता है और जिसे देखकर मृत्यु काँप जाती है। जीवन उस अमर, स्वर्गिक मुस्कान को दुनिया के ललाट पर चाँद और सूरज की तरह जड़ देता है और मृत्यु को डूब मरने के लिए कहीं चुल्लू-भर पानी नसीब नहीं होता।

—बोलो! चुप क्यों हो?

बन्दूक के सवाल का जवाब इन्सान क्या दे? दिल की बात गोली को क्या सुनाना? इसका जवाब वह खामोशी है, जिसके हजार जबानें हैं, जिसकी खामोश आवाज भी हर इन्सान के कान तक पहुँचती है,

उस दिल तक पहुँचती है, जिसकी मासूम धड़कनों से इसका पवित्रतम सम्बन्ध होता है।

रंजन का झुका सिर हिला, जैसे इधर की दुनिया उधर हो गयी हो।

उस खामोश बुत के सामने जड़ बन्दूक भी एक बार काँप गयी, लेकिन जालिम हाथ उठे और दोनों घोड़े दब गये।

गोलियाँ चीखीं और हंस भूमि पर गिर पड़ा। सफ़ेद लिबास शहादत के रंग में रंग गया। पंख फदफदाये और शांत हो गये।

बड़े सरकार ने बाहर आकर कहा—ले जा, दूर तालाब में खूब गहरे दफ़नाना और जल्द लौटना, कमरा साफ़ करना है और सूटकेस जलाना है।

बोरे में कसकर सौदागर ने पीठ पर लाद लिया और बाहर निकला। दूर से ही बोला—रतना, जल्दी फाटक खोल!

रतना ने खड़े होकर कहा—इतनी बेर को कहाँ जाना है, पहलवान? और इ पीठ पर का लादे हो?

—एक पागल सियार घुस आया था, मार डाला। तू जल्दी खोल!

—बगीचे के पनरोहे से घुस आया होगा, फाटक से तो नहीं आ सकता।

तभी पीछे से आकर बड़े सरकार बोले—क्या बक-बक लगा रखा है?

—कुछ नहीं, बड़े सरकार, पहलवान से कह रहा था कि दूर ले जाकर फेंकना, नहीं सड़ेगा, तो बड़ी बदबू फैलेगी।—और वह फाटक खोलने लगा।

*

—सौदागर!

—जी, बड़े सरकार।

—एक गिलास पानी पिला।

पंखा रखकर सौदागर ने पैर बढाया, तो लगा कि भहराकर गिर

पानी पीकर बड़े सरकार बोले—हवा बंद हो गयी है।

—जी, बड़े सरकार।

—बादल आ रहे हैं क्या ?

—नहीं तो, बड़े सरकार।

—बादल आयेंगे, बड़ी उमस है।

—जी, बड़े सरकार।

—कल खूब पानी बरसे, तो कैसा ?

—नहीं, बड़े सरकार, हमारा जलसा....

—जलसा अच्छी तरह हो जायगा ?

—काहे नहीं, बड़े सरकार, सब तैयारी हो गयी है। खूब सान से होगा।

—छोटे सरकार के अफ़सर बनने की खुशी में ?

—जी, बड़े सरकार।

—वह लड़ाई पर जा रहे हैं ?

—जी, बड़े सरकार।

—उन्हें कहीं कुछ हो गया, तो ?

—उन्हें कुछ नहीं होगा, बड़े सरकार। हम-सब की दुआएँ उनके साथ रहेंगी।

—तो फिर लौटेंगे ?

—जी, बड़े सरकार।

—फिर क्या होगा ?

—एक बहुत बड़ा जलसा होगा, बहुत बड़ा !

—सौदागर !

—जी, बड़े सरकार !

—तुम हो बुद्धू !

—जी, बड़े सरकार !

—जलसा नहीं होगा !

—फिर क्या होगा, बड़े सरकार ?

—छोटे सरकार की शादी।
—जी, बड़े सरकार, जी, बड़े सरकार ! मैं भूल गया था।
—फिर क्या होगा ?
—फिर.. एक और सरकार पैदा होंगे।
—नहीं !
—काहे, बड़े सरकार ?
—छोटे सरकार अपनी दुलहिन लेकर नौकरी पर चले जायेंगे।
—जी, बड़े सरकार। और वहाँ एक और सरकार पैदा होंगे।
—नहीं, एक अफ़सर पैदा होगा !
—वही, बड़े सरकार, वही।
—नहीं, सरकार और अफसर में फ़र्क है।
—जी, बड़े सरकार।
दिमाग़ सुलझता है, तो क्या बातें निकलती हैं !
—अफसर हमारी जमींदारी नहीं सँभाल सकता !
—जी, बड़े सरकार।
—फिर ?
—जो हुकुम हो, बड़े सरकार।
—न रहे बाँस, न बजे बाँसुरी, कैसा ?
—बहुत अच्छा, बड़े सरकार।
—सौदागर !
—जी, बड़े सरकार !
—तुम बहुत होशियार आदमी हो !
—जी, बड़े सरकार।
—बेंगा को बुला और तू सो रह। कितनी रात बाक़ी है ?
—भिनसार थप रहा है।
—रात कट गयी ?
—जी, बड़े सरकार।

१३

बड़े सरकार की तबीयत अचानक खराब हो गयी है, यह सुनकर सबका उत्साह ठंडा हो गया। वैद्यजी को खबर मिली, तो वह कोट के बटन उलटा-पलटा लगाते, सिर पर पगड़ी रख भागे-भागे आये। उन्हें बड़े सरकार की तबीयत खराब होने की उतनी परेशानी न थी, जितनी जलसा चौपट होने की। उन्होंने जवार के सभी गाँवों के कंगलों और अछूतों को भोज की खबर भेजवा दी थी। सच पूछा जाय, तो जलसे की और बातों से उन्हें कोई खास दिलचस्पी न थी, उन्हें चिन्ता अपने भोज की थी। इस तरह के कई भोजों के पुण्य वह लूट चुके थे। जब भी कोई ऐसा अवसर आता, तो दुम की तरह वह इस भोज को जरूर लटका देते थे। उनका यह पक्का विश्वास था कि कंगलों, भिखमंगों और अछूतों वग़ैरा को खिलाने से जितना पुण्य मिलता है, उतना और किसी को खिलाने से नहीं। जीवन-भर की अतृप्त आत्माएँ एक दिन तृप्ति-भर भोजन कर जो दुआएँ देती हैं, वह सीधे भगवान तक पहुँचती हैं। उनका यह भी दावा था कि वह न होते, तो यह भोज न होते, किसमें वह दम है, जो इन्तजाम कर सके। यह दावा सिर्फ़ उन्हीं का न था, लोग भी ऐसा ही कहते थे और कंगले तो बस उन्हीं की जान को दुआएँ देते थे। वह परसनेवाले हाथ देखते थे, सामान कहाँ से आये, उन्हें देखने की जरूरत न थी। आम खाने से मतलब कि पेड़ गिनने से?

वैद्यजी थुलथुले शरीर, गेहुँए रंग और बड़े सरकार के आस-पास की उम्र के थे। धोती और साफ़ा हमेशा किरमिजी रंग में रंगकर पहनते थे। इस रंग के दो फ़ायदे थे, एक तो यह कि कोई रंग

नहीं होता था, दूसरे यह कि चाहे जितना मैला और पुराना हो, हमेशा
नया-नया-सा ही लगता था। कोट वह सफ़ेद गाढ़े का बनवाते थे, गले
तक बराबर बटन लगाये रहते थे, बड़े जतन से रखते थे, सिर्फ़ बाहर
जाते समय पहनते थे। बनियाइन या कुर्ता वह कभी भी न पहनते थे,
घर पर सिर्फ धोती और जनेऊ में रहते। कभी कोई टोकता, तो वह
बड़े गर्व से कोट का इतिहास सुनाते। पहले पूछते, तुम्हारे ख्याल में यह
कोट कितने साल का होगा? आदमी क़यास करता, कोट की हालत
देखकर बहुत ढील छोड़कर कहता, तीन साल से कम का क्या होगा।
इस पर वैद्यजी हँसते और कहते, छै साल हो गये और कम-से-कम
साल और चलेगा, इसमें कोट की तारीफ़ की कोई बात नहीं, तारी
उस देह की है, जिस पर यह रहता है। उनके चमरौधे जूते का भी
यही हाल था। घर में वह खड़ाऊँ पहनते थे। सिर के बाल वह साल
में एक बार, संक्रान्ति के दिन, छिनवाते थे, दाढ़ी महीने में एक बार,
मूँछों का बहुत ख्याल रखते थे। उनकी झाबरदार मूँछें बड़ी ख़ूबसूरत
लगती थीं। चलते वह हमेशा बहुत तेज थे, ऐसे कि जैसे हमेशा बड़ी
जल्दी में रहते हों। रास्ते में रुककर किसी से बातें करना उन्हें बहुत
नापसन्द था।

ज़िन्दगी के उनके अपने तौर-तरीके थे। निस्संदेह वह धार्मिक
प्रवृत्ति के आदमी थे। शिव के वह भक्त थे। बहुत सवेरे उठते, लोटा-
धोती ले नगे पाँव पोखरे जाते। घाट पर पड़े पत्तों और दातून के चिट्ठों
को चुनकर साफ करते। फिर दोनों हाथों की अंजुली से पानी उदहकर
घाट की सीढ़ियाँ धोते। नहाकर धोती बदल, गीली धोती वैसे ही छोड़,
धतूरे या कनैल के फूल तोड़ते और पानी से धोकर हाथ में जल-भरा
लोटा ले मंदिर जाते। बड़े इतमीनान से पूजा करते, बम-बम बोलते,
ठ बजाते, घंटा बजाते और पेट, बाँहों, बाजुओं, छाती, गरदन, कानो
र ललाट पर पाँचो अँगुलियों से विभूति रमाकर बाहर निकलते।
वक्त वह बड़े ही गंभीर दिखायी देते, जैसे पवित्र
हों। सोमवार को वह प्रसाद

बेल-पत्र चढ़ाते । और पांच पत्तों वाले बेल-पत्र की तलाश में कभी-कभी दिन-दिन-भर घूमा करते । मिल जाने पर उन्हें ऐसा लगता, जैसे आठों सिद्धि और नवो निधि मिल गयीं । फिर क्या कहने । पांच हज़ार पांच बेल-पत्र गिने जा रहे हैं । ढेर-सा चंदन घिसकर, कटोरे में रख, वह बड़े इतमीनान से नहा-धोकर, पवित्र होकर ओसारे में बैठते और हर पत्ते पर, बेल की डण्ठल की कलम बना, चंदन से वह ओम शिवः लिखते । फिर बड़े थाल में एक-एक पत्ता सजाते । और सबके ऊपर वह पांच पत्तोंवाले बेल-पत्र को ऐसे रखते, जैसे वह ताज हो । और घूमधाम से मंदिर जाते । रास्ते में जो भी मिलता, उससे कहते—मिल गया, शिवजी की कृपा है, ओम शिवः !

ललाट की विभूति की वह चौबीसों घंटे रक्षा करते । बड़ी शोभा पाती वह विभूति !

कंजूस वह मशहूर थे । लोगों का कहना था कि काफ़ी धन उन्होंने इकट्ठा कर रखा है । कभी कोई चीज उन्हें अपने हाथ से ख़रीदते नहीं देखा गया । ग़रीबों को दवा मुफ़्त देते थे, लेकिन गरीबों का यह कहना था कि दाम से अधिक के वह सामान ले लेते थे । जब जिस चीज की जरूरत उन्हें पड़ती, वह बेखटके मांग लाते थे । कोई उन्हें इनकार न करता था । वह ऐसा अवसर देखकर ही मांगते थे । जैसे मान लीजिए, उन्हें तरकारी की जरूरत है । तो वह तरकारी तोड़ते वक्त सीधे अपने किसी मरीज के खेत हो पहुँचते । और उसका हाल-चाल पूछ और अपनी ओर से उसे इतमीनान दिला कहते—तरोई तो बहुत अच्छी मालूम देती है । वैद्याइन कई दिन से तरोई-तरोई की रट लगाये हुई हैं।—और फिर कौन कैसे इनकार करे ?

उनके तीन लड़के और दो लड़कियां थी । दोनों लड़कियों की शादी हो चुकी थी । और एक बार की ससुराल गयी बेचारियों ने फिर मैके का मुँह न देखा । वैद्यजी का यह सिद्धान्त था कि न लड़कियों को बुलाओ, न बहुओं को विदा करो । बार-बार यह विदाई की झंझट क्यों की जाय ? जो जिसका घर है, वहीं रहे, बसे-बसाये । यहाँ-वहाँ दो-दो

नहीं होता था, दूसरे यह कि चाहे जितना मैला और पुराना हो, हमेशा नया-नया-सा ही लगता था। कोट वह सफ़ेद गाढ़े का बनवाते थे, गले तक बराबर बटन लगाये रहते थे, बड़े जतन से रखते थे, सिर्फ़ बाहर जाते समय पहनते थे। बनियाइन या कुर्ता वह कभी भी न पहनते थे, घर पर सिर्फ़ धोती और जनेऊ में रहते। कभी कोई टोकता, तो वह बड़े गर्व से कोट का इतिहास सुनाते। पहले पूछते, तुम्हारे ख्याल में यह कोट कितने साल का होगा? आदमी क़यास करता, कोट की हालत देखकर बहुत ढील छोड़कर कहता, तीन साल से कम का क्या होगा। इस पर वैद्यजी हँसते और कहते, छै साल हो गये और कम-से-कम दो साल और चलेगा, इसमें कोट की तारीफ़ की कोई बात नहीं, तारीफ़ उस देह की है, जिस पर वह रहता है। उनके चमरुधे जूते का भी यही हाल था। घर में वह खड़ाऊँ पहनते थे। सिर के बाल वह साल में एक बार, सक्रान्ति के दिन, छिलवाते थे, दाढ़ी महीने में एक बार, मूँछों का बहुत ख्याल रखते थे। उनकी झाबरदार मूँछें बड़ी ख़ूबसूरत लगती थीं। चलते वह हमेशा बहुत तेज थे, ऐसे कि जैसे हमेशा बड़ी जल्दी में रहते हों। रास्ते में रुककर किसी से बातें करना उन्हें बहुत नापसन्द था।

ज़िन्दगी के उनके अपने तौर-तरीके थे। निस्संदेह वह धार्मिक प्रवृत्ति के आदमी थे। शिव के वह भक्त थे। बहुत सवेरे उठते, लोटा-धोती ले नंगे पाँव पोखरे जाते। घाट पर पड़े पत्तों और दातून के चिट्ठों को चुनकर साफ़ करते। फिर दोनों हाथों की अंजुली से पानी उदहकर घाट की सीढ़ियाँ धोते। नहाकर धोती बदल, गीली धोती वैसे ही छोड़, धतूरे या कनेल के फूल तोड़ते और पानी से धोकर हाथ में जल-भरा लोटा ले मंदिर जाते। बड़े इतमीनान से पूजा करते, बम-बम बोलते, होठ बजाते, घंटा बजाते और पेट, बाँहों, बाजुओं, छाती, गरदन, कानों और ललाट पर पाँचों अँगुलियों से विभूति रमाकर बाहर निकलते। उस वक्त वह बड़े ही गंभीर दिखायी देते, जैसे पवित्रता और भक्ति के हों। सोमवार को वह प्रसाद भी बाँटते। मलमास में वह चोरों

बेल-पत्र चढ़ाते। और पांच पत्तों वाले बेल-पत्र की तलाश में कभी-कभी दिन-दिन-भर घूमा करते। मिल जाने पर उन्हें ऐसा लगता, जैसे आठों सिद्धि और नवो निधि मिल गयी। फिर क्या कहने। पांच हज़ार पांच बेल-पत्र गिने जा रहे हैं। ढेर-सा चंदन घिसकर, कटोरे मे रख, वह बड़े इतमीनान से नहा-धोकर, पवित्र होकर ओसारे में बैठते और हर पत्ते पर, बेल की डण्ठल की कलम बना, चंदन से वह ओम शिवः लिखते। फिर बड़े थाल में एक-एक पत्ता सजाते। और सबके ऊपर वह पांच पत्तोंवाले बेल-पत्र को ऐसे रखते, जैसे वह ताज हो। और धूमधाम से मंदिर जाते। रास्ते मे जो भी मिलता, उससे कहते—मिल गया, शिवजी की कृपा है, ओम शिवः !

ललाट की विभूति की वह चौबीसों घंटे रक्षा करते। बड़ी शोभा पाती वह विभूति !

कंजूस वह मशहूर थे। लोगों का कहना था कि काफ़ी धन उन्होंने इकट्ठा कर रखा है। कभी कोई चीज़ उन्हें अपने हाथ से ख़रीदते नही देखा गया। ग़रीबों को दवा मुफ़्त देते थे, लेकिन ग़रीबों का यह कहना था कि दाम से अधिक के वह सामान ले लेते थे। जब जिस चीज़ की जरूरत उन्हे पड़ती, वह बेखटके मांग लाते थे। कोई उन्हें इनकार न करता था। वह ऐसा अवसर देखकर ही मांगते थे। जैसे मान लीजिए, उन्हे तरकारी की जरूरत है। तो वह तरकारी तोड़ते वक्त सीधे अपने किसी मरीज़ के खेत ही पहुँचते। और उसका हाल-चाल पूछ और अपनी ओर से उसे इतमीनान दिला कहते—तरोई तो बहुत अच्छी मालूम देती है। वैद्याइन कई दिन से तरोई-तरोई की रट लगाये हुई हैं।—और फिर कौन कैसे इनकार करे ?

उनके तीन लड़के और दो लड़कियां थी। दोनों लड़कियों की शादी हो चुकी थी। और एक बार की ससुराल गयी बेचारियों ने फिर मैके का मुँह न देखा। वैद्यजी का यह सिद्धान्त था कि न लड़कियों को बुलाओ, न बहुओ को विदा करो। बार-बार यह विदाई की झंझट क्यों की जाय ? जो जिसका घर है, वहीं रहे, बसे-बसाये। यहाँ-वहाँ दो-दो

जगहों का सम्बन्ध बनाये रखने से मन दोचित रहता है, यह ठीक नहीं है। वैद्याइन बेचारी लड़कियों से मिलने के लिए तड़पती रहतीं, लेकिन वैद्यजी पर इसका कोई असर न पड़ता। बड़ा लड़का दूर एक प्राइमरी स्कूल मे मास्टर था। वही वह अपने बाल-बच्चों के साथ रहता था। छुट्टियों मे आता, तो घर उसका चूल्हा अलग जलता। मँझला लड़का पटवारी था। उसने करीब-करीब अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था। वह कभी न आता। हाँ, वैद्यजी को, जब-कभी वह छोटी बहू से लड़तीं, उसके यहाँ भेज देते। छोटे लड़के को वह अपने पास रखे हुए थे, और उसे ही अपनी विरासत सौंपने वाले थे। उसे वह वैद्यकी सिखा रहे थे।

वैद्यजी का घर साधारण मिट्टी और खपरैल का था। बाहर का एक छोटा-सा कमरा उनका औषधालय था। ओसारे में हमेशा कोई-न-कोई चीज कुटती-पिसती रहती थी। कूटने-पीसने वाले ज्यादातर पास-पड़ोस के लड़के या दवा लेने आने वाले मर्द-औरत होते। वैद्यजी बड़ी आसानी से उनसे यह काम करा लेते। लड़कों में उनके खट्टे-मीठे-नमकीन चूरण का किसी मिठाई से कम मान न था। बाहर सहन में बारहो महीने एक छोटी-सी चौकी पर रंग-बिरंगी बोतलें और करावे पड़े रहते यह चौकी ही वैद्यजी का साइनबोर्ड थी। लोग अचरज से उन बोतलं और करावों की ओर देखते, जिनके बारे में वैद्यजी अद्भुत कहानियाँ सुनाया करते।

वैद्यजी जैसे शिवभक्त थे, वैसे ही राजभक्त भी। वह अपना घराना राजवैद्यों के घराने से जोड़ते और यह भी कहते कि बड़े सरकार का घराना राजाओं का घराना है। जमाने की गर्दिश को क्या कहिए कि राजा आज बड़े सरकार होकर रह गये हैं, और राजवैद्य वैद्यजी। वह बड़े सरकार के विरुद्ध एक बात भी सुनना बरदाश्त न कर सकते थे, यह लोग अच्छी तरह जानते थे। और इस माने में वह बड़े सरकार का वही काम करते थे, जो उस समय के मिशनरी अस्पताल हमारे अंग्रेज सरकार के लिए करते थे। उनका कहना था कि बड़े सरकार

हैं, उनके खिलाफ़ युद्ध करने-कहने से बड़ा कोई अधर्म नहीं।

क़स्बे में जब डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का अस्पताल खुलने लगा, तो वैद्यजी ने पूरी सरगनाई के वैदों और हकीमों को इकट्ठा करके विरोध की आवाज़ उठायी। लेकिन जब उसका कोई नतीजा न हुआ और अस्पताल की शानदार इमारत बन गयी और एक दिन वह खुल भी गया, तो वैद्यजी ने यही कहकर सब्र कर लिया, कि जो अस्पताल की दवाई खायगा, उसका धरम नसा जायगा। और थोड़े ही दिनों में जब वह अस्पताल और उसका डाक्टर बदनाम हो गये कि वहाँ तो सिर्फ पैसे वालों की पूछ है, गरीबों को तो शीशियों में लाल पानी भरकर देते हैं, तो वैद्यजी ने आराम की साँस ली और कहा—अधरम की नाव दूर तक नहीं चलती। यह विलायत नहीं, हिन्दुस्तान है। वैद्यकी हमारा धर्म है, व्यापार नहीं।

*

बेंगा ने बड़े सरकार की आज्ञा ले वैद्यजी को अन्दर पहुँचाया।

ओसारे में निखहरे फ़र्श पर सौदागर भैंस की तरह गहरी नींद में सो रहा था। अन्दर के कमरे में पलंग पर बड़े सरकार शान्त पड़े-पड़े छत की कड़ियाँ गिन रहे थे। सिरहाने खड़ा बेंगा पंखा झल रहा था।

वैद्यजी ने देखा, तो सन्न रह गये। एक ही रात में बड़े सरकार क्या-से-क्या हो गये थे। चेहरे की जैसे रौनक ही जाती रही थी, झुर्रियाँ इस तरह प्रगट हो गयी थीं, जैसे उन पर से कोई पर्दा उठा दिया गया हो। आँखों के गिर्द हलके बहुत ही स्याह और गहरे हो गये थे और उनकी नजरों से चमक और रोब गायब होकर एक चिन्ता और सदमा और दबा हुआ-सा गुस्सा साफ़ झलक रहा था। और सबके ऊपर वह शान्ति छाई हुई थी, जिसे देखकर ऐसा लगता था कि अभी बड़े सरकार बाघ की तरह उछलकर किसी को फाड़ डालेंगे।

एक कुर्सी खींचकर वैद्यजी ने चिन्ता प्रगट करते हुए, हाथ बढ़ाकर कहा—कैसी तबीयत है? जरा हाथ तो दीजिए!

बड़े सरकार ने हाथ देते हुए कहा—रात-भर नींद नहीं आयी। बड़ी बेचैनी रही।

नब्ज पर अँगुलियाँ रखे वैद्यजी ने कहा—सो तो देख ही रहा हूँ।...आपने रात खबर क्यों न दी, एक पुड़िया दे देता और बड़े सरकार घोड़ा बेंचकर सो जाते।....मालूम होता है, बड़े सरकार ने कुछ जियादा....

—हाँ, मैंने समझा, बेचैनी का इलाज होगा, मगर असर उलटा हुआ।

—सो तो होगा ही। यह वह चीज है, जो दवा की तरह पियें, तो अमृत का काम करे, नहीं तो जहर है, जहर और, बड़े सरकार, उम्र का भी एक असर होता है,...मतलब कि अब वह जमाना न रहा कि बड़े सरकार....यानी कि भले ही बड़े सरकार का स्वास्थ्य बहुत ही अच्छा है, फिर भी....फिर भी परहेज तो लाजमी चीज है।...यह तो मेरी औषधियों का प्रभाव है कि बड़े सरकार पर आयु का प्रभाव पड़ता ही नहीं। कोई देखकर थोड़े ही बता सकता है कि बड़े सरकार....मैंने कितनी बार बड़े सरकार से कहा, कि हुक्म हो तो मैं ऐसा द्राक्षासव तैयार कर दूँ, कि बड़े सरकार चाहे बोतलों पी जायँ, कोई नुकसान न हो। यह विलायती चीजें, बड़े सरकार चाहे जो कहें, स्वास्थ्य के लिए अच्छी नहीं होतीं।....खैर, कोई बात नहीं है, थकान है। मेरी राय में बड़े सरकार उठें और नहा-धोकर आराम से लेटें। मैं दवा ले आता हूँ, वह आराम की नींद आयगी कि शाम तक बिल्कुल तरोताजा हो जायेंगे।....कहीं ऐसा न हो कि जलसा....

बड़े सरकार के स्याह-से पड़े होठों पर फीकी मुस्कान आ गयी। बोले—जलसे को क्या होना है, एक मेरे...

—यह आप क्या कहते हैं, बड़े सरकार! आपका जी अच्छा न हुआ, तो....

तभी पुजारीजी चरणामृत का पात्र लिये आ पहुँचे। आज बहुत पूजा हो गयी थी। आज की पूजा विशेष रूप से बड़े सरकार के

—नहीं, यह मेरी इज्जत का सवाल है। सबको दावत दे दी गयी है। सब इन्तज़ाम हो गया है।

—लेकिन मुझे अच्छा नहीं लगता। आपकी तबीयत ख़राब है...

—उसकी तुम फ़िक्र न करो।

—डाक्टर को बुलवाऊँ?

—नहीं। दवा की कोई ज़रूरत नहीं है। होगी तो वैद्यजी हैं। वह मेरे मिज़ाज से वाक़िफ़ है। उनकी दवा हमेशा फ़ायदा करती है।...हाँ, तुम कब जाओगे?

—मुझे शुक्रवार को चल देना चाहिए।

—माताजी से बात हुई थी?

—उन्हें मैं मना लूँगा।

—मना लोगे?....मेरा तो ख्याल था कि वह न जाने देंगी। इस बात को लेकर मुझसे कई बार झगड़ा हो चुका है।

—मान जायेंगी।

—हाँ, उन्हें मना कर जाना।...अब तुम जाओ, मैं आराम करूँगा।

ललन जाने लगा, तो बड़े सरकार ने उसकी पीठ को घूरकर देखा।

बडे सरकार नहा-धो चुके, तो बेंगा ने बिस्तर बदलकर कहा—जलपान लाऊँ, बड़े सरकार?

पलंग पर बैठते हुए बड़े सरकार बोले—नहीं, बोतल ला।

बेंगा जरा ठिठका, तो वह बोले—मुँह क्या ताकता है? जल्दी ला!

कई बडे पेग जमाकर बड़े सरकार लेटे, तो अचानक उनको एक आध्यात्मिक दौरा पड़ गया। वह राजा भर्तृहरि की तरह एक ही दिशा में सोचने लगे, यह औरत जाति कितनी बेवफ़ा और चालाक होती है!....और उनको अचानक ऐसा लगा कि उनका मन जैसे संसार से र गया है। और फिर एक ऐसी लहर उठी, कि मन में आया, इस

कपटी संसार का त्याग कर देना चाहिए। साधू बनकर [जीवन बिताना तो मुश्किल है, आत्महत्या क्यों न कर ली जाय, संसार में अपना कहने को अब कौन रह गया! और उन्हें अपने कुल की आख़िरी कड़ी रानी माँ की याद आ गयी। और वह एक बच्चे की तरह बिलख-बिलखकर रो पड़े।

सिरहाने खड़ा पंखा झलता बेंगा बड़े पसोपेश में पड़ गया, यह बड़े सरकार को क्या हो गया? और फिर उसकी बुद्धि ने अपनी पहुँच के मुताबिक यह सोचकर संतोष कर लिया कि मालूम देता है कि जियादे नशे की वजह से बड़े सरकार का भेजा...

बड़े सरकार को रानी माँ की याद पहले कभी आयी हो, नहीं कहा जा सकता। जब से बड़े सरकार का राज हुआ था, विधवा रानी माँ एक बेकार सामान की तरह एक बेकार कोने में डाल दी गयी थीं। लेकिन आज उन आध्यात्मिक क्षणों में वह ऐसे याद आयीं, जैसे वह देवी हों, और मरकर भी अपने आशीर्वादों की वर्षा करती रही हों। बड़े सरकार को उनके प्रति अपनी उपेक्षा ऐसे सालने लगी कि वह रोने लगे। रोते-ही-रोते उन्हें बहुत-सी बातें याद आने लगीं। रानी माँ से वह बिलकुल ही नहीं बोलते थे, जैसे उन्हें फ़ुरसत ही न मिलती हो। लेकिन जब भी वह उनके सामने पड़ जाते, वह एकाध बात ज़रूर पूछ लेतीं। पहले वह पूछा करती थीं, बेटा, तू ब्याह कब करेगा? एक साध तेरी बहू देखने की रह गयी है, देख लेती, तो चैन से मर जाती।.... फिर जब बड़े सरकार का ब्याह हो गया, तो कहने लगीं, बेटा, मेरी सब साधें पूरी हो गयीं, बस, अब एक पोते को दिखा दे, अपनी गोद में खेलाकर सुख से मर जाऊँगी! ....भगवान ने आख़िर वह दिन भी दिखाया। वह खुशी बरसाती बूढ़ी आँखें और उछाह-भरा पोपला मुँह! गोद में पोता क्या था, जैसे बच्चे के हाथों में उसका मनचाहा खिलौना आ गया हो। बड़े सरकार को जब उस खुशी-भरे मुखड़े की याद आयी, तो जैसे दिल पर साँप लोट गया। उनका जी हुआ कि ज़ोरों से चीख़-चीख़कर कहें, माँ! माँ! वह तेरा पोता न था!....लेकिन उन

आध्यात्मिक क्षणों में वह अन्तरमुखी हो गये थे । उनकी आत्मा चीख रही थी, लेकिन होंठों पर केवल रुदन का कम्पन था ।....और फिर अचानक उनके मन में ऐसा आया कि काश, वह भी रानी माँ की ही तरह जीवन-भर उस सत्य से अनभिज्ञ रहते ! एक अपना समझने को तो रहता । और वह मन-ही-मन में बोल पड़े, माँ ! तू अपने पन पक्की थी । अच्छा हुआ कि तू अपनी आखिरी साध को छाती से चिपकाये, आँखों से देखती, खुश-खुश चली गयी । लेकिन मैं....मैं क्या करूँ, माँ ? मेरा तो कोई भी अपना न रह गया । फुलवारी में रहने वाले की अचानक आज आँख खुली, तो उसे मालूम हुआ वह रेगिस्तान में पड़ा है । माँ ! माँ !

और बड़े सरकार और भी जोर से रो पड़े । लल्लनजी के जन्म के छः महीने बाद ही तो रानी माँ चल बसी थीं । एक दिन पूजा करके लल्लन को गोद में लिये वह मन्दिर से निकल रही थीं, कि चौखट से ठोकर लगी और वह उसी क्षण सेल्ह गयी । जिसने सुना, कहा, वाह ! वाह ! मौत हो तो ऐसी ! पुण्य कमाया था रानी माँ ने ! सीधे सरग गयी होंगी रानी माँ ! ऐसी शुभ मृत्यु पर शोक मनाना किसी प्रकार भी शोभनीय न था । चारों ओर जो वाह-वाह हो रही थी, जैसे उसमें बेटा होने के नाते बड़े सरकार का भी हिस्सा था । और बड़े सरकार ने दिल खोलकर उनका ऐसा श्राद्ध किया कि उसकी कहानी आज भी बूढ़ों के मुँह पर है । पूरे चौरासी गाँवों को न्योता खिलाया गया । सात दिनों तक भण्डारा चलता रहा । कोई पकवान या मिठाई ऐसी नहीं, जो न बनी हो । लोगों ने खाया भी और पत्तल बाँध-बाँधकर घर भी ले गये । सभी ब्राह्मणों और महाब्राह्मणों को पूरी-पूरी गिरस्ती के सामान दान दिये गये ।....और बड़े सरकार अचानक एक गर्व से मुस्करा पड़े ! आध्यात्मिक क्षणों की कुछ खूबी ही ऐसी होती है ! खने में रोना, खने में हँसना ! गम क्या और खुशी क्या ? विदेह पर जैसे सब ऊपर-ऊपर ही बह जाय, एक रोआं भी न भींगे ।....और फिर अचानक ही वह रो पड़े और बुदबुदा भी लगे, माँ ! मेरे मुँह को कौन आग देगा,

कौन मेरा श्राद्ध करेगा ?...बड़ी देर तक वह रोते रहे और जवाब ढूंढ़ने की कोशिश करते रहे। कितनों ने ही जवाब में सिर उठाया। अँगुलियों पर वह कहाँ तक गिन सकते थे ! और होते-होते उन्हें मुँदरी की याद आयी और फिर सुनरी की ! और वह फिर मुस्कराने लगे।

बेचारा बैंगा अजीब संकट में ! इतने दिनों की चाकरी में उसने बड़े सरकार को इस रूप में कभी भी न देखा था। उसे लगा कि बड़े सरकार कहीं पागल तो नहीं हो रहे। नशे में तो अनगिनती बार उसने उन्हें देखा था, लेकिन ऐसा हाल तो उनका कभी भी न हुआ था। क्या करे ? दरवाज़ा बन्द था और वह हटे कैसे ?

बेचारे वैद्यजी दवा हाथ में लिये बाहर ओसारे में तख़्त पर बैठे दरवाजा खुलने का इन्तजार कर रहे थे।

और बड़े सरकार अपने आध्यात्मिक दौरे में पड़े यह नेक इरादा कर रहे थे कि अपना सब-कुछ सुनरी के नाम लिख दें, तो कैसा रहे ? दुनिया भी क्या याद रखेगी कि एक था ज़मींदार, जिसने लौंडी को रानी बना दिया ! रानी....और बड़े सरकार फिर रो पड़े। नहीं, नहीं, सुनरी की माँ मुँदरी को वह हरगिज रानी नहीं बनायेंगे ! वह नमक-हराम ! उसी की तो यह सब कारस्तानी है ! और वह ख़ौफ़नाक औरत.... और बड़े सरकार को अचानक शक हो आया कि क्या सुनरी उनकी बेटी है भी ?....और उनका चेहरा गुस्से से लाल हो उठा। उनके जी में आया कि मुँदरी को कच्चे चबा जायँ। इस कमबख्त नाचीज लौंडी ने क्या-क्या नाच न नचाया !....इन आध्यात्मिक क्षणों में भी कितनी अद्‌भुत शक्ति होती है ! क्षणों में ये वर्षों को नापते हैं, बल्कि सारी जिन्दगी को सामने ला रखते हैं, जैसे मृत्यु के चन्द क्षण हों, जो जिन्दगी और मौत को साथ-साथ, रू-ब-रू देखते हों ! जी हाँ, ये ब्रह्म के क्षण होते हैं, और जिनपर ये चढ़ते हैं, उन्हें ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त हो जाता है !

और बड़े सरकार ने उठकर एक पेग और चढ़ा लिया, जैसे वह दौरा एक बड़े ही खतरनाक दौर से गुज़र रहा हो, और उसका मुक़ाबिला करने के लिए अतिरिक्त शक्ति की आवश्यकता हो।

और अचानक बड़े सरकार बड़े ही उदार और गुणग्राही बन गये। पुरखों का रजपूती खून उनकी रगों में हिलोरे लेने लगा। उनके जी में आया कि मुंदरी को माफ़ कर दिया जाय, बल्कि उसकी प्रशंसा की जाय कि उसने, सिर्फ़ उसने मुझे हरा दिया, मुझसे पानी भरवा दिया। वह बहादुर क्या, जो बहादुर दुश्मन की प्रशंसा न करे! उन्हें बड़ा पछतावा हुआ कि यह नेक ख्याल पहले उनके दिल में क्यों न उठा? और फिर तो प्रायश्चितों और आत्मस्वीकृतियों का एक सिलसिला ही उनके दिलोदिमाग़ में बँध गया।...ये आध्यात्मिक क्षण इन्सान को किस प्रकार पिघला देते है! जी, हाँ, ये इन्सान के सामने एक जादुई आईना रख देते हैं, जिसमें उसकी सारी जिन्दगी का अक्स रहता है, यह दूसरी बात है कि उसे और कोई नहीं देख सकता, और न किसी को दिखाया ही जा सकता है, और एक तीसरी बात भी हो सकती है, वह यह कि अगर उसका कोई अंश कोई दूसरा देखता भी है, तो उतना ही, जितना उसका हिस्सा उसमें होता है, और अंश तो सम्पूर्ण चित्र नहीं होता, और जो किसी ने पूर्ण चित्र न देखा, तो क्या देखा, देखना, न देखना बराबर। सम्पूर्ण चित्र तो आध्यात्मिक क्षणोंवाला ही देख सकता है!

जवानी भी क्या दीवानी होती है! और बड़े सरकार की जबान पर वे सब स्वाद ताजे हो उठे, जिन्हें उन्होंने चखा था। काफ़ी दिनों तक उन्होंने उन्हें गिना था, लेकिन फिर उन्होंने गिनना छोड़ दिया था, आखिर कोई कहाँ तक गिने! रेकार्ड रखने से फ़ायदा? यह वैसा ही था, जैसे आदमी पहले तो जितनी चिट्ठियाँ आती हैं, इकट्ठा करता जाता है, और कुछ दिनों के बाद जब वह देखता है कि यह तो ढेर लग गया और यह काम जारी रखा गया, तो एक दिन पूरा घर ही तैयार हो जायगा और फिर वह उन्हे जला देता है।

बड़े सरकार को पश्चात्ताप हुआ कि एक स्वाद रह गया और उन्हें ऐसा लगा कि सब फल खाकर भी एक फल न मिलने से वह अनखाये-से ही रह गये हों। अपने ही हाथों में रहकर, सैकड़ों बार होठों

तक आ-आकर भी वह टूट गया ।...क्या दी थी मुँदरी भी ! जैसे इतराया हुआ चाँद, जैसे भरी हुई शराब की बोतल, जैसे चढ़ी हुई नदी, जैसे खिंची हुई कमान ! नहीं, नहीं, कमबख्त अमृत का घड़ा थी, जिसका एक बूँद भी मिल जाय, तो आदमी अमर हो जाय ! लेकिन नहीं मिली, सो नहीं मिली ।...क्यों नहीं मिली ?....और बड़े सरकार को आज पहली बार अपने पर इतना गुस्सा आया, जितना पहले कभी न आया था !....एक आशा कि एक न-एक दिन....जायगी कहाँ ? उन्हें क्या मालूम था कि यह मृगजल है । वर्ना वह....लेकिन डर जो था कि जोर-जबरदस्ती करने से वह घड़ा टूट न जाय, अमृत बरबाद न हो जाय । ...सौन्दर्य और जवानी में कितनी शक्ति होती है ! और फिर उन्होंने वह भी कहाँ उठा रखा ।....एक दिन पागल होकर उन्होंने बन्दूक उठा भी ली । उन्होंने तै कर लिया था कि वह या तो उसे मार डालेंगे या....लेकिन कमबख्त ने कैसा ठहाका लगाया था, जैसे उनके हाथ मे एक तिनका भी न हो और बन्दूक काँपकर हाथ से गिर गयी थी । और उसी दिन उन्होंने मान लिया था कि वह हार गये । मौत को हथेली में लेकर खड़े रहने वाले को कौन जीत सकता है !....और उसके उन कमबख्त ठहाकों ने कैसे छका-छकाकर मुझे पामाल कर दिया, पस्त कर दिया, नामर्द बनाकर छोड़ दिया, और फिर कैसे वह नागिन की तरह लहरा-लहरा कर मुझे चिढ़ाने लगी, डराने और धमकाने लगी, जैसे मैं मर्द ही न रह गया होऊँ । ओफ़ !—और बड़े सरकार की गर्दन शर्म के मारे झुक गयी ।...जी, हाँ, इन आध्यात्मिक क्षणों में सब होता है, आदमी रोता है, हँसता है, गुस्सा होता है, उदार बनता है, माफ़ करता है, माफी माँगता है, पश्चात्ताप करता है, प्रायश्चित करता है, आत्म-प्रशंसा करता है, कृतघ्न होता है, कृतज्ञ करता है, गाली बकता है, अपने से स्वीकृतियाँ करता है, प्रार्थना करता है और गर्व भी करता है और स्वयं से सिर भी झुकाता है, वह वह-सब करता है, जो साधारण क्षणों में दूसरे के सामने हरगिज़ नहीं करता और सबके ऊपर वह कुछ बाँधता है ।

और दस साल बाद उसी मुँदरी ने एक दिन मोहनी मुस्कान होंठों पर लाकर बड़े सरकार को बताया था और हवेली-भर में शोर मचाया था कि उसे बड़े सरकार से गर्भ है। अचरज से बड़े सरकार ने उसे देखा था कि यह कैसे सम्भव है, लाठी-कपारे भेंट नहीं, बाप-बाप चिल्लाय! और फिर जैसे वह खुद भी मुस्करा उठे थे, मुँदरी ने जैसे उनके हाथ में एक ढाल थमा दी थी, जिससे वह सबसे अपनी रक्षा कर सकते थे। सबके सामने नंगा होने से एक के ही सामने नंगा रहना कितना अच्छा होता है! और आज जो सदयता, उदारता और गुण-ग्राहकता की लहर उनमें उठी थी, वह यों ही न थी। यह दूसरी बात है कि मुँदरी अब भी जब पागल होती है, तो उन्हें परेशान करने आ जाती है। उस वक्त बड़े सरकार की हालत क़रीब-क़रीब वही होती है, जो एक चूहे की नागिन के फन के पास होने पर!....और बड़े सरकार फिर तिलमिला उठे, नहीं, नहीं, उस हरामज़ादी को हम कभी भी माफ़ न करेंगे!...तो फिर क्या करेंगे? है कुछ करने का मुँह? और उसने जो किया, वह क्या ग़लत किया? उन्होंने उसके साथ जो अन्याय और अनाचार किया, उसका ठीक जवाब क्या यही नहीं था? वह पेंगा से कितना प्रेम करती थी! कहती थी, उससे ब्याह करा दीजिए, नाम से उसकी रहूँगी, काम से आपकी। लेकिन मैं न माना। मान जाता, तो शायद यह नौबत न आती। पेंगा को पीटकर भगा देना नागिन को उसके जोड़े से अलग कर देने की तरह हुआ। उसने मुझे डँस लिया, तो क्या अस्वाभाविक या ग़लत हुआ? उसका फन कुचलने की ताकत मुझमें न थी।...हमारी ताकत ...हमारी ताकत महज़ हवा पर टिकी है। उसे इसका राज़ शायद मालूम था....और बड़े सरकार एक बेबसी की हँसी हँस पड़े।...और फिर उनका दिल फैलता-फैलता इतना बड़ा हो गया कि उन्हें लगा कि वह सबको माफ कर सकते हैं, मुँदरी को भी, रानीजी को भी, लल्लन को भी, यहाँ तक कि वह रंजन को भी माफ़ करने को तैयार हो गये। (रंजन को उन्होंने मार ज़रूर डाला था, लेकिन अभी तक

उसे माफ थोड़े ही किया था !)....बेचारे रंजन का भी इसमें क्या दोष था ? वह पान से प्रेम करता था, पान उससे प्रेम करती थी। दोनों मिले, तो उसमें कौन-सा गुनाह हो गया ? गुनाह तो मैंने किया, जो उनके बीच मूसलचन्द बनकर आ बैठा। बेचारा कितना प्यारा, कितना मासूम और कितना बहादुर जवान था ! छाती खोलकर गोली झेल गया और उफ़ तक न की ! वाह ! वाह ! जवान हो तो ऐसा, प्रेम करे तो ऐसा ! उसका तो स्मारक बनना चाहिए, उसकी तो पूजा होनी चाहिए ! उस पर तो नाटक और उपन्यास लिखना चाहिए। मजनूँ-फरहाद का उसे पद मिलना चाहिए !...और मैंने उसे मार डाला। भगवान मुझे कभी भी माफ न करेंगे।....और बड़े सरकार फिर रोने लगे।.... ये आध्यात्मिक क्षण आदमी को कैसे-कैसे झूले झुलाते हैं ! कभी हिमालय की चोटी पर ले जाकर बैठा देते हैं, तो कभी सागर के तल में डुबो देते हैं। उसके ख्याल कभी उड़कर आसमान छूते हैं, तो कभी घायल पक्षी की तरह ज़मीन पर पड़े पंख फड़फड़ाते है।....और बड़े सरकार की आत्मा आचानक चीख उठी, मैंने माफ़ किया ! सबको माफ़ किया ! अरे, इस ज़िन्दगी में क्या धरा है, माटी का लोना, ज़रा-सा पानी और गल जाय; पानी का बुलबुला छन में गायब। झूठा है रोब, झूठी है इज्जत। क्या धरा है इसमें ! दो दिन की ज़िन्दगी और यह तूफान बदतमीज़ी ! क्या अहमकपन है ! अरे, बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेय, जो बन आये सहज में ताही में चित देय।....और बड़े सरकार खीं-खीं हँस पड़े। और फिर उन्हें बड़ी ज़ोर की एक छींक आ गयी। सारी मूँछ पर सफ़ेद-सफ़ेद कण फैल गये।

बेंगा ने तौलिया उठाकर बढ़ाया, तो बड़े सरकार ने उसकी ओर ऐसे देखा, जैसे बीमार बच्चा अपने बाप की ओर देखता है। बेंगा ने खुद पोंछ दिया। और कहा—जलपान नहीं किया, शायद खराई हो गयी।

तब वे आध्यात्मिक क्षण अचानक पारे की तरह बिल्कुल चोटी पर पहुँच गये। बड़े सरकार विह्वल हो उठे। आँखों में आँसू भरकर, बेंगा का हाथ पकड़कर वह बोले—बेंगा, तुम मेरे माई-बाप हो ! मैं तुम्हारा

और दस साल बाद उसी मुँदरी ने एक दिन मोहनी मुस्कान होंठों पर लाकर बड़े सरकार को बताया था और हवेली-भर में शोर मचाया था कि उसे बड़े सरकार से गर्भ है। अचरज से बड़े सरकार ने उसे देखा था कि यह कैसे सम्भव है, लाठी-कपारे भेंट नहीं, बाप-बाप चिल्लाय! और फिर जैसे यह खुद भी मुस्करा उठे थे, मुँदरी ने जैसे उनके हाथ में एक ढाल थमा दी थी, जिससे वह सबसे अपनी रक्षा कर सकते थे। सबके सामने नंगा होने से एक के ही सामने नंगा रहना कितना अच्छा होता है! और आज जो सदयता, उदारता और गुण-ग्राहकता की लहर उनमें उठी थी, वह यों ही न थी। यह दूसरी बात है कि मुँदरी अब भी जब पागल होती है, तो उन्हें परेशान करने आ जाती है। उस वक्त बड़े सरकार की हालत करीब-करीब वही होती है, जो एक चूहे की नागिन के फन के पास होने पर!...और बड़े सरकार फिर तिलमिला उठे, नहीं, नहीं, उस हरामजादी को हम कभी भी माफ़ न करेंगे!...तो फिर क्या करेंगे? है कुछ करने का मुँह? और उसने जो किया, वह क्या गलत किया? उन्होंने उसके साथ जो अन्याय और अनाचार किया, उसका ठीक जवाब क्या यही नहीं था? वह पेंगा से कितना प्रेम करती थी! कहती थी, उससे ब्याह करा दीजिए, नाम से उसकी रहूँगी, काम से आपकी। लेकिन मैं न माना। मान जाता, तो शायद यह नौबत न आती। पेंगा को पीटकर भगा देना नागिन को उसके जोड़े से अलग कर देने की तरह हुआ। उसने मुझे डँस लिया, तो क्या अस्वाभाविक या गलत हुआ? उसका फन कुचलने की ताकत मुझमें न थी।...हमारी ताकत ...हमारी ताकत महज हवा पर टिकी है। उसे इसका राज शायद मालूम था।...और बड़े सरकार एक बेबसी की हँसी हँस पड़े।...और फिर उनका दिल फैलता-फैलता इतना बड़ा हो गया कि उन्हें लगा कि वह सबको माफ़ कर सकते हैं, मुँदरी को भी, रानीजी को भी, लल्लन को भी, यहाँ तक कि वह रंजन को भी माफ़ करने को तैयार गये। (रंजन को उन्होंने मार जरूर डाला था, लेकिन अभी तक

उसे माफ थोड़े ही किया था !)...बेचारे रंजन का भी इसमें क्या दोष था ? वह पान से प्रेम करता था, पान उससे प्रेम करती थी ! दोनों मिले, तो उसमें कौन-सा गुनाह हो गया ? गुनाह तो मैंने किया, जो उनके बीच मूसलचन्द बनकर आ बैठा । बेचारा कितना प्यारा, कितना मासूम और कितना बहादुर जवान था ! छाती खोलकर गोली झेल गया और उफ तक न की ! वाह ! वाह ! जवान हो तो ऐसा, प्रेम करे तो ऐसा ! उसका तो स्मारक बनना चाहिए, उसकी तो पूजा होनी चाहिए ! उस पर तो नाटक और उपन्यास लिखना चाहिए । मजनूँ-फरहाद का उसे पद मिलना चाहिए ।...और मैंने उसे मार डाला । भगवान मुझे कभी भी माफ़ न करेंगे ।...और बड़े सरकार फिर रोने लगे ।...

ये आध्यात्मिक क्षण आदमी को कैसे-कैसे झूले झुलाते हैं ! कभी हिमालय की चोटी पर ले जाकर बैठा देते हैं, तो कभी सागर के तल में डुबो देते हैं । उसके ख्याल कभी उड़कर आसमान छूते हैं, तो कभी घायल पक्षी की तरह ज़मीन पर पड़े पंख फड़फड़ाते हैं ।...और बड़े सरकार की आत्मा अचानक चीख उठी, मैंने माफ़ किया ! सबको माफ़ किया ! अरे, इस ज़िन्दगी में क्या धरा है, माटी का लोना, ज़रा-सा पानी और गल जाय; पानी का बुलबुला, छन में गायब । झूठा है रौब, झूठी है इज़्ज़त । क्या धरा है इसमें ! दो दिन की ज़िन्दगी और यह तूफ़ान बदतमीज़ी ! क्या अहमकपन है ! अरे, 'बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेय, जो बन आये सहज में ताही में चित देय ।...और बड़े सरकार खीं-खीं हँस पड़े । और फिर उन्हें बड़ी ज़ोर की एक छींक आ गयी । सारे मुँह पर सफ़ेद-सफ़ेद कण फैल गये ।

बेंगा ने तौलिया उठाकर बढ़ाया, तो बड़े सरकार ने उसकी ओर ऐसे देखा, जैसे बीमार बच्चा अपने बाप की ओर देखता है । बेंगा ने मुँह पोंछ दिया । और कहा—जलपान नहीं किया, शायद खराई हो गयी ।

तब वे आध्यात्मिक क्षण अचानक पारे की तरह बिखर गये ...
... दिये । बड़े सरकार ...

और दस साल बाद उसी मुंदरी ने एक दिन मोहनी मुस्कान होठों पर लाकर बड़े सरकार को बताया था और हवेली-भर में शोर मचाया था कि उसे बड़े सरकार से गर्भ है। अचरज से बड़े सरकार ने उसे देखा था कि यह कैसे सम्भव है,- लाठी-कपारे भेंट नहीं, बाप-बाप चिल्लाय! और फिर जैसे वह खुद भी मुस्करा उठे थे, मुंदरी ने जैसे उनके हाथ में एक ढाल थमा दी थी, जिससे वह सबसे अपनी रक्षा कर सकते थे। सबके सामने नंगा होने से एक के ही सामने नंगा रहना कितना अच्छा होता है! और आज जो सदयता, उदारता और गुण-ग्राहकता की लहर उनमें उठी थी, वह यों ही न थी। यह दूसरी बात है कि मुंदरी अब भी जब पागल होती है, तो उन्हें परेशान करने आ जाती है। उस वक्त बड़े सरकार की हालत क़रीब-करीब वही होती है, जो एक चूहे की नागिन के फन के पास होने पर!...और बड़े सरकार फिर विलमिला उठे, नहीं, नहीं, उस हरामज़ादी को हम कभी भी माफ़ न करेंगे!...तो फिर क्या करेंगे? है कुछ करने का मुँह? और उसने जो किया, वह क्या ग़लत किया? उन्होंने उसके साथ जो अन्याय और अनाचार किया, उसका ठीक जवाब क्या यही नहीं था? वह पेंगा से कितना प्रेम करती थी! कहती थी, उससे ब्याह करा दीजिए, नाम से उसकी रहूँगी, काम से आपकी। लेकिन मैं न माना। मान जाता, तो शायद यह नौबत न आती। पेंगा को पीटकर भगा देना नागिन को उसके जोड़े से अलग कर देने की तरह हुआ। उसने मुझे डँस लिया, तो क्या अस्वाभाविक या गलत हुआ? उसका फन कुचलने की ताक़त मुझमें न थी।...हमारी ताकत ...हमारी ताक़त महज़ हवा पर टिकी है। उसे इसका राज़ शायद मालूम था....और बड़े सरकार एक बेबसी की हँसी हँस पड़े।...और फिर उनका दिल फैलता-फैलता इतना बड़ा हो गया कि उन्हें लगा कि वह सबको माफ़ कर सकते हैं, मुंदरी को भी, रानीजी को भी, लल्लन को भी, यहाँ तक कि यह रंजन को भी माफ करने को तैयार हो गये। (रंजन को उन्होंने मार ज़रूर डाला था, लेकिन अभी तक

उसे माफ थोड़े ही किया था !)....बेचारे रंजन का भी इसमें क्या दोष था ? वह पान से प्रेम करता था, पान उससे प्रेम करती थी। दोनों मिले, तो उसमें कौन-सा गुनाह हो गया ? गुनाह तो मैंने किया, जो उनके बीच मूसलचन्द बनकर आ बैठा। बेचारा कितना प्यारा, कितना मासूम और कितना बहादुर जवान था ! छाती खोलकर गोली झेल गया और उफ तक न की ! वाह ! वाह ! जवान हो तो ऐसा, प्रेम करे तो ऐसा ! उसका तो स्मारक बनना चाहिए, उसकी तो पूजा होनी चाहिए ! उस पर तो नाटक और उपन्यास लिखना चाहिए। मजनूं-फरहाद का उसे पद मिलना चाहिए।...और मैंने उसे मार डाला। भगवान मुझे कभी भी माफ न करेंगे।....और बड़े सरकार फिर रोने लगे।.... *ये आध्यात्मिक क्षण आदमी को कैसे-कैसे झूले झुलाते हैं !* कभी हिमालय की चोटी पर ले जाकर बैठा देते हैं, तो कभी सागर के तल में डुबो देते हैं। उसके ख्याल कभी उड़कर आसमान छूते हैं, तो कभी घायल पक्षी की तरह जमीन पर पड़े पंख फड़फड़ाते हैं।....और बड़े सरकार की आत्मा आचानक चीख उठी, मैंने माफ किया ! सबको माफ़ किया ! अरे, इस जिन्दगी में क्या धरा है, माटी का लोना, ज़रा-सा पानी और गल जाय; पानी का बुलबुला छन मे ग़ायब। झूठा है रोब, झूठी है इज्जत। क्या धरा है इसमें ! दो दिन की जिन्दगी और यह तूफान बदतमीज़ी ! क्या अहमकपन है ! अरे, बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेय, जो बन आये सहज मे ताही में चित देय।....और बड़े सरकार खी-खी हँस पडे। और फिर उन्हें बड़ी ज़ोर की एक छींक आ गयी। सारी मूँछ पर सफ़ेद-सफ़ेद कण फैल गये।

बेंगा ने तौलिया उठाकर बढ़ाया, तो बड़े सरकार ने उसकी ओर ऐसे देखा, जैसे बीमार बच्चा अपने बाप की ओर देखता है। बेंगा ने खुद पोंछ दिया। और कहा—जलपान नहीं किया, शायद खराई हो गयी।

तब वे आध्यात्मिक क्षण अचानक पारे की तरह बिल्कुल चोटी पर पहुँच गये। बड़े सरकार विह्वल हो उठे। आँखों में आँसू भरकर, बेंगा का हाथ पकड़कर वह बोले—बेंगा, तुम मेरे माई-बाप हो ! मैं तुम्हारा

बच्चा हूँ !—और वह फूट-फूटकर रो पड़े।

बेंगा को काटो, तो खून नहीं। वह डर के मारे थर-थर कांपने लगा। हे काली माई ! खैरियत से यह दिन काट दो ! बड़े सरकार तो सच ही सनक गये मालूम देते हैं। जाने का कर बैठें।

बडे सरकार उसी भाव में बोले—बेंगा, तुम मुझे माफ़ कर दो !... आज मैंने सबको माफ़ कर दिया है, और तुम मुझे माफ़ कर दो ! तुमने अपनी सारी जिन्दगी मेरी ख़िदमत में गुजार दी और मैंने तुम्हारे साथ क्या सलूक किया ! जुल्म, सिर्फ़ जुल्म ! बेंगा, मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ। मुझे माफ कर दो, बेंगा !—और बडे सरकार ने उसके पैरों की तरफ़ हाथ बढ़ाया।

बेंगा के जी में आया कि वह उछलकर दूर जा खड़ा हो, लेकिन हिम्मत न हुई। वह उनका हाथ पकड़कर, गिड़गिड़ाकर बोला—मुझे नरक में न डालिए, बड़े सरकार !

—नरक....नरक में तो मैं जाऊँगा, बेंगा। तू तो सीधे स्वर्ग जायगा। मुझे माफ कर दे, बेंगा !—और तभी बड़े सरकार को जोर से एक हिचकी आ गयी, और सारा भाव ही टूटकर रह गया।

बेंगा ने उन्हें ठीक तरह से लेटा दिया। बड़े सरकार अब यह याद करने लगे कि वह क्या सोच रहे थे। दिमाग पर बहुत जोर दिया, लेकिन याद ही नहीं आ रहा था। और तब परेशान होकर वह उठे और एक पेग और चढ़ा लिया।

आध्यात्मिक दौरा भी आखिर दौरा ही होता है। यह दूसरी बात है कि इस दौरे से तकलीफ़ नहीं, आनन्द मिलता है, आदमी को आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार होता है। वह साधारण इन्सानियत से उठकर फरिश्तों की कतार में पहुँच जाता है। और इसी लिए वह चाहता है कि वह दौरा न टूटे और जब टूटने-सा लगता है, तो वह...

और बड़े सरकार के दिमाग पर जो अन्धकार छा रहा था, वह छँट गया। और उन्होंने तुरन्त यह सोच निकाला, वह कुछ अपनों के बारे में सोच रहे थे, याने यह कि मेरा अपना कोई नहीं। और फिर जैसे

कोई बिजली चमकी या इलहाम हुआ कि कोई अपना नहीं है, तो क
हुआ, वह अपना जब चाहे पैदा कर सकते हैं ! वाह ! बात जब बन
को होती है, तो कैसे बनती चली जाती है ! वह कितनी देर से माथ
पच्ची कर रहे थे, कोई बात निकल ही नहीं रही थी, और बात ज
निकलने को हुई, तो कैसे चुहिया की तरह गुब से बिल से निकल आयी
वाह ! वाह ! नहीं है, तो क्या हुआ ? मैं खुद पैदा करूँगा ! मैं मर्द
कोई मजाक है ! और उनका दिल खिल उठा और आत्मा ब्रह्मानन्द
गोता लगा गयी।

आध्यात्मिक क्षणों की बातों के पीछे भले ही कोई तर्क न
लेकिन उन बातों का अन्त, ध्यान के अन्त की तरह, हमेशा दर्शन
होता है। और बड़े सरकार को जब दर्शन मिल गया, तो वह मुक्त होक
एकात्म हो गये। और उनकी नाक से अनहद के स्वर फूटने लगे।

बेंगा की समस्या बड़ी विकट थी। बेचारा बेखाये-पिये सुबह
खड़ा था, जाने कब बड़े सरकार की नींद खुले।

*

रात के आठ बजे बड़े सरकार की समाधि टूटी, तो दुनिया बद
चुकी थी। जम्हुआयी लेते हुए वह बैठे। सामने तिपाई पर लालटेन ज
रही थी। बोले—रात हो गयी ?

—जी, बड़े सरकार,—थका हुआ बेंगा सूखा थूक गटककर बोला

—खूब सोये !....बेंगा, भूख लगी है। जल्दी खाना ला।

पंखा रखने के लिए बेंगा झुकने लगा, तो जैसे कमर ही टूट गयी
पाँव उठते ही न थे। बाहर का दरवाजा खोला, तो ओसारे में भ
लगी हुई थी। कइयों ने एक ही साथ कहा—बड़े सरकार की तबीय
कैसी है ?

—ठीक तो मालूम देती है। भोरे के सोये अभी जागे हैं। खा
माँगा है।

दारोगा ने कहा—जरा मेरा सलाम बोल दे।

शम्भू ने कहा—मेरा भी।

वैद्यजी ने कहा—मेरा भी।

पुजारीजी ने कहा—हम भी देखना चाहते हैं।

बड़े सरकार ने उन्हें बुला लिया। सब कुर्सी खींच-खींचकर आप ही बैठ गये। बड़े सरकार का जब तक खाना न आ गया, सब खामोश बैठे रहे। पेट में जब काफी जा चुका, तो बड़े सरकार एक गिलास पानी पीकर बोले—तबीयत मेरी बिल्कुल ठीक है। रात नींद नहीं आयी थी। खूब सोये!

वैद्यजी ने कहा—बड़े सरकार, मेरे पास कुछ दवाइयाँ ऐसी हैं, जो मरीज के नाम पर सीसी से निकाल-भर देने से फ़ायदा कर जाती हैं। आपकी तबीयत सुबह खासी खराब थी, इस वक्त तो आप बिल्कुल ठीक लगते हैं।

—उसी का असर हुआ होगा!—बड़े सरकार ने कहा।

सब हँस रहे थे और वैद्यजी अपनी हाँके जा रहे थे—मैं दवाई लिये दिन-भर ओसारे में बैठा रहा।

—और उसका सत बड़े सरकार के पेट में पहुँचता रहा!—दारोगा बोला।

सब फिर हँस पड़े।

वैद्यजी बिगड़कर बोले—आप लोग वैद्यक शास्त्र को क्या जानें! अरे साहब, ओ-ओ औषधियाँ हैं, जिनका नाम ले लेने से रोगी अच्छा हो जाता है! आप लोग मजाक उड़ा रहे हैं?

थोड़ी देर के लिए खामोशी छा गयी।

शम्भू बोला—पुजारीजी, आपकी सम्मति क्या है?

पुजारीजी ने गर्व से सिर ऊँचा करके कहा—मैंने तो आज तक कोई औषधि नहीं खायी। ठाकुरजी का चरणामृत ही हमारे लिए सर्व-दुख-भंजक है। बड़े सरकार को चरणामृत देकर मैं तो निश्चिन्त हो गया था। ठाकुरजी की महिमा अपरम्पार है!

—आपकी बात पर विश्वास किया जा सकता है,—कानूनगो बोला—पंगु चढ़े गिरिवर गहन...

सब ने सिर हिलाया ।

दारोगा बोला—खबर पाकर हम तो परेशान हो गये । कल जलसा है और आज...मैं तो भागमभाग आ पहुँचा । आपकी तबीयत ठीक है, तसल्ली हुई । मेरे लायक कोई ख़िदमत...कलक्टर साहब ने खबर भेजवायी है, वह पाँच बजे तक पहुँच जायेंगे ।....छोटे सरकार दिखायी नहीं पड़े ?

—वह अन्दर का चोर है । बहुत दिनों के बाद आया है और फिर जल्दी ही जाने वाला है । रानीजी ने अपने पास बैठा रखा होगा । यों भी वह बाहर बहुत कम निकलता है ।

शम्भू बोला—छोटे सरकार बहुत बदल गये मालूम देते हैं । जाने क्या बात है । जब से आये हैं, मुझसे भी एक बार न मिले । कई बार बुलवाया भी, लेकिन न आये । बड़े गम्भीर हो गये हैं, बिलकुल बात नहीं करते ।

दारोगा बोला—बड़े अफ़सर हो गये हैं, बड़ी जिम्मेदारी की जगह है । उनका संजीदा हो जाना बिलकुल वाजिब है ।

सबने सिर हिलाया । लेकिन शम्भू ने कहा—ऐसी भी क्या बात, साहब, कि आदमी अफ़सर हो जाय, तो दोस्तों से बोलना-चालना छोड़ दे ? आप छोटे सरकार और हमारा सम्बन्ध नहीं जानते, युनिवर्सिटी में चौबीस घंटे साथ-साथ रहते थे । यहाँ भी जब तक एक बार न मिलते थे, छोटे सरकार के पेट का पानी न पचता था । मैं तो जानूं, जरूर कोई गंभीर बात है, वर्ना इस तरह कोई नहीं बदलता ।....

बडे सरकार उसे टोक कर बोले—भाई, यह तुम्हारी और उसकी बात है, तुम लोग समझो-बूझो । हमें इसमें क्या दिलचस्पी हो सकती है । क्यों, साहब ?

—बिलकुल ठीक फरमाते हैं, बड़े सरकार !—दारोगा ने कहा ।

हाथ धोते हुए बडे सरकार ने बेंगा से कहा—चबूतरे पर बैठने का इन्तज़ाम कर और पान ला । और किसी को बुला, पंखा झले । तू भी बहुत थक गया होगा । खाया-पिया भी नहीं न ?

—कोई बात नहीं, बड़े सरकार। आप अच्छे हो गये, मेरी सेवा स्वारथ हो गयी।—बेंगा ने कहा।

—बाहर निकलना तो ठीक नहीं, क्यों वैद्यजी?—बड़े सरकार ने कहा।

—यहाँ आँगन में बिलकुल ठीक है। थोड़ी ऐहतियात रखनी हर हालत में ठीक होती है।—वैद्यजी ने कहा।

—और कहिए, दारोगा साहब, क्या हाल-चाल है?

—सब ठीक है,—दारोग़ा ने बेंगा को बाहर जाते हुए देखकर कहा—चतुरिया वगैरा के मुकद्मे की तारीख इक्कीस सितम्बर को पड़ है। आपको कुछ गवाहों का इन्तज़ाम कराना होगा।

—मुकद्मा!—बड़े सरकार ने ताज्जुब से पूछा—मुकद्मा कैसा? आपने तो कहा था कि बिना मुकद्मा चलाये ही जब तक चाहे, उन्हें बन्द रख सकते हैं।

—इस्तगासा उधर से दाखिल हुआ है। हाकिम परगना ने तो खारिज कर दिया था, लेकिन सब-जज साहब ने मंजूर कर लिया है। सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब का हुक्म हमारे पास मुकद्मे की तैयारी करने का आ गया है।

—तो मुकद्मा चलेगा?

—मालूम तो ऐसा ही देता है। जिले में कुल मिलाकर तीन सौ के करीब गिरफ्तार हैं। बड़ा शोर मचा रखा है कमबख्तों ने। कल भी कस्बे में एक मीटिंग हुई थी। चार-पाँच हज़ार की भीड़ होगी। छै आदमियों को और टीपा गया है। दो चार रोज में गिरफ्तारी होगी।

—हमारे हलके का भी कोई है?

—हाँ, तीन हैं। नाम बताना वाजिब नहीं।—कहकर दारोगा ने दूसरों की ओर देखा। फिर कहा—गिरफ्तारियों का बाजार फिर गर्म होनेवाला है। कांग्रेस ने इस्तीफा तो दे ही दिया है, सुना है, फिर सत्याग्रह शुरू होनेवाला है। कांग्रेसियों की गिरफ्तारी में कोई बवाल नहीं होती, वे बेचारे बड़े आराम से साथ हो लेते हैं, न कोई हो, न हल्ला।

लेकिन ये कम्युनिस्ट, मुट्ठी-भर तो हैं कमबख्त, लेकिन जरा भी कहीं कुछ हुआ नहीं, कि माटे की तरह लूझ पड़ते हैं, और उनको पकड़ना भी कोई आसान नहीं। बड़ी परेशानी होती है।.. कल तो सब लोग आ ही रहे हैं। ऊपर के हलक़े की सब बातें आपको मालूम हो ही जायेंगी, कुछ हमें भी बताइएगा।

—जरूर, जरूर !....तो फिर एक नया दौर शुरू होता मालूम देता है।

—जो भी हो, हमें क्या ? जब तक लड़ाई चल रही है, हमें कोई फ़िक्र नहीं। लड़ाई के नाम पर हमारा सौ ख़ून माफ़ है। सुना है, जिले के रईसों की एक मीटिंग कलक्टर साहब बुलाने वाले हैं, इन्हीं सब बातों पर ग़ौर करने के लिए, कानूनगो साहब कह रहे थे।

पान लेकर बेंगा दाखिल हुआ, तो उठते हुए बड़े सरकार ने कहा—वहीं ले चलो।...चलिए साहब, आँगन में चला जाय।

१४

आगे-आगे कलक्टर की कार थी और पीछे तीन जीपों और दो कारों में जिले के दूसरे बड़े अफ़सर थे। साधारण कंकड़ की सड़क, धूल की आंधी उड़ रही थी, इसलिए गाड़ियाँ काफी फ़ासले से चल रही थी। लाडली कलक्टर की बगल में थी।

कस्बे से तीन मील दूर सड़क को घेरे आदमियों की भीड़ दूर से ही देखकर ड्राइवर ने कार धीमी कर, मुड़कर कलक्टर की ओर देखा। कलक्टर भी बग़ल से सिर निकालकर भीड़ की ओर देख रहा था। किसी नारे की आवाज़ सुनकर उसने कहा—गाड़ी रोको।

भीड़ नारे लगाते आगे बढ़ी। नारे साफ़ हुए—पुलीस-ज़ुलुम बन्द हो! हमारे साथी छोड़े जायँ! ...

लाडली ने सहमकर, बडी-बड़ी आँखें नचाकर कहा—यह क्या?

कलक्टर ने मुस्कराकर कहा—कोई जुलूस होगा।

—वह लोग इधर ही आ रहे है, बिल्कुल बीच सड़क से। कहीं कुछ....

कलक्टर हँसकर बोला—नही, अभी वह वक्त दूर है।—और सिर बाहर निकालकर पीछे देखने लगा कि और गड़ियाँ कितनी दूर हैं।

भीड़ सामने आकर खड़ी हो गयी। तीन-चार लाल झण्डे लहरा रहे थे। नारे अपनी बलन्दी पर पहुँच गये—पुलीस-ज़ुलुम बन्द हो!.... हमारे साथी छोड़े जायँ!...और कितनी ही मुट्ठियाँ एक साथ उठ-गिर रही थीं।

लाडली की आँखों में डर काँपने लगा। कलक्टर पत्थर की मूरत की तरह शान्त।

पीछे जीप आकर रुकी। सुपरिन्टेन्डेन्ट उतरकर कलक्टर के पास आकर खड़ा हो गया।

नारों ने और भी जोर पकड़ा

एक-एक कर गाड़ियाँ पीछे आकर क़तार में खड़ी हो गयी और मुन्सिफ़ को छोड़कर सभी कलक्टर की गाड़ी घेरकर खड़े हो गये। सब खामोश, जैसे सौ वक्ता एक चुप हराये।

आखिर सुपरिन्टेन्डेन्ट ने आगे बढ़कर कहा—रास्ता छोड़ दो!

रमेसर ने दोनों हाथ ऊपर उठाकर शान्त होने का आदेश दिया और आगे बढ़कर कहा—हम कलक्टर साहब से मिलना चाहते हैं।

—यह कोई मिलने की जगह नहीं है, जिले पर आओ! रास्ता छोड़ दो!

—आप उनसे कहिए! हम मिलना चाहते हैं। यहाँ के दारोगा जो जुलुम तोड़ रहे हैं....

—जिले पर आओ! रास्ता छोड़ दो!

—जिले पर आने का मतलब हम समझते है। हमारे पचासो साथियों पर वरन्ट है। कैसे कोई मिलने जा सकता है? वरन्ट रद्द कराइए। आप कलक्टर साहब से हमारी बात कहें, हम बिना मिले नहीं हटेंगे!

—क्या मतलब?—आँखें उठाकर सुपरिन्टेन्डेन्ट ने कहा। करीब तीन सौ जवानों की भीड़ सामने खड़ी थी और वे थे सिर्फ पन्द्रह और उनके पास सिर्फ़ एक पिस्तौल थी। पीछे का थाना पाँच मील पर था और आगे का तीन मील पर।

—मतलब यह है कि हम कलक्टर साहब से मिलना चाहते हैं! आप उनसे हमारी बात कहें!

जब अपने कुत्ते पास हों, तो मालिक को खुद भौंकने की क्या जरूरत?

सुपरिन्टेन्डेन्ट ने कहा—मेरा काम तुम्हारी खबर पहुँचाना नहीं

—तो हम खुद उनसे मिल लेंगे, हमें जाने दीजिए।

—यहाँ से तुम आगे नहीं बढ़ सकते !—उसने पिस्तौल पर हाथ रखा।

नारे फिर बुलन्द हो गये—पुलीस जुलुम बन्द हो !... हमारे साथी छोड़े जायँ !....

सुपरिन्टेन्डेन्ट का चेहरा तमतमा गया। वह लपककर अपनी जीप में जा बैठा और ड्राइवर को हुक्म दिया—चलाओ !

चीखती हुई जीप कलक्टर की कार की बगल से निकलकर आगे बढ़ी और उसके पीछे-पीछे दूसरी गाड़ियाँ।

रमेसर ने भीड़ को एक ओर कर लिया। नारे गरजते रहे।

गाड़ियाँ भाग रही थीं। और नारे उनका पीछा कर रहे थे।

*

क़स्बे में जहाँ सड़क आकर बाजार से मिलती है, वहाँ तीन मिठाई की और चार पान की दूकानें हैं। बाजार के दिन तो वह बाजार का ही एक हिस्सा हो जाता है, दूसरे दिन भी वहाँ हमेशा चहल-पहल रहती है। वहाँ से गुजरनेवाले देहाती मुसाफ़िर रुककर मुँह में बताशे डाल पानी पीते हैं, पान खाते हैं और बीड़ी खरीदते हैं। सुबह मोटर के छूटने के समय और शाम को मोटर आने के समय यह चहल-पहल और भी बढ़ जाती है। लगन के महीनों में तो यहाँ बराबर मेला-सा लगा रहता है। एक बारात आ रही है, एक बारात जा रही है।

आज यहाँ दोपहर से ही लाल और नीली पगड़ियाँ दिखायी दे रही थीं और बड़े ज़ोर-शोर से सफ़ाई हो रही थी। चार बजते-बजते खासा मजमा लग गया। क़ानूनगो, दारोग़ा, नायब, टाउन एरिया के चेयरमैन, पुलीस, चौकीदार, पटवारी और कितने ही जमींदार, रईस और महाजन जमा थे। ज़रा हटकर नीम के पेड़ों के नीचे कई हाथी और घोड़े खड़े थे, जिनपर वे दूर-दूर से आये थे। रामकिसुन हलवाई की दुकान के सामने सहन में खूब छिड़काव हुआ था और नीम की छाया में कुर्सियाँ और बेंचें टाउन एरिया के दफ़्तर और थाने से लाकर लगायी थीं। कुर्सियों पर अफ़सर और कुछ बड़े-बड़े जमींदार और रईस

बैठे थे और बेंचों पर पटवारी और मुंशी वग़ैरा। रामकिसुन ने आज के लिए विशेषकर कुछ अच्छी मिठाइयां बनवायी थीं। जो भी जमींदार या रईस आता था, तहसीलदार, कानूनगो और दारोगा और नायब से जलपान करने के लिए पूछता। और उनके हां-ना करने के पहले ही आर्डर दे देता—रामकिसुन, दिलाना तो अच्छी-सी एक सेर।

दस-दस मिनट में जलपान हो रहा था और मुँहामुँह पान भरा जाता था और फक-फक सिग्रेटों का धुआं उड़ाया जा रहा था। मुंशी, पटवारी और पुलिस की हालत बिल्कुल भिखारियों-जैसी थी। वे टुकुर-टुकुर देखा करते। उन्हें पूछनेवाला आज कोई न था। चांदों के सामने सितारों की चमक मांद पड गयी थी। कभी कोई रईस एक लड्डू, एक पान या एक सिग्रेट की भी मेहरबानी कर देता, या खुद कानूनगो या दारोगा अपने हाथ से कुछ इनायत कर देते, तो वे निहाल हो जाते। चौकीदारों को कौन पूछे, उनकी हालत तो जुगुनुओं से भी बदतर थी। रहा न जाता, तो अपने हलके के जमींदार के सामने हाथ फैलाकर, दांत चियारकर कहते—सरकार, एक बीड़ी मुझे भी मिल जाती।

पांच बजते-बजते कस्बे से बडे सरकार के गांव तक रास्ते के दोनों ओर चौकीदारों की तैनाती हो गई, पुलीस कतार में खड़ी हो गयी और दारोग़ा और नायब ने पेटी कस ली। यही अफ़सरों के पहुँचने का वक़्त दिया गया था। रईसों की शेरवानियां, टोपियां और साफ़े अभी कुर्सियों की की पीठों पर लटक रहे थे। दूर से ही उड़ती हुई धूल दिखाई देगी, तभी वे पहनेंगे। वे कोई किसी के मातहत नहीं कि पायजामा कसकर पहले ही से खड़े रहें। गाहे-बेगाहे ये पोशाकें बदन पर निकलते हैं, जब तक शरीर पर रहते हैं, काटते रहते हैं। कई बार-बार अपनी सोने की [illegible] घराऊ जेब या कलाई घड़ी देख रहे थे और दिखा रहे थे और [illegible] झगड़ भी रहे थे कि उनकी घड़ी का वक़्त एक सेकेन्ड भी इधर-उधर नहीं हो सकता, सीधे विलायत से मंगवायी थी। हर हफ़्ते स्टैंडर्ड से [illegible] हैं, कभी एकाध सेकेन्ड का भी फ़र्क़ नहीं आया।

जब आधा घंटा बीत गया, तो दारोग़ा ने पेटी

पता नहीं, क्या बात है, इतनी देर तो नहीं होनी चाहिए।

—आइए, एक सिग्रेट पी लीजिए,—सिग्रेटदान का पेंच दबाकर खट-से खोलते हुए बाबू छोटेलाल ने कहा—वक्त की ऐसी पाबन्दी भी क्या! आते होंगे।

—ये पान भी लीजिए,—बाबू श्यामसुन्दर राय ने पान का डिब्बा आगे बढ़ाते हुए कहा—न हो, किसी को साइकिल से दौड़ाइए, दो-चार मील आगे बढ़कर देख आये।

—कोई बैलगाड़ी से थोड़े ही आ रहे हैं कि साइकिलवाला खबर ला सके।—हाजी इलताफ़ हुसेन ने कहा—ठंडे-ठंडे आने की सोची होगी उन लोगों ने। नाहक हमें धूप में दौड़ाया।

तभी टाउन एरिया के मुंशी ने आकर दारोग़ा से कहा—सब इन्त-जाम हो गया है। इक्कीस कुर्सियों का ही इन्तजाम हो सका है। आप पहले ही से सहेज दीजिए कि कौन-कौन बैठेंगे।

सुनकर कुछ रईसों को फ़िक्र हुई कि पता नहीं, उन्हें कुर्सी मिले या नहीं। दारोग़ा जेब से काग़ज-पेंसिल निकालकर नाम लिखने लगा। सबने उसे चारों ओर से घेर लिया कि तभी एक शोर उठा—मोटर आ रही है!

हड़बड़ाकर दारोग़ा काग़ज-पेंसिल जेब में रखकर पेटी कसने लगा। एक क्षण में सब अटेन्शन हो गये।

सुपरिन्टेन्डेन्ट की कार वैसे ही दाख़िल हुई, जैसे लाट की स्पेशल प्लेटफार्म पर। ड्राइवर उतर ही रहा था कि दारोग़ा ने बढ़कर दरवाज़ा खोल दिया और दो क़दम पीछे हटकर, नायब की बग़ल में खड़े होकर साथ ही सलामी ठोंकी। कान्स्टेबिलों के तरह-तरह के जूतों की नालों की खट-खट की बेतरतीब आवाज़ें सुनायी दीं और उनके हाथ सलामी में उठ गये और रईस अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार आगे बढ़-बढ़कर सलाम करने और हाथ मिलाने लगे। दारोग़ा परिचय कराता रहा।

सुपरिन्टेन्डेन्ट की भौंहें चढ़ी हुई थीं। वह सिर हिलाकर ही जवाब दे रहा था। मुँह से कुछ बोल नहीं रहा था। दारोग़ा की तरफ़ तो उसने

देखा तक नहीं। दारोगा सहम गया, जाने क्या बात है।

एक-एक कर सभी गाड़ियाँ आकर खड़ी हो गयीं। सभी अफ़सरों के साथ वही हुआ।

चेयरमैन आगे बढ़कर कलक्टर से बोला—हुज़ूर! आपके हुक्म के मुताबिक हमने सब इन्तजाम किया है। क़रीब-क़रीब सभी रईस यहाँ हाज़िर हैं। आप मेहरबानी करके तशरीफ़ ले चलें।

कलक्टर ने सुपरिन्टेंडेन्ट की ओर देखा। सुपरिन्टेन्डेन्ट ने दारोग़ा की ओर आँखें गिरेरकर देखते हुए कहा—तुम बिल्कुल नालायक़ हो!

—क्या ख़ता हुई, हुज़ूर?—दारोग़ा गिड़गिड़ाया।

—मासूमपुर के पास तुम्हारे दादा सब हमारा स्वागत करने के लिए सड़क रोके खड़े थे और तुम बेखबर यहाँ पड़े थे? तुम्हारा हलक़ा दिन-पर-दिन बाग़ी होता जा रहा है। समझ में नहीं आता, तुम क्या करते हो, हरामखोर!

दारोगा कुत्ते की तरह उसकी फटकार पर उसका पाँव चाट लेना चाहता था, अकेले में वैसा होता, तो वह भी यह काम कर चुका होता, लेकिन यह तो जैसे भरी महफ़िल मे उसका पानी उतार देना था! बेचारा हाथ जोड़े, सिर झुकाये सुनता रहा। कसम है कि एक लफ्ज मुँह से निकले।

टाउन एरिया के दफ्तर में कुर्सियों के लिए वही भाग-दौड़ और चुस्ती दिखाई गयी, जो मुफ्त के शो में लड़कों में देखने में आती है। बाहर दरवाजे के एक ओर दारोगा और दूसरी ओर नायब और उनके साथ कान्स्टेबिलों की कतार खड़ी हो गयी।

अन्दर कलक्टर ने पूछा—बड़े सरकार दिखायी नहीं देते?

क़ानूनगो ने खड़े होकर कहा—उनकी तबीयत अचानक ज़रा नासाज हो गयी है, हुज़ूर। उन्होंने माफ़ी माँगी है।

—और उनके साहबजादे?

—शायद इन्तज़ाम में बझे हों, हुज़ूर।

पार्टी ख़तम हुई, तो क़ानूनगो ने खड़े होकर कहा—अब

कलक्टर साहब कुछ फ़रमायेंगे।

कलक्टर बिल्कुल लकड़ी की तरह सीधा खड़ा होकर सीधे देखते हुए होंठों को कम-से-कम तक़लीफ देते हुए बोला—

मुअज्जिज हाजरीन !

इस तकलीफ़देह गर्मी में हमने एक खास मक़सद से आप लोगों को तकलीफ़ दी है।

हम जल्दी ही जिले के सभी बाअसर लोगों की एक मीटिंग बुलाना चाहते हैं। यह बात तो तयशुदा है कि कांग्रेस भी लड़ाई के मामलों में अड़ंगे खड़ी करेगी। यह भी सुनने में आ रहा है कि कांग्रेस किसी किस्म का सत्याग्रह छेड़नेवाली है। खैर, उसे तो हम जब आयगा, समझ लेंगे। इस वक्त हमें यह सोचना है कि हम किस तरह लड़ाई के मामलों में सरकार की मदद कर सकते हैं। सत्याग्रह छिड़ने पर बदअमनी का भी खतरा रहेगा। उस खतरे का मुकाबिला कैसे किया जाय, इसपर सोच-विचार करना है। जिले के कुछ हिस्सों में कम्युनिस्टों का जोर बढ़ता जा रहा है। सबसे बड़ा खतरा हमें इन्ही से है। आपके हलके में भी इनका जोर काफ़ी बढ़ गया है। अभी रास्ते में हमें एक जुलूस का मुकाबिला करना पड़ा था। हमें ताज्जुब हुआ कि हमारा रास्त रोककर खड़े होने की हिम्मत उन्हे कैसे पड़ी। जाहिर है कि बात बहुत आगे तक बढ़ गयी है। जल्द ही रोक-थाम न की गयी, तो यह खतरा हम-सब पर बन आयगा। इसके बारे में खास तौर पर हमें कोई कदम उठाना होगा। इसी तरह को हजारों बातें हैं, जिनपर हमे ग़ौर करना है। कुछ कमेटियाँ वग़ैरा भी बनानी हैं।

मीटिंग की तारीख वग़ैरा की बाक़ायदा इत्तला आप लोगों को क़ानूनगो साहब के मारफ़त भेज दी जायगी। आप लोग जरूर आये और अपनी बेशकीमत राय से हमें मदद पहुँचायें।...

कलक्टर के बैठते ही कमरा तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा।

*

पतुरिया के नाच का शोर सुनकर दूर-दूर के गाँवों से लोग आ-आकर इकट्ठे हुए थे। सारा मैदान लोगों से भरा हुआ था। अभी बाग़ में घुसने की किसी को इजाज़त न थी। कहा गया था कि जब नाच शुरू हो जायगा, तब लोगों को आने दिया जायगा।

चारों ओर गैस जल रहे थे। कुछ लोग खड़े-खड़े बातें कर रहे थे। कुछ थककर बैठ गये थे और सुरती फटक रहे थे या बीड़ी पी रहे थे। सबकी आँखें दीवानखाने की ओर लगी थीं। उसी में उनकी चिड़िया बन्द थी। दारोग़ा और नायब बाहर कुर्सियों पर, कान्स्टेबिल बेंचों पर और चौकीदार ज़मीन पर बैठे हुए थे।

दीवानखाना बाहर की भीड़ से बिल्कुल बेपरवाह अपने रंग में मस्त था। अन्दर चारों ओर बरामदों में चार गैस जल रहे थे। आँगन में चबूतरे के चारों ओर ग़लीचे बिछे थे और चबूतरे को मंच की तरह सजाया गया था। मंच पर लाइसी, अफ़सर और खास-खास लोग बैठे हुए बातचीत कर रहे थे। दस-बारह जवान बड़े-बड़े ताड़ के पंखे हाँक रहे थे। शम्भू और लल्लनजी बड़ी मुस्तैदी से जलपान, सिगरेट आदि के लिए पूछ रहे थे, आदमियों को सामान पहुँचाने को ताक़ीद कर रहे थे।

शराब के दौर ख़त्म हुए, तो खाने का सिलसिला शुरू हुआ। वैद्यजी, पुजारीजी, शम्भू, लल्लन और चार आदमी और परसने पर थे। और दस आदमी मन्दिर से दीवानखाने सामान लाने पर तैनात थे। जो भी दीवानखाने से निकलता, भीड़ के लोग उससे पूछते, अब कितनी देर है? लेकिन उनका जवाब देने की किसी को फ़ुरसत न थी। आज दीवानखाने के अन्दर जाने-आनेवालों का महत्त्व बढ़ गया था। बेचारे एक वैद्यजी ही ऐसे थे, जो बता देते थे कि अब जलपान चल रहा है...अब शराब...अब खाना....और अब जल्दी ही नाच शुरू होगा। बाहर ओसारे में साज़िन्दे बैठे हुए थे, लेकिन दारोग़ा के कारण उनके पास किसी की हिम्मत न थी।

खाने का सिलसिला ही ख़त्म होने पर न आ रहा था।

गयी और सामान का आना-जाना बन्द न हुआ, तो भीड़ में बुदबुदाहट शुरू हुई—साले कितना खाते हैं !

खानेवालों को किसी बात की चिन्ता न थी। वे आराम से लुकमे तोड़ रहे थे। खाते कम थे, बात ज्यादा करते थे। जितनी टोलियाँ थीं, उतनी ही तरह की बातें। कहीं जमाने का गिला था, तो कहीं किसानों की बदमाशियों का जिक्र, कहीं कांग्रेस पर कीचड़ उछाला जा रहा था, तो कहीं कम्युनिस्टों को गालियाँ दी जा रही थीं। लेकिन मंच पर लोग अफ़सरों को मक्खन लगाने मे ही जुटे थे।

बार-बार शम्भू को चक्कर काटते देखकर कलक्टर ने कहा—ये कौन हैं ?

शम्भू ने बड़े सरकार को पहले ही पटा लिया था कि वह उसका परिचय कलक्टर साहब से जरूर करा देंगे। शम्भू के ऊपर आजकल बड़ी डाँट पड़ रही थी। बाप का कहना था कि इतना पढ़-लिखकर बैठा है, यह नहीं होता कि दौड़-धूपकर कहीं कुछ करे, लड़ाई का जमाना है, हजारों तरह के काम पैदा हो गये हैं, नौकरी नहीं करनी है, तो कोई काम ही क्यों नहीं करता ? बनिया का लड़का कहीं इस तरह बैठकर रोटी तोड़ता है ?...शम्भू के दिमाग में एक ख्याल आ गया था।

बड़े सरकार ने कहा—हमारे यहाँ के महाजन के लड़के और बाबू शिवप्रसाद के भतीजे हैं, एम० ए० लल्लनजी के साथ ही किया है। आपसे मिलना चाहते थे, मैंने कहा, कलक्टर साहब यहीं आ रहे हैं, मिला देंगे।

शम्भू के हाथ अभी तक माथे से टिके हुए थे, उसने वैसे ही सिर झुका लिया।

कलक्टर ने कहा—तो आप भी कमीशन में क्यों नहीं चले जाते ?

बड़े सरकार ने ही कहा—बनिया का दिल है, बन्दूक इनसे क्या उठेगी। चाहते थे कि कोई ठेका-वेका...

—अच्छा-अच्छा, कभी आप मुझसे मिलिए।

—बहुत अच्छा, हुजूर !—शम्भू ने और भी सिर झुकाकर कहा।

—साहबजादे नहीं दिखायी पड़े ?—कलक्टर ने कहा।

—वाह ! आते ही आपको सलाम किया था उन्होंने। आपने पह-चाना नहीं ?—बड़े सरकार ने सिर हिलाकर कहा और पुकारा—लल्लनजी !

लल्लन आया, तो कलक्टर के उठते ही, बड़े सरकार को छोड़कर सभी खड़े हो गये। कलक्टर ने बधाई दी, तो सबने बधाई दी। कलक्टर ने उसे अपने पास बैठा लिया। कुछ देर तक सिर्फ उसी से बातें करता रहा। लल्लन हाँ-हूँ में जवाब दे रहा था। लाडली आँखें बचाकर उसकी ओर देख रही थी, लेकिन वह सिर्फ़ नीचे देख रहा था।

बड़े सरकार ने कहा—जो मैंने चाहा सब हो गया। अब इनकी शादी करनी रह गयी, हो जाय, तो छुट्टी पाऊँ।

—हो ही जायगी, यह क्या मुश्किल बात है। ये जब चाहें....

—आप इनसे पूछिए। ये हाँ कर दें, तो ठीक कर दूँ। जब लौटेंगे, शादी हो जायगी।

—इनको क्या उज्र हो सकता है। हाँ, लड़की इनके लायक हो, पढ़ी-लिखी तो जरूर हो !

—जैसी ये कहें, मैं ठीक कर दूँ।

—अभी क्या जल्दी है। देखेंगे।—कहकर लल्लन उठ पड़ा, तो सब हँस पड़े। लाडली की शोख, सुरीली हँसी की आवाज सबको लाँघकर गूँज उठी।

लल्लन चला गया, तो कलक्टर बोला—बड़े शर्मीले हैं। बड़े शरीफ़ अफ़सर बनेंगे !

लाडली ने कहा—बिल्कुल हुजूर की तरह !

सब हँस पड़े। इस वक्त सब-के-सब जरा रंग में थे। रंग में होने पर छोटे थोड़ी आजादी ले लेते हैं और बड़े थोड़ी ढील छोड़ देते हैं। लाडली का खूबसूरत, नन्हा-सा, प्यारा चेहरा कुछ इस तरह लाल हो रहा था, जैसे जिल्द के नीचे आग जल रही हो। उसकी लम्बी-लम्बी पलकें बोझल थीं और उन्हें जरा जोर लगाकर, उठाकर

तो जैसे वह क़यामत की नजर होती। पतले, लाल होंठ शबनम में नहाये गुलाब की पखुड़ी की तरह हो गये थे, और लगता था, जैसे उनसे शराब की बूंदें टपक रही हों। वह जरा-जरा-सी बात पर इतने जोर से हँस उठती थी कि लगता, जैसे आतिशबाजी का अनार सुलग उठा हो। सच पूछा जाय, तो महफ़िल की सारी रौनक़ उसी की जात से थी। वह न होती, तो वहाँ कोई जान न होती, कोई जिन्दगी न होती, जैसे एक चांद के बिना रात का आसमान।

नशा नशा मांगता है। नशा नशे को दुबाला करता है। नशाखोरों के लिए औरत एक नशा है, बल्कि नशे की रूह है। और वह भी लाडलो-जैसी औरत, जो मुजस्सिमा शराब की एक बोतल थी, जिसकी आंखों में, होठों में, अंग-अंग में जैसे शराब उबल रही थी।

और जाने पचास साल के लखनौआ डिप्टो को लाडली की कौन अदा फना कर गयी कि वह उसकी ओर हाथ उठाकर, तड़पकर यह शेर पढ़ उठा :

ये काली-काली बोतलें जाहिद शराब की,
रातें हैं इनमें बन्द हमारे शबाब की।

—वाह ! वाह ! डिप्टी साहब ! क्या इसरत बरसती है इस शेर से !—कलक्टर बरजस्ता चीख उठा।

लाडली एक क्षण को तो ऐसे शर्मा गयी, जैसे नातिन बाबा के मजाक पर, पर दूसरे ही क्षण वह बोली—मौलाना दाढ़ी में खेजाब लगाना आज भूल गये शायद !

एक कहकहा लगा। लेकिन खुर्राट डिप्टी का एक रोआं तक न हिला। वह दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोला—दाढ़ी पर मत जाओ, मेरी जान, दिल है जवां हमारा !

—उतरा तेरे किनारे जब कारवां हमारा !—जाने क्या समझकर, क्या सोचकर छोटेलाल ने जैसे सब पर पानी डाल दिया। वह जरा ज्यादा पी गया था, और बदमस्त होकर झूम रहा था।

सब-के-सब ने इस बदमजाक में भी जाने क्या तुक देखा कि ऐसे

ज़ोर से हँसे कि आँगन के दूर के कोनों में बैठे लोग भी चौंक उठे। लाडली तो लोट पोट हो गयी। उसकी हँसी रुकने पर ही नहीं आती थी।

फिर जाने कलक्टर को क्या याद आ गया कि वह बड़े सरकार से पूछ बैठा—बाबू शिवप्रसाद को आपने मदऊ नहीं किया ?

—किया तो था, हुज़ूर, जाने क्यों नहीं आये।

—क़स्बे में भी दिखायी नहीं पड़े। कहीं बाहर गये हैं क्या ?

—पता नहीं, शम्भू से पूछें ?

—हाँ, ज़रा एक काम था उनसे।

बड़े सरकार ने शम्भू को पुकारा। शम्भू ने बताया कि वह लखनऊ गये हैं, कोई मीटिंग है।

—अब फिर मीटिंग शुरू हो गयी! कोई खटमली आन्दोलन शायद फिर छेड़ेंगे।—श्याम सुन्दर ने आँखें मटकाकर कहा—इतने दिनों तो बड़े शान्त रहे।

—सच पूछिए, तो हमें भी चैन ही था। और हम अभी से कहे देते हैं, ख़ुदा न ख़्वास्ता, इनकी कभी फिर हुकूमत आयी, तो वह हमारे लिए ऐन राहत की चीज़ होगी। बाहर रहकर ये बड़ी उछल-कूद मचाते थे। जैसे ही कुर्सी पर बैठे, आटे-दाल का भाव मालूम हो गया। यह कुर्सी बड़ी अजीब चीज़ है, साहब! बड़ों-बड़ों को सर कर देती है। हुकूमत है, कोई मज़ाक नहीं है।

—और क्या,—मुन्सिफ़ बोला—हमारी अंगरेज सरकार ने भी इन्हें कुर्सी पर बैठाकर खूब काम किया। मसल है न, चल गँवार, गोबर पाथ! कमबख्तों को कोई तमीज़ नहीं और चले थे हम पर हुकूमत करने।

—साहब, नाकों दम कर दिया इन देशभक्तों ने!—दूसरा डिप्टी बोला—यह कर दो, वह कर दो; इसको छोड़ो, उसको पकड़ो, छोटे-छोटे कामों के लिए भी दौड़े चले आ रहे हैं। हुकूमत क्या हुई, घर की लौंडी हुई।

—और कल के छोकरे हम पर रोब ग़ालिब करते थे!—इत्ताफ़

हुसेन बोला—यह चन्दा दो, वह चन्दा दो, वर्ना यह करा देंगे, वह करा देंगे। और नाहक़ हम डर जाते थे।

—डरे तो शुरू में हम भी थे। लेकिन जब देख लिया कि ढोल में पोल-ही-पोल है, तो खुद हमें अपनी समझ पर शर्म आयी।

*

खाना खतम हुआ। बाहर खड़ी भीड़ ने सोचा, अब नाच शुरू होगा। बेचारे इन्तज़ार करते-करते थक गये थे। कितने तो नींद में झूम रहे थे। कितने बार-बार जम्हुआई लेते थे और हर जम्हुआई पर एक मोटी गाली मुँह से निकाल देते थे। कुछ तो अंगोछा बिछा-बिछा कर ज़मीन पर सो भी गये थे।

अन्दर पान के दौर चल रहे थे, सिग्रेट के धुएँ उड़ रहे थे।

वैद्यजी ने चबूतरे के पास खड़े हो, हाथ जोड़कर कहा—आप लोगों का हुकुम हो, तो अब नाच शुरू कराया जाय। बाग़ में सब इन्तज़ाम ठीक है। बस, आप लोगों के चलने की देर है।

लाडली नखरे के साथ बोली—अब हमसे नाचा-वाचा न जायगा। बाप रे! इतना खिला-पिलाकर आप किसी की जान लेना चाहते हैं! हमसे तो उठा भी न जायगा।

आलस से मसनद के सहारे लेटा हुआ कलक्टर बोला—ठीक कहती हैं; नाच-वाच की ज़हमत अब बेकार है। यहीं कुछ बैठे-बैठे होगा।

—ठीक, ठीक!—सब बोल उठे—यहीं मुजरा होगा।

—लेकिन लोग शाम से इन्तज़ार में बैठे हैं,—वैद्यजी वैसे ही हाथ जोड़े बोले—थोड़ी देर के लिए भी नाच हो जाता, तो लोगों का मन रह जाता।

—तो और किसी को बुला लीजिए, मैं तो नाचने से रही!—लाडली बिगड़कर बोली।

—नाहक़ तुम गुस्सा न होओ,—लखनौआ डिप्टी बोला—यहाँ .. मरदुआ नाच देखना चाहता है। लोगों को जाने दो जहन्नुम में!

हम तो एक फड़कती हुई गजल सुनेंगे ।

और बड़े सरकार ने हुक्म दिया—वैद्यजी, साजिन्दों को यहीं भेजिए।

ओसारे से उठकर अपना सर-सामान लिये साजिन्दे जब दीवानाखाने में चले गये, तो लोगों की उम्मीद टूट गयी। सब कपड़े झाड़ते हुए उठ पड़े, सोये हुओं को जागाया गया। बौखलाकर सब ऊल-जलूल बकने लगे, यही करना था, तो ढिंढोरा पीटने की का जरूरत थी !...आरे, इनको नाच-गाने से का मतलब, मतलब तो....खामखाह के लिए परेसान किया...आराम से सोये होते....रात खराब गयी...आरे, ई ससुरे ऐस के बन्दे हैं...पतुरिया को घर में बन्द करके....

एक शोर-सा उठ खड़ा हुआ। कई जवानों ने सलाह की कि शोर क्यों न मचाया जाय, यह भी कोई बात है कि नाच की खबर फैलायो और हम आकर इतनी देर बैठे रहे और अब कहते हैं नाच नहीं होगा ! कुछ ने शोर उठाया भी, लेकिन दारोगा और कान्सेटेबिलों ने जब धमकाया और भाग जाने को कहा, तो वहाँ कोई ठहरा नहीं। हल्ला मचाते हुए सब फाटक के बाहर हो गये। उस शोर में कितनी और कैसी-कैसी गालियाँ थीं, इसका हिसाब फाटक का चौकीदार शायद कुछ बता सके, लेकिन वह बतायगा नहीं। भीड़ हटते ही फाटक बन्द करा दिया गया।

अन्दर बूढ़ा सारंगिया अपनी सारंगी से कह रहा था—ए सारंगी !

—का, बाबा ?—गुलाम सारंगी ने जवाब दिया रोनी-सी आवाज में, जैसे उसको मालूम हो कि आगे वही रोज-रोज का उबानेवाला काम शुरू होने जा रहा है।

—यहाँ बड़े-बड़े अफ़सर, जमींदार, रईस और बाबू लोग बैठे हैं।

—हाँ, बाबा !—रोकर सारंगी बोली, जैसे बाहर की भीड़ के चले जाने के दुख से उसका गला भर आया हो, जिनके सामने कभी इस तरह की बातें सारंगिया नहीं करता और खुशी से वह छेड़ती है।

—तू इन्हें क्या सुनायेगी ?

—सबसे अच्छा गीत !—सिसकियों में बेबसी से सारंगी बोली, उस बेबस बच्ची की तरह, जिसका भिखारी बाप उसका कान उमेठकर उसे भीख के लिए हाथ फैलाकर गाने को मजबूर करे।

—अफ़सर, रईस लोग खुश होंगे।

—हाँ, बाबा !—निढाल सारंगी बोली, जैसे कोई चारा न हो।

—तुझे क्या मिलेगा ?

—इनाम-एकराम !—सारंगी ने आह-भरे स्वर में कहा, जैसे जिन्दगी-भर यह सवाल-जवाब करते-करते उसका मन पक गया हो।

लेकिन वहाँ बैठे हुए लोगों का उस बातचीत से खासा मनोरंजन हुआ। सबने तारीफ की—वाह, बाबा ! सारंगी तो तुम्हारी गुलाम है !

बेचारी सारंगी !

सुर-ताल ठीक हो गया, तो डिप्टी साहब ने फ़रमाइश की—एक फड़कती ग़ज़ल !

कलक्टर ने लल्लन को बुलाकर अपने पास बैठा लिया था। दूसरे बहुत-से-लोग भी, जो जगह बना पाये थे, मंच पर आ गये थे। बाक़ी लोग भी मंच के क़रीब आ गये थे। शम्भू मंच के बिल्कुल किनारे ज़रा-सी जगह बनाकर, पैर नीचे लटकाकर बैठ गया था, जैसे मालूम हो कि वह मंच पर भी बैठा हो और फ़र्श पर भी।

लाडली ने आलाप लिया और लल्लनजी की ओर हाथ उठाकर ग़ज़ल छेड़ी—

खुमारे-लुत्फ का एक इस्तराब होता है...

लखनौए डिप्टी ने दुहराया—खुमारे लुत्फ़ का एक इस्तराब होता है ! वाह ! वाह !

लाडली दोहराकर आगे बढ़ी :

बड़ा हसीन जवानी का ख्वाब होता है।

वाह-वाह का शोर गूँज उठा। कइयों ने मिसरा उसके मुँह से ही लिया। कई चीख पड़े—फिर इरशाद हो ! वाह-वाह ! क्या मिसरा

है, बड़ा हसीन जवानी का ख्वाब होता है !

लल्लनजी का चेहरा सुर्ख हुआ जा रहा था। लाडली उसी की [illegible] संकेत कर मिसरा बार-बार गाने लगी—बड़ा हसीन जवानी का ख्[illegible] होता है....

उस वक्त लाडली का चेहरा कोई देखता, जैसे अलमस्त जव[illegible] झूम रही हो; उस वक्त लाडली की आँखें कोई देखता, शामीदा पर[illegible] के पीछे जैसे बहार मुस्करा रही हो। यह शेर और यह लाडली ! [illegible] हसीन साकी और छलकता हुआ मीना ! सब पी रहे थे और झूम [illegible] थे। वाह ! वाह !

बड़ी देर के बाद गाड़ी आगे बढ़ी। लाडली ने कहा—छोटे [illegible]कार ! हुजूर, एक शेर और सरकार की खिदमत में पेश है :

नक़ाबपोश कहीं आफ़ताब होता है....

लखनौए डिप्टी ने आँखें मूँदकर दुहराया—नक़ाबपोश कहीं आ[illegible] ताब होता है ! वाह-वाह ! नकाबपोश कहीं...

कई बार मिसरा दोहराकर लाडली आगे बढ़ी :

जमाले-दोस्त खुद अपना नक़ाब होता है ..

क़यामत बरपा हो गयी। सब चीख पड़े—जमाले-दोस्त—[illegible] लखनौआ डिप्टी हाथ से पागल की तरह माथा पीटने लगा।

इल्ताफ़ हुसेन चिल्लाया—डिप्टी साहब को हाल आ रहा है ! वाह-वाह ? मारफ़त ! समझनेवाले की मौत है !

डिप्टी पागल की तरह चीखने लगा—जमाले-दोस्त खुद [illegible] होता है...जमाले-दोस्त...जमाले-दोस्त...—फिर [illegible] रुपये का नोट निकालकर कुरबान कर दिया। और कहा— [illegible] फिर कहो ! वाह-वाह ! जमाले-दोस्त...

लाडली ने शेर दोहराया। कई बार [illegible] जैसे हर बार उसमें कोई नयी चीज़ मिलती [illegible] था—एक बार और, एक बार और ! [illegible] वाला यह शेर है, जमाले-दोस्त

आखिर जब सब परेशान हो गये, तो कलक्टर बोला—डिप्टी साहब, भई, मान गये ! तुम हो असल नवाबी खानदान के ! अब जरा महफ़िल का भी ख्याल करो । हमें तो बख्शो !

—कलक्टर साहब !—करीब-करीब रोकर डिप्टी बोला—मार डाला इस शेर ने ! मैं तो फ़ना हो गया ! वाह, लाडली, वाह !

कलक्टर ने लाडली से कहा—भई, यह सही है कि आज के शाहेवक्त छोटे सरकार हैं । दो अशआर तुमने उन्हें सुनाये । अब हमें भी तो एक-आध सुनाओ ! हमने आखिर क्या गुनाह किया है ? बुजुर्ग होना अगर कोई गुनाह है, तो वल्लाह, इसपर हमारा कोई बस नहीं । क्यों, बड़े सरकार ?

—बिल्कुल बजा फ़रमाते हैं हुजूर !—बड़े सरकार बोले ।

लाडली ने रुख़ बदलकर आदाब किया और सब बुजुर्गों की ओर हाथ घुमाकर यह मिसरा पेश किया :

उठा के फेंक गुनाहों को बहरे-रहमत में...

लखनौआ डिप्टी फिर हाय-तोबा मचानेवाला ही था कि कलक्टर ने झिड़का—अम्या, शेर तो सुनने दो !

—बहुत खूब, हुजूर, बहुत खूब ! सुनिए, यह शेर हमारा सुना हुआ है । बहुत खूब है, हुजूर, बहुत खूब ! सुनिए, ! उठा के फेंक....

—अब बस करो, शेर सुनो !—कलक्टर ने डाँटा ।

मिसरा दुहराकर लाडली ने शेर पूरा किया :

कहीं फ़रिश्तों से इसका हिसाब होता है....

अबकी कलक्टर का दौर था । वह दो दस-दस के नोट फेंककर चीखा—बिल्कुल ठीक, बिल्कुल ठीक !....कहीं फ़रिश्तों से इसका हिसाब होता है !

लाडली फिर लल्लनजी की ओर मुड़ी, तो छोटेलाल बोला—यह क्या बात है, कहीं कुछ....

एक ठहाका लगा । लाडली मुस्करायी । लल्लनजी का सिर झुक गया ।

बड़े सरकार बोले—भई, वक्त-वक्त की बात है, कल अपना जमाना था, आज उनका जमाना है !

—बहुत खूब !—सब चीख पड़े ।

लाडली ने कहा—छोटे सरकार, यह शेर खास तौर पर आप के लिए है :

शबाब का है जमाना कुछ एहतियात फ़रमाएँ....

—बड़े मौके का शेर आ रहा है। क्या नेक हिदायत है! शबाब का है जमाना कुछ एहतियात फ़रमाएँ!—यह लखनौआ डिप्टी ही था।

लल्लनजी पानी-पानी हो रहा था।

लाडली मिसरे को कई बार दोहराकर आगे बढ़ी—

मेरे हुज़ूर....

मेरे हुज़ूर...

मेरे हुज़ूर...ज़रा तवज्जह दीजिए!

मेरे हुज़ूर....ज़रा ग़ौर फ़र्माएँ!

और लाडली ने पूरा शेर कहा :

शबाब का है जमाना कुछ एहतियात फ़रमाएँ
मेरे हुज़ूर यह मौसम खराब होता है....

वाह-वाह से आसमान लरज़ गया।

—क्या शेर है! फिर कहो, बार-बार कहो! उस वक्त तक कहो, जब तक कि इसका हरफ़-हरफ़ छोटे सरकार के दिल में नक्श न हो जाय। वाह-वाह...यह मौसम खराब होता है...

लल्लनजी उठने को हुआ, तो कलक्टर ने उसकी बाँह पकड़कर बैठा लिया।

यह शेर कई बार गाकर लाडली ने एकाध शेर और सुनाये। और फिर बड़े सरकार की ओर मुख़ातिब हुई—यह आखिरी शेर बड़े सरकार के लिए खास तौर पर सुना रही हूँ :

गुज़र गया जो जमाना गुज़र गया लाडो

—अच्छा, तो यह आपने ही कही है? वाह, खूब कही है! मैं भी कहूँ ..—लखनौआ डिप्टी काहे को माने।

लाडली अक्सर अपना नाम ग़ज़लों में चस्पा कर देती थी। उसने डिप्टी को आदाब किया और पूरा शेर गाया :

गुजर गया जो जमाना गुजर गया साहो
जो वक्त आज है वो क्यों खराब होता है....

—क्या लतीफ़ इशारे हैं! सुबहान अल्लाह!

बड़े सरकार ने एक सौ का नोट बढ़ाया। साहली ने लेकर आदाब किया।

थोड़ी देर के लिए महफ़िल थम गयी। तबलची से रूमाल लेकर साहली मुँह पोंछने लगा।

*

दूसरे दिन वैद्यजी ने कसर निकाल ली।

वैद्यजी को रात के तमाशे से इतना दुख हुआ कि उन्होंने खाना तक नहीं खाया। जब मुजरा शुरू हो गया, तो वह चुपके-से खिसक गये। पुजारीजी ने बहुत रोका कि भोजन तो करते जाइए, लेकिन वह न रुके। सीधे घर आकर सहन में पड़े तख्त पर निखहरे पड़ गये। वैद्याइन ने उनके इस तरह चुपचाप पड़ जाने पर बहुत पूछा, लेकिन उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। सौदागर थाल लेकर आया और उसने वैद्याइन से बताया कि जाने काहें बिना खाये ही वैद्यजी चले आये। वैद्याइन ने उन्हें उठाकर खिलाने की बहुत कोशिश की, लेकिन वह न उठे, कह दिया, तबीयत खराब है।

वैद्याइन को बड़ा आश्चर्य हुआ, इतना अच्छा भोजन और वैद्यजी न खायें। वह वैद्यजी की कमजोरी जानती थीं। उन्होंने एक-एक चीज का बखान शुरू किया, लेकिन वैद्यजी ने कहा—हमें सब मालूम है, हमी ने तो सब बनवाया है। लेकिन मैं खाऊँगा नहीं, सब मेरे लिए जहर है!

—ऐसा का हुआ?

—अब यह मत पूछो। मैं खाऊँगा नहीं, तुम्हें खाना हो, तो खाकर सोओ।

—कुछ मालूम भी तो हो!

—तुम्हारे जानने-लायक कुछ नहीं है। इस समय मुझसे कुछ न

पूछो। थका हूँ, आराम करने दो। परेशान करोगी, तो और कहीं जाकर पड़ रहूँगा।

वैद्याइन जानती थीं कि वह ऐसा कर सकते हैं, सो मन मारकर वह बोलीं—बिस्तर भी नहीं लगाना था?

—नहीं! तुम जाव!—कहकर वैद्यजी ने करवट बदल ली।

सुबह तक वैद्यजी मनस्ताप से जलते रहे। इतने जलील वह कभी भी न हुए थे। बड़े सरकार की मर्जी पर जिन्दगी-भर वह नाचे थे। आत्मसम्मान या स्वाभिमान का कोई सवाल ही न था। ताबेदार को अपनी मर्जी क्या? लेकिन बात बात है। बड़े सरकार ने ही तो नाच कराने को कहा था। जवार के इतने लोग टूटे थे नाच देखने को। बार-बार वैद्यजी ने लोगों को दिलासा दिया था कि अब शुरू ही होनेवाला है। और अन्त में क्या हुआ। वैद्यजी को बड़ा दुख था, सुबह किसी को कैसे मुँह दिखायेंगे? जो भी मिलेगा, ताना देगा, वैद्यजी, रात खूब नाच दिखवाया न! अब कौन उनकी बात मानेगा? आज तक कभी ऐसा न हुआ कि लोगों के सामने वैद्यजी झूठे हुए हों। वैद्यजी की बात पर सब विश्वास करते थे। अब कौन करेगा? इतने लोगों के बीच झूठा बनना पड़ा।...यही करना था, तो पहले ही कह देते। काहे को तम्बू खड़ा किया जाता, काहे को नाच-नाच का शोर मचाया जाता? उन्हें सबसे ज्यादा दुख इस बात का था कि बड़े सरकार ने भी ख्याल न किया।

उनके जी में आ रहा था कि कल से सभी सम्बन्ध विच्छेद कर लें। शायद अब वह जमाना खतम हो गया, अब बड़े सरकार में भी वह बात न रही। पहले बड़े सरकार हर जलसे के वक्त रियाया का बहुत ख्याल करते थे। कहते थे, जंगल में मोर नाचा तो क्या नाचा? लोगों को भी तो मालूम हो कि बड़े सरकार के यहाँ कोई खुशी-गमी हुई है। लेकिन आज...

और वैद्यजी को कल की चिन्ता हो गयी। कल की पूरी जिम्मेदारी उन्हीं पर थी। गाँव-गाँव के कंगलों को उन्होंने कहलवाया है।

आयेंगे, कहीं कुछ हो गया, धो ? बड़े सरकार का क्या ठिकाना ? मिजाज यों ही खराब है। हे शंकर, हे शंकर ! पत रखना !

फिर अचानक इस तरह चले आने का वैद्यजी को अफ़सोस हुआ। थालों मिठाइयां और नमकीनें बची थीं। उन्होने सोचा था कि जितने लोग नाच देखने आये थे, सभी को दो-दो, चार-चार मिठाइयां बँटवा देंगे। गरमी का दिन है, लोग मिठाई खाकर इनारे पर पानी पी लेंगे। लेकिन दिमाग खराब हुआ, तो वह यह भी भूल गये। अब मन कचोट रहा था कि पुजारी और सौदागर मिलकर सब सामान तीन-पांच कर देंगे। एक बार तो जी में आया कि वह चले और सब सामान ठीक से रखवा दें। कल कंगलों के खाने पर परसवा देंगे। लेकिन फिर जाने क्या आया कि बोले—जाय जहन्नुम में ! हमीं ने क्या सब बातों का ठेका ले रखा है !

यह सोचकर कि निचाटे में स्नान-पूजा कर आयें, वह मुंह-अँधेरे ही धोती, लोटा और फुलडाली लेकर पोखरे की ओर चल पड़े। सुबह-ही-सुबह किसी से भेंट हो, ऐसा वह नहीं चाहते थे।

घाट पर पहुँचे, तो देखा, कुछ लोग टाट पर सो रहे हैं। पास ही गोइठे की आग से धुआं निकल रहा था और चिलम पर हुक्का उठंगा दिया गया था। सिरहाने की तरफ नजर गयी, तो अचानक वैद्यजी की आँखें चमक उठीं। खोल में पड़ी सारंगी और धोती में बँधी तबले की जोड़ी और एक गठरी से झांकते लौंडे की पोशाक देखकर वह समझ गये कि ये नाचनेवाले हैं। फिर झुककर उन्होने लौंडो के चेहरे देखे। दो लौंडे थे, बड़े ही खूबसूरत, बडे बडे बाल उनके कंधो पर बिखरे थे, गालों और ठुड्डी के तिल मलगजी रोशनी में भी साफ़ दिखायी दे रहे थे। वैद्यजी ने खुश होकर सोचा, ये आज रात को खाली हों, तो क्यों न इन्हें रोक लिया जाय और लोगों को नाच दिखा दिया जाय।

इतने में एक किनारे सोया हुआ एक बूढ़ा खांसकर बोला—के हऽ, ए भाई ?

वैद्यजी उसके पास जाकर बैठ गये। बोले—कोई चोर-चमार नहीं

हैं, इस गाँव के राजवैद्य हैं। तुम लोग नाचनेवाले हो ?

—जी, सरकार,—बूढ़ा उठकर बैठ गया और वैद्यराज की नंगी देह पर जनेऊ देखकर बोला—पा लागों, महराज।

—शंकर जी भला करें ! कहाँ से आना हो रहा है ?

आँखों को हथेली से रगड़कर बूढ़ा बोला—भैरवा से आवतानी जा। काल्ह बिदाई में बड़ा बेर हो गइल। इहाँ पहुँचत-पहुँचत बेरात हो गइल। से इहवें ठहर जाये के पड़ल।

—और जाना कहाँ है ?

—दुबे के छपरा।

—दुबे के छपरा तो यहाँ से बीस कोस पड़ेगा।

—जी सरकार, आजु दिन भर आ रात-भर चलके पहुँच जाइब जा। काल्ह रात के उहाँ नाचे के बा।

—किसकी बारात है ?

—उहाँ के एगो बबुआन के हऽ।

—कौन नाच नाचते तुम लोग ?

—असली भिखारी ठाकुर के बिदेसिया नाटक बारहो भाग।

—अच्छा ! और तुम लोगों का गिरोह कहाँ का है ?

—छपरा के।

—वाह !....पूछ रहा था इसलिए कि यहाँ सबसे बड़े जमींदार के यहाँ आजकल एक जलसा है। कल दीवानखाने में जिले की सबसे मशहूर पतुरिया का मुजरा हुआ था। आज तुम लोग रुक जाते, तो तुम लोगों का भी नाच हो जाता। छपरा के किसी गिरोह का नाच अभी तक इस गाँव में नहीं हुआ है।

—हमनी का कइसे रुक सकीलेंजा ? इज्जत के मामिला ठहरल। बीस कोस अभी चले के बा !

—वहाँ ठीक समय पर पहुँचाने का जिम्मा हमारा। सुबह दस बजे जिले को मोटर जाती है और जिले से दोपहर को बैरिया को। बैरिया से डेढ़ कोस है दुबे का छपरा। ठीक समय पर आराम

जाओगे। दिन का सीधा लो, रात का सीधा लो, पूरा किराया लो, और दस-बीस रुपया और ऊपर से मिल जायगा। बोलो।

—का कही। रउआं तबले नहाई-धोई। हमनीका तनी आपस में राय-बात कर लीं! बाकी मालूम मुसकिले पड़ता।

—मुश्किल कुछ नहीं है। ठीक समय पर आराम से तुम लोग पहुँच जाओगे।

—अच्छा, देखीं।

वैद्यजी को अब कोई जल्दी न थी और न किसी से भेंट हो जाने की शर्म।

दिन निकल आया। काफ़ी आदमी इकट्ठा हो गये। सबने कहा-सुना, तो नाचनेवाले राजी हो गये। वैद्यजी की खुशी का ठिकाना न रहा। बोले—रात लोग निरास होकर लौट गये थे, उन्हें बहुत बुरा लगा था। आज सब गुस्सा उतारना है। अरे, पतुरिया का नाच भी कोई नाच में नाच है, लौंड़ों का नाच देखो, वह भी विदेसिया नाटक!

कोई बोला—पतुरिया का खाके लौंड़ों का मुकाबिला करेगी? कमर हिलाने तक की तो तमीज नहीं, चार भांवर घूमी और हँफर-हँफर हाँफने लगी।

वैद्यजी दीवानखाने पहुँचे, तो मैदान साफ़ हो गया था। सब विदा हो चुके थे। चारों ओर भायँ-भायँ कर रहा था। पता लगा कि बड़े सरकार अभी सो रहे हैं। वैद्यजी कंगलों के भोज की तैयारी में जुट गये।

घड़ी-दो घड़ी दिन जाते-जाते कंगलों का कारवाँ पहुँचने लगा और फाटक के बाहर अपना डेरा-डंडा जमाने लगा। जिस पगडण्डी पर नजर डालो, एक कारवाँ चला आ रहा है। लगातार, उनका तांता लगा रहा, जैसे कोई अन्त ही न हो, जैसे सारा देश ही टूटा पड़ रहा हो। हमारे देश में कंगलो की संख्या भी कोई गिन सकता है! अन्न की गन्ध उन्हे कुत्तो की तरह जाने कहाँ-कहाँ से खींचे लिये आ रही थी।

ज्यों-ज्यों भीड़ बढ़ती गयी, वैद्यजी की आछें खिलती गयी। वह

ार-बार फाटक के बाहर आकर देख जाते। एक मेला ही लग गया ा। सब तरह के लोग, सब जाति के लोग। किस जाति में कंगले हीं हैं, या कंगलों की भी क्या कोई जाति होती है। सब रूप-रंग, सब उम्रों के, सब वर्णनों के नर-नारी, बालक-वृद्ध इकट्ठा थे। हाँ, नहीं था तो कोई साफ या साबित कपड़ा। ऐसे भी थे, जिनकी ओर देखने का साहस नहीं होता, मन तिलमिला उठता, रोंगटे खड़े हो जाते, आँखें बन्द हो जातीं, कै आने लगती। ऐसे भी थे, जिनकी ओर देखते ही रहने को जी करता, मन न अघाता, दुख होता कि यह हीरा, यह फूल कहाँ पड़ा है! भगवान की लीला अपने सभी रूपों में यहाँ विद्यमान थी, वीभत्स-से-वीभत्स, सुन्दर-से-सुन्दर, लेकिन एक चीज थी, जिसने सभी को एक पाँत में ला बैठाया था।

दोपहर होते-होते शोर उठने लगा। न जाने कितने दिनों, महीनों बरसों, जिन्दगियों के वे भूखे थे। ऊपर क्रुद्ध सूर्य और नीचे जलती धरती, आँखों से लपटें निकल रही थीं। बच्चे चीख रहे थे, बूढ़े बेहोश हो रहे थे और जवान शोर मचा रहे थे—जल्दी खाना दो! इस घाम में बैठाकर कब तक मारोगे?

इस शोर, इस चीख, इस बिलबिलाहट में ही वैद्यजी को जैसे एक मजा मिल रहा हो। वैद्यजी ऐसे खिलानेवालों में थे, जिन्हें मजा तब आता है, जब खानेवाला इतना भूखा हो कि उन्हीं को खा जाने पर उतारू हो जाय। किसी मालिक को अपने पालतू भूखे जानवर को खिलाते समय आपने देखा है? उसके हाथ के टुकड़ों पर जानवर को हबकते हुए आपने देखा है, जब टुकड़े के साथ वह हाथ भी हबक लेना चाहता है?

खाने के लिए पाँतें बैठने लगीं, तो जात-पाँत आ खड़ी हुई। जी हाँ, खाना ऐसी चीज ही है। अछूतों में भी छूत-अछूत का भेद यह खाना डाल देता है। जब तक भूखे हैं, सभी एक पाँत में खड़े हैं, बैठे हैं, चल रहे हैं, सोये हैं, दुख-सुख में शामिल हैं, लेकिन जैसे ही खाना आया, पाँत बँट जाती है। कई पाँतों में झगड़ा शुरू हो गया—

यह हमारी पाँत में कैसे बैठ गया, यह डोम है, हम चमार हैं!—और परसनेवाले खुश हैं! आज उनकी जात पूछनेवाला कोई नहीं, सब भिड़ा दिये गये हैं।

पूरे सहन में पचासों पाँतें लगी हैं। सब खा रहे हैं। एक-एक मिनट में पत्तल साफ़।....और लाओ! इधर लाओ!—शोर उठ रहा है। जैसे लूट मची है, जितना लूट सको! फिर जाने कब यह अवसर मिले, मिले, न मिले। पचासों आदमी परस रहे हैं।

हमारा देश कितना भूखा है! तमाशबीन इधर-उधर खड़े खाने का तमाशा देख रहे हैं, भूखी मानवता का तमाशा, जो खाने के सामने किसी भी जलालत को जलालत नहीं समझती। पत्तल में जो भी आ पड़ता है, वही साफ़। यह चिन्ता नहीं कि भात के साथ दाल होनी चाहिए, और दाल-भात के साथ तरकारी। जो आता है, तुरन्त पेट में पहुँचा दिया जाता है, खन्दक भरने में यह कौन चिन्ता करता है कि क्या डाला जा रहा है, कूड़ा-करकट, ईंट-पत्थर भी क्या, मकसद जैसे भी भर देना ही तो होता है।

बड़े सरकार दीवानखाने के बाहर ओसारे में टहल रहे हैं। कभी कभी नज़र उठाकर वह तमाशा देख लेते हैं। ऐसे अवसर उनकी ज़िन्दगी में कई बार आये है, आये हैं क्या, लाये गये हैं। ऐसे अवसरों का महत्व उनकी ज़िन्दगी में बहुत बड़ा रहा है। ये वह अद्भुत क्षण होते हैं, जब बड़े सरकार अपने को बहुत ऊँचाई पर खड़े पाते हैं। इससे कितना सन्तोष मिलता है, कितनी आत्मिक और नैतिक शक्ति उन्हें प्राप्त होती है, कितनी खुशी होती है, इसका कोई मुकाबिला बेचारे वैदजी की खुशी से नहीं हो सकता। असल में इसके हकदार अन्नदाता बड़े सरकार ही हैं, वैदजी को तो महज ग़लत-फ़हमी है।

*

शाम को गैसों की रोशनी से जगमग शामियाने में नाच शुरू हुआ। इतने बड़े, इतने शानदार शामियाने में नाचने का अवसर उन-जैसे ... । नाचनेवालों को कहाँ मिलता है। बेचारों ने अपना भाग्य

सराहा, जो यह मान मिला, और वैद्यजी के प्रति कृतज्ञता से इतने भर उठे कि उन्होंने मन-ही-मन यह निश्चय किया कि आज जान लड़ाकर नाचेंगे।

बिदेसिया का नाम सुनकर आज कल से दसगुनी भीड़ हुई थी। सारा बाग भर गया था। पहले तो डर के मारे लोग फ़र्श पर बैठ नहीं रहे थे, शामियाने के चारों ओर खड़े थे, लेकिन जब वैद्यजी ने कहा कि आज का नाच सिर्फ़ तुम लोगों के लिए है और बड़ों में कोई भी आनेवाला नहीं, तो ठाठ से लोग बैठ गये और वैद्यजी की तारीफ़ करने लगे। वैद्यजी ने यह-सब देखा-सुना, तो उन्हें वह ख़ुशी हुई, जो ज़िन्दगी में कभी भी नहीं हुई थी। आज के समारोह के सचमुच वह राजा थे। और उनके मन में बैठा कोई बार-बार यह कह रहा था कि ऐसा अवसर यह पहला ही नहीं, अन्तिम है, फिर नहीं आने का।

कोई मंच नहीं, नेपथ्य नहीं, पर्दा नहीं, दृश्य नहीं। समाजी तबला-सारंगी, जोड़ी लिये एक ओर खड़े हैं। उनकी बगल में सभी अभिनेता तैयार बैठे हैं। मामूली-से-मामूली, पुरानी-धुरानी पोशाक, फिर भी स्वांग की कुछ इज्जत तो उन्होंने रखी ही है, उन्हें देखकर कोई भी पहचान सकता है कि यह धोती, कुरता, सदरी पहने और मुरैठा बांधे और हाथ में छड़ी लिये और चश्मा लगाये बिदेसिया है। यह साधारण गृहिणी के कपड़े पहने, उदास बैठी, उसकी प्यारी (पत्नी) है। यह लाठी में गठरी लटकाये हुए जो है, बटोही है। यह शोख पेशवाज पहने रंडी है। और यह देवर है। लौंडे ही प्यारी और रंडी भी बने हुए हैं। समाजी ही सूत्रधार, दिग्दर्शक, नैरेटर और प्राम्प्टर हैं।

बन्दना के बाद समाजियों ने एक स्वर से घोषणा की—

नाटक करौं बिदेसियानामा।
रसिकजनों को है सुखधामा।।
याते बढ़े प्यारी से प्रेमा।
पत्नी करै पतिव्रत नेमा।।

अब बिदेसिया और प्यारी सामने आये। बिदेसिया बोला—

मन हमार परदेस जायके चाहुव अब ही प्यारी ।
जल्दी से तैयार करहु किछु रसवा के बटसारी ॥
फिरती बेर तोहरे पहिरन के कीनब बंगला सारी ॥
कहैं भिखारी खुस रहऽ घर में मत करऽ सोच हमारी ॥
हो प्यारी, मति करऽ सोच हमारी ॥

प्यारी बोली—

हाय नाथ तोंहि सौंपि दीन्ह मोर भाई, बाप, महतारी ।
सत के बन्धन तोड़ि के स्वामीजी मति करहु बरियारी ।
हमें-तुम्हें सवबन्ध विधाता जोड़ी रचेउ बिचारी ॥
कहैं भिखारी कुसल करिहैं नित गनपत गौरी पुरारी ॥
हो स्वामीजी, गनपत गौरी पुरारी ॥

—हे स्वामीजी, सुनतानीं । रउरा जाये के नाव लेत नु बानी; वऽहमार मन मादों का नाव अइसन डगमग-डगमग डोलत बाटे !

समाजी एक स्वर में चीख पड़े—आरे, तनी डोल के बतावऽ, कइसे डगमग डगमग डोलत बाटे !

और प्यारी ने जो मन-रूपी नाव के डोलने का अभिनय किया, तो दर्शक लहालोट हो गये । प्रशंसा के शोर से मण्डप गूँज उठा।...

बिदेसिया धोखा देकर चला गया । प्यारी विलाप करने लगी—

कइके गइलें बलमुआ निरासा ।
कइके....
गवना कराइ सैंया घर बइठवले,
गइलें बिदेस हमें कइके बेकासा ।
कइके....
सैंया के सुख हम कुछउ न जनलीं,
बिचही बिधाता लगवलें तमासा ।
कइके....

और समाजी चीख पड़े—आरे, कइसन बेकासा हावेला हो, तनी रचि के बतावऽ !

और बेकासा की मूरत बनी प्यारी को लोगों ने देखा, तो कलेजा थाम लिया।

विलाप जारी रहा—

चारों ओरि चितवति बीतत रात
उन दिन कवहुँ ना लउके अँजोर।
कहत भिखारी अब जियल कठिन बा
नयना ढरके ला लोर
जब से विदेस गइलें साजन मोर॥

और समाजी चीख पड़े—आरे, कइसे ढरके ला लोर हो, तनी ढरका के दिखावऽ!

और प्यारी ने आँखों से बहते आँसुओं को अभिनय में उतारा, तो कितनों की पलकें गीली हो गयीं।

विलाप जारी रहा, करुण रस की वर्षा होती रही—

गवना कराइ सैंया घर बइठइलें से,
अपने गइलें परदेस रे बिदेसिया।
चढ़ती जवनियाँ बैरन भइली हमरी से,
के मोरा हरिहे कलेस रे बिदेसिया।...
घरी रात गइले पहर रात गइले से,
धधके करेजवा में आगि रे बिदेसिया।
अमवाँ मोजरि गइले लगले टिकोरवा से,
दिन पर दिन पियराय रे बिदेसिया।
एक दिन बहि जइहें जुलुम की अँधिया से,
डार-पात जइहें भहराय रे बिदेसिया।...

विलाप खतम हुआ। मर्दों के पीछे बैठी और खड़ी स्त्रियाँ सिसक रही थीं कि समाजी ने दृश्य-परिवर्तन और बटोही के प्रवेश की घोषणा की—तेहि अवसर बटोही एक आये,...

अब प्यारी बटोही से अपने बिदेसिया स्वामीजी के नाम संदेश पूरबी धुन में भेजती है—

पहिले तऽ कहिहऽ हो सारे मोर सनेसवा से,
ताहि पीछे बारहो बियोग रे बटोहिया ।
जेकर तिरिअवा रामा बने-बने बिलखे से,
सेई कइसे करे रस-भोग रे बटोहिया ।
अगिया लगाऊँ रामा राजा की नोकरिया से,
कठिन करेज हुवे थोर रे बटोहिया ।
तोरि धनि भइली रामा बन की कोइलिया से
कुहकति फिरे चहुँ ओर रे बटोहिया ।

और जैसे बाग के पेड़ों पर कोयल कुहुक उठी । सब लोग चिहा-चिहाकर ऊपर देखने लगे ।

तभी एक हल्की खलबली मच गयी । हर आदमी खड़ा हो गया और उसके मुँह से एक ही शब्द कुछ हैरत, कुछ विनय और कुछ डर के भाव से निकल पड़ा—छोटे सरकार !

वैद्यजी के कानों तक भनक पहुँची, तो लपककर लल्लनजी के सामने आये । बोले—आइए, आइए, यहाँ बैठिए, छोटे सरकार !

अब नाच भी बन्द हो गया । समाजी, अभिनेता, सभी छोटे सरकार-जैसे महत्वपूर्ण व्यक्ति की ओर देखने लगे । बकुले के पर की तरह सफ़ेद तंजेबी धोती और कुर्ता और नफ़ीस चप्पल पहने, एक हाथ में सिग्रेट का टिन और दियासलाई और दूसरे में सफ़ेद रूमाल लिये लल्लनजी लोगों के बीच ऐसा लग रहा था, जैसे कौओं के बीच हंस ।

वह मुस्कराकर बोला—नाच क्यों बन्द हो गया ? आप मेरी चिन्ता न करें, मैं बैठ जाऊँगा । लोगों से बैठ जाने को कहिए और नाच चालू रखिए ।—और वह वैद्यजी के पीछे-पीछे जाकर बैठ गया ।

लोग बैठ गये । नाच फिर शुरू हुआ । लेकिन एक ही आदमी के कारण जैसे वातावरण ही बदल गया । वह सीधी, बेलाग, स्वस्फूर्त प्रशंसा के बोल जाते रहे, वह प्राकृतिक उल्लास, वह खुले हुए आसमान में उड़नेवाले पक्षियों की तरह लोगों की चहक और आज़ाद दिलों की वहक

जाती रही। नाचनेवालों के पैर भी जैसे भारी हो गये, स्वर सहम गये।

यह-सब देखकर लल्लनजी के मन में आया कि यहाँ से हट जाना चाहिए। वह अपने कमरे में पड़ा-पड़ा शकुन्तला को याद कर रहा था और रूठी नींद को मना रहा था कि प्यारी की सुरीली, सोज़-भरी, चुम्बक की तरह खींचनेवाली और मन को मुग्ध कर देनेवाली आवाज़ उसके कानों में पड़ी थी। यह बारहो महीने मोहनभोग खानेवाले के लिए सत्तू की सोंधी-सोंधी सुगन्ध की तरह थी। वह तड़प उठा था और वह धरती का संगीत उसे कोठे से नीचे खींच लाया था। उसे क्या मालूम था कि यह वह सुगन्ध है, जो उस-जैसे आदमी की गन्ध पाते ही उड़ जाती है; यह वह संगीत है, जो उस-जैसे आदमी का साया पड़ते ही मुर्झा जाता है। उसे अफ़सोस हुआ कि कमरे में पड़े-पड़े ही क्यों न वह सुनता रहा, क्यों यहाँ आ गया? लेकिन आकर अब तुरन्त वापस जाना भी तो ठीक नहीं। और उसे यह भी उम्मीद हुई कि थोड़ी देर में शायद लोग धीरे-धीरे उसकी उपस्थिति को भूल जायँ और फिर सब-कुछ हमवार हो जाय। और फिर उसे एक अजीब बात सूझ गयी। वह खुद ही खुलकर प्रशंसा करने लगा और जेब से नोट निकाल-निकालकर फेंकने लगा। वह आस-पास बैठे हुए लोगों को उत्साहित भी करने लगा। यह-सब ऐसी अजीब और हैरतगेज़ बातें थीं कि पहले तो लोग और भी डर गये कि यह छोटे सरकार को क्या हो गया है! लेकिन कल और आज के छोटे सरकार में जो अन्तर आ गया था, वह उन भोले-भाले लोगों को क्या मालूम? मुहब्बत वह आग है, जो दिल के हर ग़लीज़ को भस्म कर देती है, राक्षस को भी इन्सान बना देती है।

और बहुत देर बाद जब लोगों को सचमुच विश्वास हो गया कि छोटे सरकार रंग में हैं, तो जैसे सब बन्धन कटकर गिर गये। समाजी और नाचनेवाले भी अपने रंग में आ गये। लल्लनजी ने यही चाहा था। लेकिन अब अचानक उसे ऐसा लगा कि यह स्थिति तो और भी बरदाश्त के बाहर है। उसकी उपस्थिति को लोग इस तरह फ़रामोश कर जायँ,

उसके संस्कार यह कैसे सहन कर सकते थे ? वह मन-ही-मन गुस्से से जलने लगा। लेकिन लोग अब उसे बिलकुल भूल चुके थे और नाच में रम गये थे।

थोड़ी देर बाद तबलची लल्लनजी के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो बोला—हुजूर, हमनी का, गँवार-गुरबा हवींजा। हमनी के नाटक का। हुकुम होखे तऽ नाच दिखाइंजा।

लल्लनजी ने कहा—नहीं, यही चलने दो।

तबलची हाथ से जमीन छूकर बोला—जो हुकुम।

दृश्य बदल चुका था। मंच पर रण्डी, विदेसिया और बटोही थे। बटोही बिदेसिया को डांट-फटकार सुना रहा था, लल्लनजी को लग रहा था कि कोई उसे ही डांट-फटकार रहा है—

> बहुत दिनन से तू कुमति कमइलऽ
> सुमति के सुपथ चलइबऽ कि ना ?
> कहत भिखारी तू कहला के लाज राखऽ
> पुरखन के नइया बढइबऽ कि ना ?...

१५

एक हफ्ता बीत गया ।

सुनरी के ये दिन बड़ी बेकली से कटे । एक पल को भी चैन न रहा । बारिश की रात में जैसे रोशनीवाला घर पतंगों से भर जाता है, वैसे ही सुनरी के मन में तरह-तरह के व्याकुल करनेवाले विचार भर गये थे और हरदम मनमना रहे थे । सुनरी को पहले डर लगा था कि कहीं छोटे सरकार बुलायेंगे, तो वह क्या करेगी । बदमिया की बात उसके मन में जम गयी थी और उसने मन-ही-मन मनाया भी था कि वह घड़ी न आये, जब उसे छोटे सरकार के सामने जाना पड़े, यद्यपि उसे पूरा विश्वास था कि छोटे सरकार बुलायेंगे जरूर । लेकिन जब छोटे सरकार ने सचमुच ही उसे नहीं पुकारा, और एक-एक दिन करके हफ्ता बीत गया और अब छोटे सरकार के जाने का दिन आ गया, तो सुनरी को अचानक ऐसा लगा, जैसे उसके हाथ का तोता उड़ गया । उसे शक हुआ कि कहीं बदमिया ने ही तो कुछ लगा-बुझा नहीं दिया । बदमिया को कई बार छोटे सरकार बुला चुके थे । उसके लौटने पर कई बार सुनरी ने पूछा था, कुछ मेरे बारे में कहते थे ? लेकिन बदमिया ने कुछ न बताया था, कह दिया था, नहीं तो । सुनरी को इसपर विश्वास नहीं होता था, यह कैसे हो सकता है ? जरूर बदमिया उसे अँधेरे में रखकर अपना उल्लू सीधा करना चाहती है ।

एक दिन योंही बदमिया पर बिगड़ गयी । बोली—बदामो बहन, मुझे तो तू मना कर रही थी, अब देखती हूँ...

बदमिया तुनककर बोली—कोई बुलायगा, तो जाना ही पड़ेगा !

बदमिया ने पहले ही सुनरी के मन की बात भाप ली थी और उसे एक प्रकार की खुशी हुई थी । एक बार इसी सुनरी के कारण बदमिया को जो घोर अपमान सहना पड़ा था, वह इतना-सब होने पर भी भूली

न थी। अब जो उसने देखा कि सुनरी के मन में उसके प्रति एक भ्रम पैदा हो गया है, तो वह उसे बनाये ही रखना चाहती थी। इससे उसके कलेजे को ठंडक पहुँचती थी।

उसकी ऐसी बात सुनकर सुनरी तो हतप्रभ हो गयी। उसे बदमिया से अब ऐसी उम्मीद न थी। वह सोचती थी कि अब वह सखी हो गयी है और कोई भी बात उससे न छिपायेगी। उसी की राय पर उसने अपना पाँव पीछे हटाया था और अब देखती है कि वह उसकी जगह लेने पर उतारू है और वह भी उसे जलाकर। भोली सुनरी बदमिया के जाल में आसानी से फँस गयी। मुँह लाल करके बोली—तो इसी लिए तूने मुझसे कहा था कि....

—किसी के कहने में कौन है ?—बदमिया ने व्यंग-वाण छोड़ा—तू का मुझसे राय लेके छोटे सरकार के पास जाती थी ?

सुनरी विलमिला उठी। बोली—मैं राय देनेवाली कौन होती हूँ ! लेकिन तुझे कुछ तो सरम होनी चाहिए !

—काहे की सरम ?—बदमिया ने आग पर घी छोड़ा—सरम नाम की कोई चीज इस घर में रह गयी है का ? तू बड़ी हयादार बनती है, तो चुपचाप काहे नहीं बैठती, काहे को दूसरे पर जलती है ?

सुनरी के होश उड़ गये। मारे गुस्से के काँपने लगी। लेकिन इसके आगे कुछ कह न सकी। इतना ही बोली—जा, तुझसे मैं नहीं बोलूँगी !

—बला से !—बदमिया झमककर वहाँ से उठ गयी।

सुनरी बड़ी देर तक चुपचाप रोती रही। फिर उसने एक निश्चय किया, जो हो, अपनी आँखों के सामने वह यह-सब न चलने देगी।

और तभी से वह छोटे सरकार के पास एक बार जाने की सोचने लगी। उसके पहले के व्यवहार याद कर उसे हिम्मत बँधती, लेकिन बदमिया की बातों का ख्याल आते ही हिम्मत टूट जाती, कहीं बदमिया ही की तरह उसे भी कुछ छोटे सरकार ने कह दिया, तो ? लेकिन न भी जाय, तो कैसे ? सौत छाती पर मूँग दले, सुनरी-जैसी निरीह लड़की के लिए भी बरदाश्त से बाहर था। इसी हैस-बैस में हफ़्ता गुजर गया। कल छोटे सरकार चले जायँगे। मन की बात मन में रह गयी, तो

निस्तार कहाँ ? बदमिया चुड़ैल जलाकर राख कर देगी।

*

दिन का एक बजा था। खाना-पीना हो चुका था। नौकरानियाँ कमर सीधी कर रही थीं। रानीजी सो गयी थीं। मुंदरी उन्हें पंखा झल रही थी। लल्लन बिस्तर पर पड़ा-पड़ा टाल्स्टाय का 'अन्ना क्रेनिना' पढ़ रहा था। शकुन्तला ने उसे यह उपन्यास दिया था और कहा था कि उसका यह सबसे अधिक प्रिय उपन्यास है। अन्ना उसकी आदर्श है, अन्ना पढ़कर लल्लनजी शकुन्तला को समझना चाहता था। वह जल्द-से-जल्द यह उपन्यास पढ़ डालना चाहता था, लेकिन इधर जलसे और माँ को लेकर ऐसा उलझा रहा कि फ़ुरसत ही न मिलती थी।

बदमिया उसके सिरहाने खड़ी पंखा झल रही थी। बड़े सरकार की ओर से बदमिया को आजकल छुट्टी थी। वह हवेली में इधर लल्लन के आने के बाद एक दिन भी न आये थे और न उन्होंने बदमिया को ही दीवानखाने में बुलाया था। उस घटना के बाद बदमिया को दूर तक यह उम्मीद न थी कि छोटे सरकार उसे अब कभी अपनी ख़िदमत में बुलायेंगे। इसी लिए मुंदरी ने जब उसे छोटे सरकार का परवाना दिया, तो वह दहल गयी। उसे मालूम न था कि अब कौन-सा अपमान बाक़ी रह गया है। वह डरी हुई दरवाज़े पर जा सिर झुकाकर अपराधी की तरह खड़ी हुई, दिल धड़क रहा था कि छोटे सरकार की मीठी आवाज़ सुनायी दी—अन्दर आ, वहाँ क्यों खड़ी है ?

इस अचानक के अनपेक्षित स्वागत से बदमिया का कलेजा धक से कर गया। अंगारे के बदले उसके आँचल में जैसे फूल आ गिरा हो। वह दो क़दम आगे बढ़ गयी उसी तरह सिर झुकाये हुए।

छोटे सरकार ने कहा—ये कपड़े समेटकर धोबी के यहाँ भेजवा दे और बिस्तर की चादर और ग़िलाफ़ बदल दे !

इस आज्ञा में भी अनपेक्षित कोमलता थी। बदमिया मन-ही-मन कुछ गुनती कपड़े समेटने लगी।

छोटे सरकार ने कहा—बदमिया, उस दिन का हमें अफ़सोस है।

मालिक लौंडी से अफ़सोस ज़ाहिर करे, यह जितना अजीब है, उतना

ही ख़तरनाक और अर्थपूर्ण । वह काम करती रही और गुनती रही ।

सच पूछा जाय, तो लल्लनजी ने उसे ही जान-बूझकर बुलाया था । इधर हज़ारों बातें उसके दिल को कोंचती रहती थीं, उनमें एक सुनरी की बात भी थी और एक बदमिया की भी । उसका मन कह रहा था कि बदमिया का उस तरह अपमान कर उसने एक बहुत बड़ा ज़ुल्म उसपर किया है । इसका उसे बहुत अफ़सोस हो रहा था । नाहक़ बेचारी को पानी-पानी कर दिया । उसके मन मे कई बार यह बात उठी थी कि उससे माफ़ी माँग ले ।....और भोली सुनरी के प्रति तो वह लज्जा अनुभव कर रहा था । उससे भी वह एक बार बात करना चाहता था, लेकिन सुनरी की निरीह आँखों की याद जब आती थी, तो उसकी समझ में न आता था कि उससे वह कैसे बातें कर सकेगा, उन निरीह आँखो का मुक़ाबिला करना अब उसे बहुत मुश्किल लग रहा था। इसलिए पहले वह बदमिया से निपट लेना चाहता था । लौंडी की किसी बात का ख्याल करना, न करना, सब बराबर होता है, लेकिन लल्लन का मन न मानता था । वह आजकल प्रायश्चित की मनःस्थिति में था, जहाँ तक सम्भव हो, वह अपने एक-एक दाग़ को धो डालना चाहता था।

उसके मन मे आया कि वह बदमिया से सीधे माफ़ी माँग ले, लेकिन मुँह से बात न निकली । वह बोला—बहुत नाराज़ है न ?

बदमिया कई बार कुछ विशेष क्षणों मे बडे सरकार से भी इसी तरह की बातें सुन चुकी थी । इस तरह की बातों का कोई मतलब नहीं होता, यह वह अच्छी तरह जानती थी । कपड़े वह समेट चुकी थी । उठाने लगी, तो लल्लनजी बोला—बोलती क्यों नहीं ?

बदमिया के मन में आया कि रो दे । यह खेलवाड देखते-देखते उसका मन पक गया था । मालिक का मन, कभी प्यार करे, कभी दुतकार दे । वह कुत्ता होती, तो कितना अच्छा होता ! इन बातों का कोई ज्ञान तो न होता । भगवान ने उसे आदमी क्यो बनाया ?

लल्लनजी ने हाथ बढाकर उसके कन्धे पर रख दिया । बदमिया की हिस मर चुकी थी, स्पर्श का कोई प्रभाव अब नहीं होता । यों लल्लनजी के हाथ में कोई सन्देश भी न था । वह बोला—मेरी ख़ातिर यह बात मन

से निकाल देना। सचमुच मुझे अफ़सोस है। कह दे, निकाल दिया।

अब बदमिया को बोलना ही पड़ा। हुक्म वह कैसे टाल सकती थी? कहा—छोटे सरकार ने ठीक ही किया था। दोस मेरा ही था।

—नहीं, तेरा दोस नहीं था। इस घर का जो चलन है, उसे देखते, तूने जो-कुछ किया, वह ठीक ही था। तू किस हालत में यहाँ पड़ी है, मैं अब समझ रहा हूँ।—लल्लन बिल्कुल पिघलकर बोला—तू जवान है, खूबसूरत है, किसी से शादी क्यों नहीं कर लेती? क्यों इस तरह जिन्दगी खराब कर रही है?

—मैं लौंडी हूँ, गुलाम हूँ, मेरे चाहने से कुछ नहीं हो सकता।

—मेरे चाहने से तो कुछ हो न सकता है न?

—मैं कैसे ना कहूँ। आप छोटे सरकार हैं और मैं लौंडी बड़े सरकार की हूँ।

—तू भाग क्यों नहीं जाती किसी के साथ? मैं तुझे कुछ रुपये दूँगा। तू कोशिश करके आज़ाद हो जा।

ये कैसी बातें हैं! बदमिया ने आँखें उठाकर देखा।

लल्लन ने कहा—सच कहता हूँ! मैंने एक ज़ालिम की तरह तुझे ज़लील किया था। अब मैं तेरी मदद करना चाहता हूँ। सोचकर मुझे बताना। जा, कपड़े नीचे डालकर आ और बिस्तर ठीक कर दे।

बदमिया के लिए यह एक समझ में न आनेवाली बात थी। उसे बड़ा ताज्जुब हुआ। यह कैसी बात है? यह कैसे मुमकिन है? साँप का बच्चा सँपोला होता है। भेड़िये की माँद में यह गाय का बछड़ा कहाँ से आ गया? उसे विश्वास न हुआ।....कोई और बात है। कोई गहरी बात है। वह सोचने लगी, कहीं ऐसा तो नहीं कि छोटे सरकार मुझे इस घर से निकाल देना चाहते हैं। सुनरी के साथ उनके लग-लगाव की बात खाली मुझे ही मालूम है। मुझे निकालकर अकेला घर छकेला मारना चाहते हों। मुंदरो फुआ से यहाँ कौन नहीं डरता? सोचते हों, कहीं लगा न दूँ।....

तभी सुनरी आ गयी थी और बदमिया ने अचानक ही अपना कलेजा ठंडा करने को एक परपंच रच लिया था।

दूसरे ही दिन बदमिया खुल गयी, वह हँस-हँसकर लल्लन से बात करने लगी और छिपा-छिपा मजाक़ भी। एक ऐसे सुन्दर नौजवान के पास खड़ा रहना ही जैसे उसके लिए बड़े भाग्य की बात हो। उसने कहा—बियाह का तो कहते हैं, लेकिन कौन मुझसे करेगा ?

लल्लन ने कहा—क्यों, तुझसे बियाह करने को तो हज़ारों तैयार हो जायँ। तू ज़रा किसी नौजवान से बात तो चला।

—खूब कही बात चलाने की ! यहाँ तो एक नौजवान की सूरत देखने को तरस गये। छोटे सरकार, आपको मालूम नहीं कि मुझपर कितनी कड़ी पाबन्दी है। हवेली से निकली, तो दीवानखाने। और कहीं आने-जाने का हुकुम नहीं। मैं तो किसी दूसरे मरद से बात करने तक को तरस गयी। मैं बिल्कुल पिंजड़े में बन्द हूँ।

—मुँदरी को साट, वह कोई तरकीब निकाल देगी।

—पहले वह अपनी सुनरी के लिए तो करे।

—सुनरी के बारे में भी मैंने उससे कहा है। वह फ़िक्र में है।

सुनकर बदमिया अवाक् हो गयी। तो सच ही छोटे सरकार सच बोलते हैं ? और कोई बात नहीं है ?

और लल्लन ने सूटकेस से निकालकर दो सौ के नोट उसके हाथ में थमाते कहा—रख ले, मौक़े पर काम देगा। कुछ गहने भी तो तेरे पास हैं। रहता, तो और मदद करता। मुँदरी से भी मैं तेरे बारे में कहूँगा। वह ज़रूर कोई इन्तज़ाम करेगी। क्या औरत है वो !

बदमिया खामोश हो गयी, जैसे इसके आगे कुछ कहने को रह ही न गया हो। वह एकटक कई क्षणों तक लल्लन की ओर देखती रही, जैसे बदले हुए इन्सान को पहचान न पा रही हो। फिर अचानक उसकी आँखों में आँसू आ गये। वह भरे गले से बोली—आप कितने अच्छे हैं !

लल्लन हँस पड़ा। बोला—मैं बड़ा बदमाश हूँ, तू जानती है।

—सोचतो थी, लेकिन अब सोचना भी पाप है। कौन कहेगा कि आप बड़े सरकार-जैसे बाप के बेटे हैं !

लल्लन क्षण-भर को अप्रतिभ हो गया। बदमिया उसका मुँह ताकती रह गयी। ऐसी बात कहने की हिम्मत उसे कैसे हुई ? एक अच्छे

इन्सान से शायद किसी को डर नहीं लगता ।

लल्लन ने कहा—अच्छा, अब तू जा ।

और लल्लन ने एक दिन भी, एक बार भी सुनरी को न बुलाया । मोहब्बत की मारी सुनरी, उसपर सौतिया डाह । बेचारी सूखकर कांट हो गयी । बदमिया देखती और दुख करती, लेकिन उसके पास न जाती । उसे अपने पर क्षोभ होता कि क्यों उसने ऐसा किया । सुनरी-जैसी जीव का जलाने को होती है ! बेचारी पगली !

जब सहा न गया, तो एक दिन उसने लल्लन से कहा—सुनरी से एक बार मिलेंगे भी नहीं ? बेचारी घुलकर मांड़ हो रही है । आपसे वह कितनी मोहब्बत करने लगी थी !

चौंककर लल्लन बोला—तुझसे उसने कुछ कहा है क्या ?

—औरत की बात औरत से नहीं छिपती । हममें तो बड़ा गहरा सह लापा हो गया था । लेकिन इधर बोलती भी नहीं ।

— क्यों ?

—मैंने ही उसे गलतफहमी में डालकर जला दिया है । सोचती है, छोटे सरकार का मन मैंने फेर दिया है ।

—तूने ऐसा क्यों किया ? तुझे मालूम है....

—औरत का दिल । मुझे बड़ा दुख हो रहा है अब । लेकिन उसके पास जाने की हिम्मत नहीं होती । मुंह ही नहीं रहा । आप एक बार उससे मिल लीजिए । समझा दीजिए । नहीं मर जायगी ।—और बदमिया रो पड़ी—मैंने बड़ा गुनाह किया है, कहीं कुछ हो गया, तो मुंह दिखाने-लायक न रहूंगी ! बड़ी चुप्पी है । घुल-घुलकर मर जायगी, मुंह न खोलेगी ! आप एक बार उसे बुला लीजिए ।

—तुमसे बड़ा गुनहगार मैं हूं!....उसे जरा भी समझ नहीं थी कि.... सुनरी की उन मासूस आंखों को भूलना आसान नहीं ।....शेर-भालू को मारने में कोई दुख नहीं होता, लेकिन खूबसूरत पंछी को मारकर ऐसा कोई आदमी नहीं, जो एक क्षण को दुखी न हो जाय । सुनरी एक पंछी ही तो है । कितनी आसानी से मेरे जाल में आ गयी !

—हम लौंडी कर ही का सकती हैं ? हमें फंसाने के लिए आप-जैसे

लोगों को जाल की का जरूरत है ? हम तो वैसे सो फँसी-फँसायी हैं !....
जो हो गया, उसके बारे में सोचना बेकार है। आप एक बार उससे जरूर
मिल लीजिए। कुछ तो तसल्ली हो जायगी।

—मैं भी यही सोच रहा हूँ।

लेकिन वह बुला न सका। देखते-देखते वक्त गुजर गया। विदा का
दिन आ गया। बदमिया रोज तकाजा करती, आपने उसे बुलवाया
नहीं। और लल्लन कह देता, आज बुलाऊँगा। लेकिन बुला न पाता।
बड़े का छोटे के सामने अपना क़सूर मानना कितना मुश्किल होता है !
बाज कबूतर से फ़रियाद करे, ऐसा कभी सुना गया है ! लेकिन लल्लन
सुनरी के लिए एक दर्द महसूस करता है। वह दर्द उतना ही गहरा है,
जितनी सुनरी मासूम है। काश, सुनरी उतनी मासूम न होती, लल्लन
बार-बार सोचता, मासूम को सताना कितना दर्दनाक होता है ! बे-
जबान के दर्द को नापने का साधन इस संसार में कोई है ? लल्लनजी ने
जाने कितनी लड़कियों के साथ यह खेल खेला था, लेकिन और किसी के
लिए इतना पश्चाताप उसे नहीं था। यह-सब वह याद करता, तो उसे
बहुत अफ़सोस होता। ओह, वह कितना कमीना था ! वह शकुन्तला के
प्रति कृतज्ञ होता कि उसने उसे इन्सान बना दिया, नहीं तो वह भी बड़े
सरकार की ही तरह एक जानवर बनकर रह जाता। ऐश और ऐश ! कितनी
लड़कियो की जिन्दगी का खून ! थुः !

लल्लन की उम्र अभी आपरेशनेबुल थी। एक आपरेशन ने ही उसकी
जिन्दगी बदलकर रख दिया। शुक्र है खुदा का !

कई बार उसने सोचा कि टाल जाय। आखिर वह क्या कहेगा सुनरी
से ? उसकी शादी के बारे मे वह मुंदरी से कह ही चुका है, रुपया भी दे
दिया है। उसकी शादी हो जायगी। वह सब-कुछ भूल जायगी।
···लेकिन फिर उसे लगता कि न भूले, तो ? शकुन्तला को क्या वह
कभी भूल सकता है ? और उसने तै किया कि जाते वक्त जल्दी-जल्दी में
उससे मिल लेगा और दो बातें कर लेगा।

*

सुनरी ने बहुत देर तक इन्तजार किया कि बदमिया किसी तरह दो

छन को निकले, तो यह जाय। लेकिन बदमिया न निकली। लल्लन एकाग्र हो पढ़ रहा था और बदमिया एकाग्र हो पंखा झल रही थी।

बहुत देर इन्तज़ार करने के बाद सुनरी ने जब देखा कि समय निकला जा रहा है और थोड़ी देर बाद हवेली फिर जाग उठेगी और चारों ओर आवा-जाही शुरू हो जायगी, तो हिम्मत करके, सब लाज-हया त्याग कर वह चल पड़ी।

दरवाज़ा भिड़ा हुआ था। उसने कांपती हुई आँखों से झांककर देखा इस उम्मीद में कि....लेकिन वैसा कुछ मिला नहीं। दो छन ठिठकी वह सोचने लगी। दिल धक-धक कर रहा था। कंठ सूख रहा था। पांव थरथरा रहे थे। और जाने कैसे अनायास उसे खांसी आ गयी।

दोनों चौंके। यह खांसी पहचानी हुई थी। सुनरी बोलती कम, खांसती ज्यादा है, जैसे बोल रास्ता न पा खांसी बन जाता है। लल्लन ने कहा—यह सुनरी खांसी है ?

—मालूम तो देता है। देखूं ?

लल्लन उठकर बैठ गया। उसकी भी क़रीब-क़रीब वही हालत हुई, जो सुनरी की थी। बोला—हां।

बदमिया ने दरवाज़ा खोला और सुनरी को देखकर, मन-ही-मन हुलस कर, कतराकर बाहर निकल गयी।

लल्लन ने सामने दरवाजे के बाहर सुनरी को खड़ी देखकर कहा—आ, सुनरी।

सुनरी के पांव नहीं उठ रहे थे। रुलाई फूट रही थी। जी में आता था कि लौट जाय। वह काहे आयी ? बदमिया इस तरह रास्ता साफ़ छोड़कर काहे चली गयी ? उसने काहे नहीं बदला लिया ? काहे नहीं छोटे सरकार ने हमें भी बदमिया की तरह ही बेहुरमत किया ?

—आ, सुनरी। मैं तो तुझे बुलाने ही वाला था।

सुनरी की आँखों से टप-टप आंसू चूने लगे। गुस्सा क्या होता है, मान क्या होता है, कमबख्त सुनरी को क्या मालूम ? और मालूम भी होता, तो क्या कर पाती छोटे सरकार के सामने ! लाख भोली हो, सुनरी इतना तो जानती थी। रोने की बात दूसरी है, बड़ों के सामने छोटों के

रोने से बड़ों का मान बढ़ता है । इसी लिए रोने का हक़ नहीं छीना गया ।

—आ, अन्दर आ न !

इसमें हुक्म की बू साफ़ आ गयी । छोटे सरकार की आदत एक ही बात को कई बार कहने की अभी नहीं है, सो उस परिस्थिति में भी स्वर का बदलना अस्वाभाविक नहीं था ।

सुनरी के काँपते पाँव बढ़े । अन्दर आकर खड़ा नहीं रहा गया, तो फ़र्श पर बैठ गयी ।

—तिपाई पर बैठ न !

सुनरी नहीं उठी । सिर झुका लिया । आँसू बह रहे थे ।

थोड़ी देर तक खामोशी छायी रही ।

लल्लनजी बोला—मुझे बड़ा अफ़सोस है, सुनरी ।

सुनरी चुपचाप रोती रही ।

—मैंने तुझे धोखे में रखा । तुझसे झूठ बोला कि....

सुनरी रोती रही ।

—मुझे बड़ा अफ़सोस है, सुनरी, तूने इतना भी न समझा...

सुनरी रोती रही ।

—मैं चाहता, तो तुझे वैसे ही रख लेता, जैसे कि बड़े सरकार इतनों को पाले हुए हैं...

सुनरी रोती रही ।

—सुनरी, मैं तेरी ज़िन्दगी बरबाद कर देता, देखती है न यहाँ ।

सुनरी रोती रही ।

—सुनरी, मैं हैवान था, बदमाश था...

सुनरी रोती रही ।

—मुझे माफ़ कर दे, सुनरी । तेरे साथ मैंने बड़ा अन्याय किया है ।....

सुनरी की रुलाई के तार बँध गये ।

—तू बड़ी भोली, बड़ी खूबसूरत, बड़ी प्यारी लड़की है, तुझे बरबाद करके भी मुझे ज़रूर दुख होता....

सुनरी सिसकने लगी ।

—सुना कि तूने वह सब सच मान लिया। नहीं, सुनरी, बदमिया ने जो तुझे बताया था, वही सच है। वह यहाँ का रंग-ढंग समझती है। मेरे लिए यह एक खेल था।....

सुनरी सिसकती रही।

—मैंने मुँदरी से तेरी शादी के बारे में कहा है। वह तेरी शादी करा देगी। तू जितनी जल्दी यह हवेली छोड़ दे, अच्छा। मैं रहता, तो खुद तेरी शादी करा देता, तुझे कुछ देता भी। फिर भी मैं हमेशा तेरा ख्याल रखूँगा। तुझे दुखी न देख सकूँगा।

सुनरी सिसकती रही।

—और बदमिया बुरी नहीं है। उसकी हालत में रहने वाली कोई भी लड़की पागल हो सकती है। वह तेरी हमदर्द है। तू उससे मिल-जुलकर रहना। मुँदरी से उसकी शादी के बारे में भी कहा है। बेचारी की बाक़ी जिन्दगी सुधर जाय।

सुनरी सिसकती रही।

—चुप कर, सुनरी।—लल्लनजी ने हाथ बढ़ाकर उसके सिर पर रख दिया।

सुनरी की रुलाई जोर से फूट पड़ी।

—कहीं कोई तुझे इस तरह रोते देख ले, तो अच्छा न होगा। चुप कर।—और लल्लन ने सूटकेस खोलकर एक कंघी, एक आईना, दो चोटियाँ, एक दर्जन क्लिप, दो रूमाल, दो साड़ियाँ और ब्लाउज के कुछ रंग-बिरंगे टुकड़े निकाल कर उसकी ओर बढ़ाकर कहा—ये सामान मैं एक समय तुझे फँसाने के लिए लाने वाला था, लेकिन आज इन्हें एक...—लल्लनजी के मुँह से 'भाई' शब्द नहीं निकला।

थोड़ी देर बाद फिर बोला—चुप कर, सुनरी।

बच्चे को चुप कराना कोई आसान काम है!

सुनरी ने घूँघट खींचा, उठी और एकदम बाहर निकल गयी। लल्लनजी पुकारता रह गया—यह सामान तो लेती जा, सुनरी...

*

सुनरी अपनी कोठरी में आ कटे पेड़ की तरह भहराकर खटोले

पर गिर पड़ी। वह इस डर से चली आयी थी कि वह थोड़ी देर और वहाँ रुकी, तो ग़श खाकर गिर पड़ेगी। इस समय उसके दिल, दिमाग़ और आँखों में अन्धकार-ही-अन्धकार छाया था, जैसे सब-कुछ खाली हो गया हो, और अन्धकार ने खाली जगहों को भर दिया हो। न रुदन, न व्यथा, न सोच, न समझ। काश, वह न गयी होती, छोटे सरकार के मुँह से ही ये बातें न सुनती! एक ग़लतफ़हमी वह पाले रहती। कुछ तो रहता। अब तो कुछ न रहा, कुछ न रहा।

बदमिया उसके लौटने का इन्तज़ार कर रही थी। इतनी जल्दी उसे आते देखकर उसे ताज्जुब हुआ। वह जानती थी कि लौटने पर उसे उसकी जरूरत पड़ेगी। वह उसके दरवाजे पर आ खड़ी हुई।

भगवान ने औरतों को चाहे जैसा भी बनाया हो, उन्हें जो भी दिया हो, किन्तु इतना तो है कि उसने उन्हें यह सद्बुद्धि दी है कि आपसी लड़ाई-झगड़े का कोई महत्त्व नहीं। वक्त पर लड़ लो, रूठ लो, बिगाड़ कर लो, लेकिन फिर वक्त पर सब भूलकर मिलो, हँसो, बोलो, सुख-दुख में शामिल होओ!

बदमिया खटोले पर बैठकर बोली—सुनरी।

सुनरी ने घायल हिरनी की तरह आँखें खोलीं और बदमिया से लिपट गयी। बदमिया ने भी पूरे ज़ोर से उसे अंक में दबा लिया।

एक सहारा मिला। अन्धकार में दरारें पड़ीं और सुनरी फूट-फूट कर रोने लगी।

थोड़ी देर बाद बोली—तूने सच ही कहा था, बदामी बहन।

—हाँ। लेकिन यह भी सच है कि छोटे सरकार ने तुझे धोखा नहीं दिया, बरबाद नहीं किया। वर्ना तुझ-जैसी ख़ूबसूरत लड़की को सामने पाकर तो कोई भी मर्द खा जाय। छोटे सरकार बहुत बदल गये हैं। मामूली आदमी नहीं रह गये हैं। मैं तो जानूँ, देवता बन गये हैं।

—मैं ई-सब का जानूँ। यही करना था, तो काहे उन्होंने....मैं धोखा खा गयी, बदामी बहन, धोखा खा गयी! वह चाहते तो का मुझे रख भी नहीं लेते?

—और तेरी जिनगी हमारी ही तरह बरबाद कर देते। पागल!

—मेरी जिनगी बरबाद नहीं होती, मुझे उसी में सुख मिलता।

—ठेंगा मिलता? हैं न सब इतनी, कौन सुखी है?

—मेरी बात और है, बदामो बहन! छोटे सरकार के बिना मैं जिन्दा नहीं रह सकती! बहुत टटोला है अपने दिल को! तू नहीं जानती!

—तुझसे जियादा जानती हूँ! बेकार की बक-बक मत कर! तुझे कुछ नहीं मालूम। जरा-सी कमजोरी के कारन तू अपनी जिनगी बरबाद करना चाहती है? आज तू यह-सब नहीं समझ सकती, कभी समझेगी। अन्धी मत बन, मेरा कहा मान, और दिल से वह-सब बेकार की बातें निकाल दे!

—छोटे सरकार को लड़ाई पर न जाना होता, तो....

—तो तुझे गले का हार बना लेते!....मुंदरी फुआ को भनक भी लग गयी, तो कच्चे खा जायगी!—बदमिया ने धमकाया। फिर बोली—छोटे सरकार ने तुझे भरस्ट नहीं किया, भगवान की किरिपा है। नहीं तो सारी जिनगी अपनी किसमत को रोती!

तभी छोटे सरकार ने बदमिया को पुकारा।

*

लल्लन जा रहा है।

आज सबसे दुखी रानीजी हैं और सबसे चकित बड़े सरकार।

बड़े सरकार को स्वप्न में भी यह आशा न थी कि रानीजी लल्लन को लड़ाई पर जाने देंगी। नयी परिस्थिति की जानकारी से यह बात और भी दृढ़ हो गयी थी। उन्होंने अपनी ओर से जान-बूझकर ही एक शब्द भी लल्लन के जाने-आने के बारे मे न कहा था। बीमारी का बहाना बनाकर वह इधर रात-दिन दीवानखाने में ही पड़े रहे। दरबार भी न लगा। हवेली में वह एक बार भी न गये। यों भी लल्लन से वह बहुत कम बातें करते थे, महज कुछ रस्मी बातें हुआ करती थीं। इस बार उसका भी मौका उन्होंने न दिया। लल्लन ही दिन में एक बार सुबह दीवानखाने जा उनका हाल-चाल पूछ आता। और कोई बात न होती। बड़े सरकार ही उसे जल्दी-से-जल्दी टाल देते। बड़े सरकार की इस उदासी को लोग समझते कि इकलौते लड़के के बिछुड़ने का सदमा है।

जाने लड़ाई में क्या हो।

वह जानते थे कि लल्लन का जाना टल नहीं सकता। बिना किसी से राय-बात किये वह यों ही जाने को तैयार नहीं हुआ है। लेकिन यह भी समझते थे कि रानीजी अपने इकलौते लाडले को किसी भी तरह न जाने देंगी। वही तो उनकी ज़िन्दगी का सहारा है। वह चुपचाप इन्तज़ार करते रहे कि देखें, क्या होता है। उनके जी में कई बार आया था कि मुँदरी को बुलाकर सुराग लें, लेकिन मुँदरी से जितना उन्हें गुस्सा था, उससे कहीं ज्यादा शर्म थी। वह आफ़त की परकाला कहीं कुछ बकने लगे, तो उसका मुँह कौन रोकेगा? गुस्से में अन्धा हो, वह कुछ कर बैठें, तो एक और आफ़त खड़ी हो जायगी। अब वह ज़माना न रहा, कि जो हो, गला-पचा देंगे। रानीजी को मनाने की जो योजना उन्होंने बनायी थी, वह धरी-की-धरी रह गयी।

पीलवान को हाथी तैयार करने का हुक्म दे लल्लन सुबह-ही-सुबह बड़े सरकार से विदा और बटसारी लेने पहुँचा, तो चकित होकर बड़े सरकार ने कहा—सचमुच जा रहे हो?

—क्यों? इसमें कोई शक है क्या?

—माताजी मान गयीं?

—हाँ। उनका आशीर्वाद मुझे मिल गया है।

—ताज्जुब है, कैसे मान गयीं। तुम्हारे लड़ाई में जाने की खबर पाते ही उनकी जो हालत हुई थी, उससे तो विश्वास नहीं होता कि उन्होंने तुम्हें इजाज़त दे दी हो। आख़िर तुमने कैसे मना लिया?

—माताजी को मनाना मेरे लिए कुछ मुश्किल नहीं है। पढ़ने के लिए भी मुझे वह दूर कहाँ जाने देनेवाली थी।

—वह और बात थी, यह और है। लड़ाई का खतरा वह उठाने के लिए तैयार हो गयीं, मेरी समझ में तो नहीं आता। मुझे डर है कि तुम्हारे जाते ही वह....

—वैसा कुछ नहीं होगा। मैंने उन्हें अच्छी तरह समझा-बुझा दिया है और उनसे आश्वासन भी ले लिया है। यों कौन माँ है, जिसका कलेजा अपने बेटे को लड़ाई में भेजते नहीं फटता?...आप रुपये दिलवा दीजिए।

बड़े सरकार ने तकिये के नीचे से चाभियों का गुच्छा निकालकर उसके हाथ में देते हुए कहा—जितने की जरूरत हो, सेफ़ खोलकर ले लो। चाभी मुझे देते जाना।

लल्लनजी मुस्कराकर उठ खड़ा हुआ।

रानीजी ने इजाजत दे दी थी, आश्वासन भी, लेकिन उनके दिल पर जो बीत रही थी, वही जानती थीं। रानीजी को मनाना कोई आसान काम न था। यह उनका कलेजा निकाल लेने के बराबर था। लेकिन बेटे और मुंदरी के सम्मिलित मोर्चे के सामने उन्हें हथियार डालना ही पड़ा।

मुंदरी बहुत पोल्हा-पोल्हाकर उन्हे रास्ते पर लायी। वह जानती थी कि रानीजी के लिए सबसे प्यारी चीज लल्लन की जान है। उसने टुकड़े-टुकड़े में पूरे पांच दिनो में रानीजी के मन में यह बात बैठायी कि छोटे सरकार यहाँ रहे, तो उनकी जान को खतरा है। यह खतरा रानीजी के मन में भी सदा से बैठा था। जब मुंदरी ने वही बात फोर के चिखाया, तो रानीजी न मानती, तो कैसे? आखिर जब लोहा धीरे-धीरे गरम हो गया, तो मुंदरी ने हथौड़ा चलाया—रानीजी, आप सब-कुछ जानकर भी अनजान काहे बनती हैं? बात जब तक छिपी रह सकती थी, रही। अब आप जरा धियान से छोटे सरकार को देखें! जिन्होंने एक बार भी रंजन बाबू को देखा होगा, वो छोटे सरकार को देखें, तो अचरज में पड़ जायँ। वही नाक-नक्सा, वही चेहरा-मोहरा, बिल्कुल एक ही साँचे में ढले-से। मैं तो जानूँ, बड़े सरकार ताड़ गये हैं, उनकी यह बीमारी असल मे वही है। और अगर बात यही है, तो आप समझ सकती हैं कि बडे सरकार का कर सकते हैं। वह छोटे सरकार की जान के गाहक बन जायेंगे। आस्तीन में जान-बूझकर कोई साँप नहीं पालता। इसलिए मैं तो यही बेहतर समझती हूँ कि छोटे सरकार को बड़े सरकार से अलग ही रखा जाय।

रानीजी का चेहरा भय से पीला पड़ गया। उन्होंने मन-ही-मन गौर किया। फिर सूखे गले से बोलीं—तेरी बात ठीक ही लगती है, मुंदरी। लेकिन इसके लिए क्या जरूरी है कि तेरा तेरा [illegible]

—लड़ाई पर जायें, या कहां, यह तो मैं नहीं जानती। जो जानती हूँ, वो ये कि छोटे सरकार को बड़े सरकार के सामने नहीं रहना चाहिए। आँख के सामने सहना मुसकिल होता है। आड़े-अलोते की बात दूसरी है, आदमी सबुर कर लेता है।

—यह कैसी बदक़िस्मती है, मुँदरी! इस तरह तो मेरा लाल कभी भी मेरे साथ नहीं रह सकता। मैं तो सोचती थी कि अब वह मेरी आँखों के सामने रहेगा, मैं उसे देखकर बाक़ी जिन्दगी चैन से काट दूँगी।—रानीजी रो पड़ीं।

—ऐसा नहीं है, रानीजी। छोटे सरकार कहते थे कि कोई सिलसिला लगते ही वो आपको भी ले जायेंगे और अपने साथ रखेंगे।

—सच?—आंसू मुस्करा उठे।

—हाँ, रानीजी! मुझसे तो उन्होंने कई बार कहा।

—लेकिन उसने तो मुझसे एक बार भी न कहा।

—आपसे कैसे कहते? डरते हैं, जाने आपको कैसा लगे।

—इसमें डरने की क्या बात है? उसके साथ तो मैं नरक में भी सुखी रहूँगी। लेकिन बड़े सरकार मुझे जाने देंगे?

—इसका जिम्मा मेरा। मैं देखूंगी कि वो कैसे नहीं जाने देते? आप वो समय आने दीजिए, छोटे सरकार को पाँवों पर खड़े तो होने दीजिए।

थोड़ी देर की ख़ामोशी के बाद रानीजी ने कहा—तो वह कोई और काम क्यों नहीं कर लेता? लड़ाई में जाने की क्या जरूरत है? उसे कहीं कुछ हो गया, तो....

—ऐसी बात मुँह से न निकालिए! भगवान छोटे सरकार की रच्छा करें! आप छोटे सरकार से कहिए। वो आपकी बात न टालेंगे।

—जरा उसे बुला तो।

लल्लन बेहद परेशान था कि जाने माताजी मानेंगी कि नहीं। मुँदरी ने उससे वादा किया था, उसे मुँदरी के वादे और ताक़त पर पूरा विश्वास भी था कि वह अपना कहा पूरा करेगी। उससे ज्यादा कौन जानता है माताजी को और माताजी भी उससे ज्यादा किसे जानती-मानती हैं। फिर भी लल्लन को लगता था कि यह बात

माताजी हरगिज़ न मानेंगी। जान-बूझकर कौन माँ अपने बेटे को मौत के मुँह से ढकेलेगी, वह भी मेरी माताजी-जैसी माँ, जिसका सर्वस्व मैं ही हूँ। उसकी जान बड़ी मुश्किल में पड़ी थी। वह रोज़ मुँदरी से पूछता, क्या हुआ ? और मुँदरी कह देती, हो जाएगा, खातिर रखिए। लल्लन की समझ में न आता कि यह वह कैसे करेगी।

मुँदरी ने आकर लल्लन को सब-कुछ बताया। कहा—इतना तो मैंने करा दिया। आगे अब समझ-बूझ लीजिए। जाना आपका तय हो गया, कहाँ जायेंगे, यह आप तय करा लीजिए। हाँ, एक बात का खियाल रखें कि आप उनसे यह बात जरूर कहें कि आप जल्दी ही उन्हे भी अपने साथ रखने के लिए ले जायेंगे। आपकी ओर से यह बात मैंने उनसे कह दी है।

—लेकिन, मुँदरी !—हाथ मलते हुए लल्लन ने कहा—असली बात तो रह गयी। मुझे जाना लड़ाई मे ही है।

—यह तो दुम की बात है। इतना भी आप नहीं कर सकते ?

—यह दुम नही, मुँदरी, यही तो असली बात है !

—तो उसकी भी तरकीब है। आप दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई कहीं भी कहकर जाइए और....

—यह क्या ठीक होगा, माताजी को जब पता लगेगा....

—उसका जिम्मा मेरा। आप बेफिक्र रहिए। जब तक मुँदरी है, रानीजी नहीं मरेंगी।....लेकिन एक बात है, आप हमें भी ले चलेंगे न ? इस हवेली से जान तो छूटे....

—हाँ, हाँ, यह कोई बड़ी बात नही।...मैंने भी कुछ सोचा है। लेकिन, मुँदरी, यह कसर भी तू ही....

—जाइए, जरा उनसे बात तो कीजिए। आपको बुला रही हैं।

लल्लनजी कैसे क्या बात करेगा, उसकी समझ में नहीं आता। परेशानी-परेशानी में ही उसे सूझी कि क्यों न वह असली बात ही कह दे। माताजी भुक्तभोगी हैं, उसे निराश न करेंगी। झूठ बोलने की बात अब उसे अच्छी न लगती थी। सच्चाई की शक्ति ही और है। कौन जाने, माताजी को इससे खुशी ही हो, उन्हे एक सहारा मिल जाय।

जाकर वह बोला—माताजी, आप जहाँ कहेंगी, वहीं मैं जाऊँगा। लेकिन एक बात मैं आपको बताना चाहता था।

उदास रानीजी उत्सुक हो बोलीं—क्या ?

—कई दिन से सोच रहा था, लेकिन बता न सका। शर्म भी आती है और डर भी लगता है। अभी तक किसी को यह मालूम नहीं।

—तभी तो !—रानीजी और भी उत्सुक हुईं—भला मुझसे क्या डर ? और कोई बेटा क्या अपनी माँ से शरमाता है ?

—बात ही कुछ ऐसी है, माताजी। लेकिन आपको तो एक-न-एक दिन बताना ही पड़ेगा। बिना आपकी आज्ञा लिये...

रानीजी की आँखें चमक उठीं। पलकें झपकाते हुए उन्होंने लल्लन का शर्माया हुआ मुखड़ा देखा। फिर खुशी से चीख पड़ीं—बेटा, कहीं....

लल्लन उनके मुख पर हाथ रखकर बोला—धीरे से बोलिए! माताजी, कहीं कोई सुन न ले।

हुलसकर रानीजी बोलीं—सच, रे ? तो तू...

लल्लन ने अपना मुँह उनकी गोदी में छिपा लिया—आओ, माताजी !

रानीजी की आँखों में खुशी का पानी और पूरे चेहरे पर खुशी का खून छलक आया। रोम-रोम हर्ष-विह्वल। वह लल्लनजी का माथा चूमकर मुस्कराती आवाज़ में बोलीं—तूने अभी तक मुझे नहीं बताया, कौन है, रे ?

—मैं नहीं बताऊँगा। बड़ी शर्म लगती है, माताजी !—और उसने माँ का आँचल अपनी आँ- ... रख लिया।

—शर्म की क्या बात है, बेटे ... कब से मना रही थी। अब मेरी एक ही तो साध रह गयी है। कौन है, रे ? क्या नाम है उसका ? तेरे साथ पढ़ती थी ?

गोद में ही लल्लन ने सिर हिलाया।

—जल्दी मुझे सब बता, बेटा ! ओह, तू नहीं जानता कि इस वक्त मेरी क्या हालत है !—और रानी... की आवाज़ घुट गयी। शरीर

निर्जीव-सा होकर लुढ़कने लगा।

लल्लन चीख पड़ा—माताजी!

रानीजी विक्षिप्त हो गयीं। दौरा पड़ गया। लल्लन ने व्यग्र होकर मुंदरी को पुकारा।

खुशी और गम की चरम सीमाएँ एक ही जगह मिलती हैं क्या?

मुंदरी दौड़ी-दौड़ी आयी और रानीजी को देखकर लल्लन की ओर देखा। लल्लन ने व्याकुलता से एक अपराधी की तरह सिर हिलाया।...

होश मे आयीं, तो वही खुशी की दमक। उन्होंने दूध पीकर मुंदरी से कहा—सुना, मेरा बेटा....

तभी लल्लन ने मुंदरी को संकेत किया, वह चली गयी।

सहमा-सहमा लल्लनजी बोला—माताजी, मुझे माफ़ कर दें!

उसके चेहरे पर हाथ फेरती रानीजी बोलीं—नहीं, बेटे, मुझे ऐसा हो जाता है। तू फ़िक्र न कर। मुझे सब बता। आज मैं बहुत खुश हूँ!

लल्लन ने बताया—उसका नाम शकुन्तला है। बड़े बाप की बेटी है। चांद की तरह खूबसूरत। माताजी, तुम देखोगी, तो निहाल हो जाओगी, तुम्हारे लिए कैसी लाखों में एक बहूरानी चुनी है। और...

—और क्या?

—हम एक-दूसरे से मोहब्बत करते हैं।...

—यह भी क्या कहने की बात है! तेरा चेहरा, तेरी आँखें क्या यह नहीं बतातीं? मुझे बड़ी खुशी है, बेटे। तू जल्दी ब्याह कर। जल्दी मुझे बहूरानी का मुंह दिखा। किसी से पूछने की जरूरत नहीं।

—लेकिन एक बात है, माताजी,—लल्लनजी ने सिर झुका लिया।

—कोई बात नहीं। तू बड़े [illegible] की बिल्कुल चिन्ता न कर। तू जा और ब्याह कर और जहाँ चाहे रह। यहाँ आने की कोई ज़रूरत नहीं। तुझे जितने रुपयों की ज़रूरत होगी, मैं दूँगी। और हां, मुझे भी ले चलेगा न?

—यह भी क्या कहने की बात है, माताजी! आपको ले चलूंगा और मुंदरी को भी और सुनरी [illegible] भी। लेकिन एक बात मैं और कह रहा था, माताजी।

—क्या ?

—शकुन्तला की यह साध है कि उसका पति कैप्टेन हो...

—ऐसा क्या....

—बस, बात की बात है। मैंने उससे वादा किया है कि मैं ज़रूर कैप्टेन बनूँगा।

—लेकिन लड़ाई, खतरा...उसे यह क्या....

—यह तो रोक रही थी, माताजी। लेकिन एक साध, जिसे जिन्दगी-भर उसने पाली है....मैं पूरी करना चाहता हूँ, माताजी। कोई भी बेशकीमत चीज़ बिना खतरा उठाये कहाँ मिलती है, माताजी!... फिर मोहब्बत करने वाला तो अमर होता है। मुझे ज़र्रा-बराबर भी डर नहीं। शकुन्तला की मोहब्बत और आपके आशीर्वाद मेरी रक्षा करेंगे! आप आज्ञा दीजिए। इसी पर मेरी जिन्दगी मुनहसिर है। आप तो जानती हैं....—सल्लन ने जीभ काट ली।

—मैं जानती हूँ, बेटा, जानती हूँ!—रानीजी बोलीं—मैं तुझे नहीं रोक सकती। भगवान तेरी रक्षा करेंगे!

सल्लन ने माताजी के दोनों पाँवों को चुम्बनों से भर दिया। फिर उनसे लिपट कर बोला—माताजी, सिर्फ़ एक साल की बात है। लड़ाई के जमाने में रहो जल्दी-जल्दी तरक्की मिलती है। मैं कैप्टेन होकर आऊँगा, शकुन्तला के साथ ब्याह करूँगा, फिर हम-सब एक साथ रहेंगे। माताजी, मेरे चले जाने से आप दुखी तो न होंगी ?

—नहीं, बेटे, मैं तेरे लिए भगवान से रोज़ प्रार्थना करूँगी। तू किसी बात की चिन्ता न कर।

—माताजी, इस बात को अभी किसी से...

—मैं बच्ची नहीं हूँ, बेटे। मैं खूब समझती हूँ।...भगवान तेरी मनोकामना पूरी करें!—और रानीजी की पलकों पर ममता की शबनम काँपने लगी।

भैरव प्रसाद गुप्त का सामान्य नैतिकता-बोध आधुनिकतावादी दृष्टिकोण और व्यवहार-पद्धति पर निरन्तर प्रहार करता है। इस संदर्भ में वे उन अनेक प्रगतिशीलों से भिन्न और बेहतर दृष्टिकोण अपनाते हैं, जिन्होंने पुरातन मूल्यों का विरोध करने के उद्देश्य से बिना सही आलोचनात्मक रुख अपनाये आधुनिकतावादी मूल्यों को किंचित स्वीकार कर लिया और जो स्वस्थ मानवीय आचरण तथा जैविक तर्कों पर आधारित चमक-दमक वाले मुहावरों से मंडित पतनशील व्यवहार के बीच के स्पष्ट अन्तर को नहीं समझ पाए। 'सत्ती मैया का चौरा' में मन्ने-आयशा-प्रसंग अज्ञेय, भारती, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश के लिए कितनी ही 'सृजनशील मानवीय सम्भावनाओं' को रस लेकर चित्रित करने का सस्ता बहाना हो सकता था, लेकिन भैरव प्रसाद गुप्त के लिए यह पतनशीलता की प्रक्रिया को समझने, उस पर व्यंग करने का विषय है।...

भैरव प्रसाद गुप्त अपने वैचारिक आग्रहो और मुख्य पात्रो के चारित्रिक विकास को एक-दूसरे से स्वतंत्र रखने की जो क्षमता प्रदर्शित करते हैं, वह न केवल हिन्दी कथा-लेखन की एक उपलब्धि है, बल्कि सचेत और प्रतिबद्ध लेखको के लिए प्रेरणादायी एवं अनुकरणीय है।...

भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यासों का अध्ययन इस अर्थ में भी बहुत उपयोगी है कि उनमे शोषित वर्गों की संघर्ष-क्षमता के सार्थक एवं विशद चित्रण के साथ-साथ उन कठिनाइयों और समस्याओ की भी स्पष्ट झलक मिलती है, जिनका सामना आजादी के बाद के लेखक-विचारक समुदाय ने सामूहिक रूप से किया है। निश्चय ही, उनके उपन्यासों के आवश्यक संदर्भ और गंभीर अध्ययन के बिना हिन्दी के प्रतिबद्ध कथा-साहित्य पर होने वाली प्रत्येक बहस अपूर्ण रहेगी।

—आनन्द प्रकाश